॥ श्रीः ॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

४४

महाकविक्षेमेन्द्रकृता

औचित्यविचारचर्चा

मनोरमाख्यसंस्कृत-हिंदी-व्याख्याभ्यामुपेता

व्याख्याकारः

श्रीनारायणमिश्रः

काशीस्थहिन्दूविश्वविद्यालये संस्कृतप्राध्यापकः

पुरोवाक-लेखकः

प्रो० विश्वनाथभट्टाचार्यः

काशीस्थहिन्दूविश्वविद्यालये संस्कृतविभागाध्यक्षः

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक

वाराणसी　　　　दिल्ली

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

|| श्रीः ||

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

४४

महामहोपाध्याय ... 11/10/82

महाकविक्षेमेन्द्रकृता

औचित्यविचारचर्चा

मनोरमाख्यसंस्कृत-हिंदी-व्याख्याभ्यामुपेता

व्याख्याकारः

श्रीनारायणमिश्रः

काशीस्थहिन्दूविश्वविद्यालये संस्कृतप्राध्यापकः

पुरोवाक-लेखकः

प्रो० विश्वनाथभट्टाचार्यः

काशीस्थहिन्दूविश्वविद्यालये संस्कृतविभागाध्यक्षः

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक

वाराणसी दिल्ली

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाशक

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ३२

गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

टेलीफोन : ६३३५४ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव

शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर

दिल्ली–११०००७ फोन : २२१६१७

© चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्रथम संस्करण : १९८२

मूल्य : रु० १५–००

अन्य प्राप्तिस्थान :

१. चौखम्भा संस्कृत संस्थान

पोस्ट बाक्स नं० १३९

जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

फोन : ६५८८९

२. चौखम्भा विश्वभारती

चौक (चित्रा सिनेमा के सामने)

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

फोन : ६५४४४

३. चौखम्भा भारती अकादमी

आकर ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक

गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

फोन : ६३३५४

मुद्रक—श्रीगोकुल मुद्रणालय, वाराणसी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

GOKULDAS SANSKRIT SERIES
NO. 44

AUCITYAVICĀRACARCĀ

By

MAHĀKAVI KṢEMENDRA

with

The 'Manoramā' Sanskrit & Hindi Commentaries

By

ŚRĪNĀRĀYAṆA MIŚRA,
Reader in Sanskrit, Deptt. of Sanskrit & Pali,
Banaras Hindu University,
Varanasi.

Foreword by

Prof. BIŚVANĀTHA BHAṬṬĀCHĀRYA,
Head of the Deptt. of Sanskrit & Pali,
Banaras Hindu University,
Varanasi.

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
A House of Oriental and Antiquarian Books
VARANASI DELHI

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Publisher :

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
P. O. Chaukhambha, Post Box No. 32
Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane
VARANASI-221001 (India)
Telephone : 63354 Telegram : Gokulotsav

Branch—Bungalow Road, 9 U. B. Jawahar Nagar
DELHI-110007 Phone : 221617

© *Chaukhambha Orientalia*

First Edition 1982
Price Rs. 15-00

Also can be had of :

1. **CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN**
   Post Box No. 139
   Jadau Bhawan, K. 37/116
   Gopal Mandir Lane
   VARANASI-221001 (India)
   Phone : 65889

2. **CHAUKHAMBHA VISVABHARATI**
   Chowk (Opposite Chitra Cinema)
   VARANASI-221001
   Phone : 65444

3. **CHAUKHAMBHA BHARATI ACADEMY**
   Gokul Bhawan, K. 37/109
   Gopal Mandir Lane
   VARANASI-221001 (India)
   Phone : 63354

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समर्पणम्

याऽकालेपि कुलद्वयक्षयकरे वैधव्यहव्याऽनले

निक्षिप्ताऽपि निरस्य तत्र कलुषं पूताऽर्चिता नोऽग्रजा ।

कीर्त्तिं सन्तनुते निजैः सुचरितैः पत्युः पितुश्चात्मन-

स्तामाराध्य मनोरमां विरचिता तन्नामनाम्नी कृतिः ॥१॥

आत्मानमुन्मोचयितुमनुजत्वकृताद्दणात् ।

व्याख्यानभूतां रचनान्तस्या एव समर्पये ॥ २ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरोवाकः

औचित्यविचारचर्चाऽभिधः काश्मीरिकक्षेमेन्द्रविरचितो लघुकायोऽपि ग्रन्थः संस्कृतालङ्कारशास्त्रे विषयवैशिष्ट्येन महत्त्वं भजत इति विदुषां नापरोक्षम् । खृष्टीयैकादशशतकपूर्वार्द्धभवोऽयं कविः प्रायः सप्तत्रिंशाधिकग्रन्थानां रचयिता, येषु साहित्यविचारसंबद्धास्त्रय एवाद्यत्वे समुपलभ्यन्ते— औचित्यविचारचर्चा, कविकण्ठाभरणम्, सुवृत्ततिलकं च । छन्दोविषयकमन्तिमं विहाय पूर्वोक्तं ग्रन्थद्वयं वस्तुतस्तु प्रकरणरूपम् । अलङ्कारशास्त्रस्यैव स्वरुच्यनुसारं विषयैकदेशस्तत्र तत्र ग्रन्थे वैशद्येन कविना प्रतिपादितः ।

साहित्याध्वनि क्षेमेन्द्रो महामाहेश्वरं श्रीमदभिनवगुप्तपादं स्वगुरुं निर्दिशति । एवं च ध्वनिमार्गाध्वनीनोऽयमाचार्यः तत्प्रस्थानसिद्धान्तानेव सोदाहरणविवेचनद्वारेण निरूपयन् प्रतिष्ठां भजते । तेषु च ध्वनिकारोद्‌घुष्टः—

अनौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम् ।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा ॥

इतिकारिकानिहितः सिद्धान्त एव **औचित्यविचारचर्चायां** लक्षणपरीक्षाभ्यां सम्यग् विवेचितः । एष च सिद्धान्तः कविपरम्पराप्रयोगपृष्ठे लक्षणानुसारं नैपुण्येन परीक्षित इति ग्रन्थोऽयं कविशिक्षायै नितरां प्रभवति । औचित्यस्यैतावद् व्यापकं विवेचनं नान्यत्र सुलभमिति ग्रन्थोऽयं साहित्यविचारसरणावद्वितीयः ।

तस्यैतस्य प्रकरणग्रन्थस्यैका संस्कृतटीका श्वेतारण्यनारायणकृता मद्रासनगरीतः १९०६ खृष्टवर्षे प्रकाशिताभूत् । अपरा च **व्रजमोहनझा-**

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शर्मणा निर्मिता वाराणस्यामेव प्रकाशिता। तत्राद्यातिसंक्षिप्ताऽनुपलभ्यमाना च। अन्त्या चाक्षरार्थवर्णनपरा क्वचिच्चापदार्थकदर्थिता चेति न मोदावहा विदुषाम्। ततोऽन्या कापि संस्कृतटीका नास्माभिर्व्यलोकि। स एषोऽभावो विदुषां संतोषाय मुद्र्यमाणया टीकयानया दूरीभविष्यतीति नितरां नो हर्षस्थानम्। टीकाकृतश्च विद्यासहयोगिनो न्याय-व्याकरण-साहित्येषु समं पारदृश्वानो डॉक्टरश्रीश्रीनारायणमिश्रमहाशया इत्यहो शोभनः संयोगः। सहृदयत्वभावनानुप्राणितया तार्किक्या दृष्ट्या श्रीमन्तो मिश्रमहाशया ग्रन्थस्यास्य सर्वत्र क्षेमेन्द्रोक्तं समीक्षितवन्तः, कुत्रापि गतानुगतिकतां नाहतवन्तः। टीकायां हिन्दीभाषानुवादे च प्रतिपाद्यस्य वैशिष्ट्येन यदुन्मीलनं कृतं तदर्थमेते विद्यानुरागिणां ध्रुवं साधुवादमर्हन्ति।

श्रीमतां मिश्रमहाशयानां सारस्वतोऽयं श्रमो ग्रन्थस्यास्यावश्यम्भाविना समादरेण सफलीभविष्यतीति दृढं विश्वसिति—

संस्कृत-पालि-विभागः,
काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः
१०–४–८२.

विदुषामाश्रवो
विश्वनाथभट्टाचार्यः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निवेदनम्

अथेदमुपायनीक्रियते **मनोरमोपेतौचित्यविचारचर्चा**रूपं सुमनः सुमनसां समाराधनाय । औचित्यं काव्यस्य प्राणभूतमिति प्रतिपादयतः क्षेमेन्द्रस्यौ**चित्यविचारचर्चा** विद्वत्सु चिरादेव चर्चिता । अस्या यद्यपि व्याख्यानमेकं **'सहृदयतोषिणी'** इति नाम्ना प्रसिद्धं श्वेतारण्यनारायणोपज्ञं मद्रपुरतः १९०६ खृष्टाब्दे प्रकाशितन्तथापि भूयस्यायासे कृतेऽपि न मया दैवदुर्विपाकेनासादितन्तदिति तस्य विद्वद्वरेण्यस्य वैदुष्येणापरिचित एव **मनोरमामिमां** संग्रथितवानयं जन इति क्षन्तव्यो विपश्चिदपश्चिमैः । व्याख्यैका मैथिलपण्डितश्रीव्रजमोहनझाशर्मणा विरचिता वाराणस्यामेव प्रकाशिता यद्यपि तथापि साऽक्षरार्थवर्णनमात्रपरा स्थले-स्थले चाऽपदार्थकदर्थितेति हेतोरियं **मनोरमा** यथामति संग्रथितापि सर्वगुणान्वितैवेति वक्तुं न शक्यत एवात्मावबोधशोधनमभीप्सताऽनेन जनेन । अतो गुणदोषविदां शास्त्रतत्त्वनिष्णातानां बुधवराणामेतद्दोषोद्घाटनकारिणामनुग्राह्यता कमनीयैवास्ते । क्वचित् क्वचिन्मुद्रणाशुद्धिरपि जातैवेति तदर्थमपि क्षन्तव्योऽयं जनः ॥

अस्मिन्नवसरे येषां ग्रन्थकाराणां विचारेणोपकृतस्तदर्थं कृतज्ञता प्रकाशनीयैव । अस्मन्मित्रवरेण **प्रा० वा० के० लेले**महाशयेन मराठीभाषायां व्याख्यातादौचित्यविचारचर्चाग्रन्थादपि क्वचित् क्वचिल्लाभोऽजायतेति हेतोः तस्याप्यत्यन्तं कृतज्ञः ॥

एतस्मिन् विषयेऽस्मन्मित्रवर्यैः **प्रो० श्रीविश्वनाथभट्टाचार्य**महाशयैः **प्रो० श्रीवीरेन्द्रकुमारवर्म**महाशयैश्च योऽनुग्रहः प्रदर्शितस्तदर्थमेतेषां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विदुषामाधमर्ण्यं भूयो भूयश्चिरं स्मरणीयमेव । भृशमुपकृतवतो मित्रस्य डॉ० श्रीरामायणप्रसादद्विवेदिमहाभागस्याप्यनुग्रहेणावनतोयं जनः । 'चौखम्भा-ओरियन्टालिया'प्रकाशनाध्यक्षाश्च यथासमयं ग्रन्थमिमं प्रकाशयन्तो धन्यवादभाजो भवन्त्येव ॥

अन्ते च पुनरपि सपरिकरमपि स्वबोधप्रसरमीषत्करं मन्यमानः—

काऽयं जनोऽतिकृपणो दयनीयभावो
विद्याऽम्बुधिः क्व विबुधैरपि दुर्विगाह्यः ।
किञ्चित्तथापि यदि साधु निरुक्तमत्र
सेयं कृपैव महती जगदीश्वरस्य ॥

इति विज्ञापयन् विरमति—

रामनवमी—२०३९ वि० सं०

विद्वद्विधेयः
श्रीनारायणमिश्रः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आमुख

आकांक्षिताधिकतरोदयदानदक्षा
दक्षात्मजा विकचपङ्कजमञ्जुलाक्षी ।
यन्निर्गुणं सगुणवत् प्रकरोति तस्मै
कस्मैचिदस्ततमसे महसे नमोऽस्तु ॥

समस्त शास्त्रों का एक ही उद्देश्य है मानवकल्याण। इसी की सिद्धि के लिए विभिन्न शास्त्रकारों ने अपने-अपने अनुभव के आधार पर लोककल्याण के मार्ग को प्रशस्त करने के लिए शास्त्रों का प्रवर्त्तन, संक्षेप या विस्तार से, किया है। किन्तु यह स्वाभाविक है कि अपने-अपने अनुभव के वैलक्षण्य के अनुसार सब के मार्ग एक न हों। सभी शास्त्रकारों की सर्वज्ञता में आस्था रखने वाले लोग इसी विषय को 'अधिकारिभेदमूलक मार्गभेद' कहते। अस्तु, यह विषय विवादयोग्य नहीं है। चाहे लोककल्याण के मार्गों में भिन्नता अनुभवभेदमूलक हो या अधिकारिभेदमूलक, भिन्नता तो सर्वसम्मत है हीं।

इन विभिन्न मार्गों में काव्यशास्त्रसम्मत मार्ग सरल होने से बहुसंख्यक लोगों का उपादेय सिद्ध हुआ। इसकी सरलता का प्रमुख कारण यही है कि जहाँ शास्त्रान्तर-सम्मत मार्ग स्वयं दुःखमय होकर दुःखाभाव अथवा अलौकिक सुख के साधन होते वहीं काव्यशास्त्रीय मार्ग स्वयं सुखमय होता हुआ जिज्ञासुओं को अलौकिक सुख की ओर अग्रसर करता है। इस मार्ग की सुखमयता ने ही इसे 'अल्पधी' व्यक्तियों के लिए भी अनुकूल बना दिया है। इसकी सुखमयता में तो कोई विवाद है ही नहीं, क्योंकि करुण आदि रसों में भी सहृदयों को एक विलक्षण सुख ही प्राप्त होता। तभी तो उत्तररामचरित आदि नाट्यग्रन्थों को लोग बारम्बार पढ़ते हैं। नाटकादि को सुखान्तमात्र बनाने की कविपरम्परा का भी यही आधार है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संक्षेप में यह कहना चाहिए कि काव्यशास्त्र हमें लौकिक सुख द्वारा अलौकिक सुख दिलाता है। यही अलौकिक सुख 'रस' है और इसी का आस्वादन इस शास्त्र का परम लक्ष्य है।

इस रसास्वादनस्वरूप लक्ष्य की सिद्धि के लिए अपेक्षित सरलतम उपाय की कवियों ने जो सफल अभिव्यक्ति की है वही है काव्य। इसके दो रूपों में एक है रूपक, अर्थात् दृश्य काव्य और दूसरा है श्रव्य काव्य। यह कहना कठिन है कि आरम्भ दृश्य काव्य से हुआ या श्रव्य काव्य से। आपाततः यही प्रतीत होता कि आरम्भ श्रव्य काव्य से ही हुआ। इसी लिए **रामायण** को 'आदिकाव्य' कहना भी प्रचलित हुआ। किन्तु भरत के **नाट्यशास्त्र** में रूपक का ही उल्लेख हमें यह सोचने को भी प्रेरित करता कि काव्य का प्रारम्भिक स्वरूप रूपकात्मक ही था। किन्तु, जैसा कहा जा चुका है, इस विषय में इदमित्थम् रूप से कुछ कहना कठिन है।

प्रत्येक कार्य-क्षेत्र में यह देखा जाता है कि जब कोई कार्य किया जाता है तब लोग उसके स्वरूप आदि के विषय में विचार-विमर्श करने लग जाते। काव्य के क्षेत्र में भी यही हुआ। जब कुछ काव्यों का निर्माण हुआ तब उनके विषय में भी विवेचन किया जाने लगा। इन्हीं विवेचनात्मक ग्रन्थों को लक्षण-ग्रन्थ कहा जाता है। इस परम्परा में भरत के **नाट्यशास्त्र** से लेकर जगन्नाथ पण्डितराज के **रसगङ्गाधर** तक तथा परवर्ती शारदातनय आदि आचार्यों के भी सभी ग्रन्थ आ जाते। इन ग्रन्थों में काव्य के विभिन्न तत्त्वों पर यथासम्भव विचार किया गया है। इन विवेचित तत्त्वों में काव्य का स्वरूप, अलंकार, गुण-दोष, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि तथा रस प्रमुख हैं। उक्त लक्षण-ग्रन्थों में किसी में किसी पर मुख्य रूप से और किसी पर गौण रूप से या यों कहिये कि कुछ विषयों पर साक्षात् तथा कुछ पर परोक्ष रूप से विचार-विमर्श किया गया है।

यह स्पष्ट है कि काव्य के स्वरूप पर विचार किये विना इसके अन्य तत्त्वों पर विचार करना असंगत है। अतः सभी लक्षण-ग्रन्थों में काव्य के स्वरूप पर कुछ न कुछ विचार करने के बाद ही उसके अन्य तत्त्वों का निरूपण किया गया है चाहे वह तत्त्व अलङ्कार हो, या गुण या और कुछ। किन्तु स्वरूप

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किसी भी वस्तु का केवल बाह्य या केवल आभ्यन्तर नहीं होता, अपितु उभयात्मक। इनमें प्रतिपादक बाह्य होता है और प्रतिपाद्य आभ्यन्तर, चाहे वह अलङ्कार हो या गुण हो या रीति या रस। प्रत्येक विचार-परम्परा का क्रमिक विकास होता। यह विकास स्थूल विषय से सूक्ष्म विषय की ओर होता। काव्यशास्त्रीय विचार-परम्परा भी इसका अपवाद नहीं है। इस परम्परा में भी हम यही देखते कि पहले काव्य के स्थूल रूप—बाह्य रूप पर ही मुख्यतः विचार करना आरम्भ हुआ जो क्रमिक उत्कर्ष के परिणाम-स्वरूप क्रमशः काव्य के आभ्यन्तर स्वरूप को भी अपना विषय बनाता गया।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि बाह्यत्व तथा आभ्यन्तरत्व सापेक्ष हैं। एक हीं विषय किसी एक की अपेक्षा बाह्य हो सकता है और किसी दूसरे की अपेक्षा आभ्यन्तर। ऊपर कहा जा चुका है कि जो प्रतिपादक होता वह बाह्य कहलाता है और जो प्रतिपाद्य होता वह आभ्यन्तर। इस दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट है कि शब्द की अपेक्षा अर्थ एवं इन दोनों की अपेक्षा इन पर आश्रित अलङ्कार, गुण आदि आभ्यन्तर तत्त्व हैं[1]। अर्थ में भी वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यङ्ग्यार्थ के बीच क्रमशः बाह्याभ्यन्तरभाव है। इन सब की दृष्टि से भी रस (तथा भाव आदि) आभ्यन्तर है। यह इससे भी प्रमाणित होता कि समस्त काव्यशास्त्री रसास्वादन को ही काव्य का चरम लक्ष्य मानते। तभी तो काव्यानुशीलन से चतुर्वर्गफलास्वाद, शिवेतरक्षति या सद्यःपरनिर्वृति स्वरूप फल प्राप्त होता है।

कहने की आवश्यकता नहीं, यह फल जैसे दर्शनशास्त्रों की दृष्टि में आत्मावगति से हीं प्राप्त होता वैसे हीं काव्यशास्त्र की दृष्टि में भी काव्या-त्मावगति से हीं सम्भव है, जिस किसी काव्याङ्ग की अवगति से नहीं।

---

१. यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि रीति आदि भी शब्दाश्रित होने से शब्दप्रतिपाद्य हैं, क्योंकि इनकी प्रतीति शब्दसापेक्ष है। इसी तरह अर्थगत गुणालङ्कारादि के विषय मे भी समझना चाहिए। अत एव गौण रूप मे रीति आदि को भी काव्य की आत्मा कहा जा सकता है। किन्तु मुख्यः काव्यात्मा तो रस ही है, क्योंकि इसी के साक्षात्कार से काव्य का चरम फल सद्यःपरनिर्वृति प्राप्त होता है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जैसे दार्शनिकों की आत्मा सिद्ध तत्त्व है वैसे हीं काव्यशास्त्री की काव्य-गत आत्मा भी किसी 'सिद्ध तत्त्व' को ही होना चाहिए, साध्य को नहीं। रस की सिद्धरूपता **रसो वै सः** इस श्रुति से ही प्रमाणित है। तभी तो उच्चतम काव्यशास्त्री भी यही कहते। अतः 'रस' को हीं काव्य की आत्मा मानना समुचित है, इस विषय में किसी विकल्प का कोई अवसर नहीं। हम निर्णय करेंगे कि क्षेमेन्द्र भी 'रस' को हीं यह स्थान देते।

उक्त काव्यतत्त्वों मे शब्द तो सर्वापेक्षया बाह्य है हीं। किन्तु, जैसा कहा जा चुका है, अर्थ भी बाह्य हो हीं सकते हैं। इनमे कालक्रमेण बाह्य स्वरूप को **शरीर** और आभ्यन्तर स्वरूप को **आत्मा** कहा जाने लगा। यह तो प्रकट है हीं कि काव्य का स्वरूपभूत शब्द अर्थप्रतिपादक शब्द ही है, निरर्थक नहीं। साथ हीं, उसे वाक्यात्मक भी होना हीं चाहिए, क्योंकि निरपेक्ष अर्थप्रतिपत्ति वाक्य से हीं होती है, पदात्मक शब्द से नहीं। इसी लिए वैयाकरण 'वाक्यस्फोट' को, यास्क 'संहिता' को और आधुनिक भाषाशास्त्री भी 'वाक्य' को ही भाषा का मूलरूप मानते। इस काव्यात्मक वाक्य को भी वाक्यविशेष रूप होना चाहिए, क्योंकि वाक्यात्मक तो सब शास्त्र होते परन्तु सब के वाक्यों का अपना-अपना वैलक्षण्य अवश्य होता। अतः रसाभिव्यक्ति मे समर्थ सार्थक वाक्य-विशेष को या शब्दार्थयुगल को काव्य का शरीर कहा जाने लगा।

अब हमें क्षेमेन्द्र के अनुसार इन सब का संक्षिप्त विवेचन करना है। किन्तु इससे पहले उनका परिचयादि दे देना आवश्यक है।

क्षेमेन्द्र—परिचय तथा समय :—

क्षेमेन्द्र का मुख्य नाम **'व्यासदास'** था। इनके पिता **प्रकाशेन्द्र** और पितामह **सिन्धु** थे। ये काश्मीर के एक श्रोत्रिय ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे। इनके विद्यागुरु थे **गङ्गक** तथा **अभिनवगुप्त**। इन्होंने अपने अनेक ग्रन्थों में **अनन्तदेव** के राज्यकाल १०५० ई० में अपनी रचना का उल्लेख किया है। **समयमातृका** के अन्त में भी इन्होंने यही लिखा है कि इसका समापन **अनन्तदेव** के राज्यकाल में हीं हुआ था। **दशावतारचरित** में तो यह लिखा है कि इसका समापन **अनन्तदेव** के पुत्र महाराज **कलश** के राज्यकाल १०६६ ई० मे हुआ था। महाराज

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनन्तदेव का राज्यकाल १०२८ से १०६३ ई० तक रहा। इन्होंने अपने पुत्र महाराज कलश को १०६३ ई० मे राजगद्दी पर बैठाया था। औचित्य-विचारचर्चा के अन्त मे यह लिखा है कि इस ग्रन्थ का आरम्भ इन्होंने महाराज रत्नसिंह के सुपुत्र महाराज उदयसिंह के राज्यकाल मे किया था और समापन अनन्तदेव के राज्यकाल मे हुआ। इसके अतिरिक्त, इसी ग्रन्थ मे इन्होंने महाराज रत्नसिंह को अपना 'सुहृत्' कहा है। इससे स्पष्ट है कि रत्नसिंह के समय इनकी प्रतिष्ठा कुछ न कुछ अवश्य हो गई थी।

इस प्रकार यही प्रतीत होता कि १० वी शताब्दी के अन्तिम अंश में इनका जन्म हुआ होगा और ये दीर्घजीवी हुए, क्योंकि दशावतारचरित का समापन-समय इन्होंने स्वयम् १०६३ ई० लिखा है। किन्तु पुष्पिका के पद्यों के प्रक्षिप्त हाने की सम्भावना प्रबल है। अतः ११ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध इनका काल मानना हीं उचित है।

क्षेमेन्द्र की रचनाएँ :—

(१) अमृततरङ्ग, (२) औचित्यविचारचर्चा, (३) अवसरसार, (४) कनकजानकी, (५) कलाविलास, (६) कविकण्ठाभरण, (७) कविकर्णिका, (८) क्षेमेन्द्रप्रकाश, (९) चतुर्वर्गसंग्रह, (१०) चारुचर्या, (११) चित्र-भारत नाटक, (१२) दर्पदलन, (१३) दशावतारचरित, (१४) देशोपदेश, (१५) दानपारिजात, (१६) नर्ममाला, (१७) नीतिकल्पतरु, (१८) पद्यकादम्बरी, (१९) पवनपञ्चाशिका, (२०) बृहत्कथामञ्जरी, (२१) बौद्धावदानकल्पलता, (२२) भारतमञ्जरी, (२३) मुक्तावलीकाव्य (२४) मुनिमतमीमांसा, (२५) राजावली, (२६) रामायणमञ्जरी, (२७) ललितरत्नमाला, (२८) लोकप्रकाश, (२९) लावण्यवतीकाव्य, (३०) वात्स्यायनसूत्रसार, (३१) विनयवल्ली, (३२) वेतालपञ्चविंशति, (३३) व्यासाष्टक, (३४) शशिवंशमहाकाव्य, (३५) समयमातृका, (३६) सुवृत्त-तिलक तथा (३७) सेव्यसेवकोपदेश[1]।

१. इन ग्रन्थों का निर्देश प्रो० एस० के० दे के ग्रन्थ History of Sanskrit Poetics, PP. 132–33 के आधार पर किया गया है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इनके अरितिक्त, हस्तिजनप्रकाश-नामक एक ग्रन्थ को भी श्री क्षेमेन्द्र की रचना बतलाई जाती है। किन्तु यह क्षेमेन्द्र प्रकृत ग्रन्थकार से भिन्न थे, क्योंकि इनके पिता का नाम यदुशर्मा था जब कि प्रकृत ग्रन्थकार के पिता का नाम था प्रकाशेन्द्र।

इनमें ग्रन्थ संख्या ५, ९, १०, १२, १३, १४; १६, २०, २१, २२; २६, २८, ३२, ३५, ३६ तथा ३७ प्रकाशित हैं।

क्षेमेन्द्र का औचित्यसिद्धान्त :—

क्षेमेन्द्र द्वारा प्रतिपादित **औचित्यसिद्धान्त** सर्वथा नवीन नहीं है। वस्तुतः **औचित्यसिद्धान्त** ही नहीं, काव्यशास्त्र के सब के सब सिद्धान्त पूर्वाचार्यों द्वारा किसी न किसी रूप में प्रतिपादित अवश्य हुए हैं। किन्तु किसी व्यक्तिविशेष ने उसे विशिष्ट रूप में प्रतिपादित किया है। यही स्थिति अन्य शास्त्रों के सिद्धान्तों की भी है। इसीलिए तत्तत् आचार्य का नाम तत्तत् सिद्धान्त से जोड़ दिया गया है। क्षेमेन्द्र के **औचित्यसिद्धान्त** की भी यही गति है। वस्तुतः इस औचित्य का निर्देश भरत के **नाट्यशास्त्र** में भी हमें मिलता है—

> **अदेशजो हि वेषस्तु न शोभां जनयिष्यति।**
> **मेखलोरसि बन्धे च हास्यायैवोपजायते॥**
>
> (ना० शा० १३।६९)

इसी की छाया क्षेमेन्द्र के प्रकृत पद्य में भी है—

> **कण्ठे मेखलया नितम्बफलके तारेण हारेण वा। इत्यादि।**
>
> (औ० वि० च० ६)

भामह के **काव्यालङ्कार** में भी अस्पष्ट रूप में इस औचित्य की महत्ता बतलाई ही गई है। यही स्थिति दण्डी के **काव्यादर्श** में भी पाई जाती है। **ध्वन्यालोक** तथा क्षेमेन्द्र से अन्य पूर्ववर्त्ती तथा परवर्ती आचार्यों के ग्रन्थों में भी औचित्य के ऊपर विस्तार या संक्षेप में विचार किया ही गया है। किन्तु जिस रूप में क्षेमेन्द्र ने इस पर विचार किये हैं उस रूप में अन्यत्र कहीं भी नहीं किये गये हैं। इसी लिए क्षेमेन्द्र को **औचित्यसिद्धान्त** का संस्थापक कहा जाता है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

औचित्य का अर्थ **उचितस्य भावः** इस विग्रह के अनुसार उचित होना है। जो जिसके अनुरूप हो उसे उसके लिए उचित कहते हैं (का० ७), वैसा होना ही औचित्य है। इसे क्षेमेन्द्र ने **रसजीवितभूत** (का० ३), काव्य का **स्थिर जीवित** (का० ५), **व्यापि जीवित** (का० १०) आदि कहा है। इसके **पदौचित्य** आदि २७ भेद तो स्पष्टतः इस ग्रन्थ में निरूपित हैं (का० ८–१०), साथ हीं ग्रन्थकार ने यह भी कह ही दिया है कि इनसे अतिरिक्त (**वृत्तौचित्य** आदि) भेद भी इसके हैं—**अन्येषु काव्याङ्गेष्वनयैव दिशा स्वयमौचित्यमुत्प्रेक्षणीयम्। तदुदाहरणान्यानन्त्यान्न प्रदर्शितानि** (का० ३९)।

अब विचारणीय यह है कि औचित्य को रस के समान काव्य की आत्मा कहना क्षेमेन्द्र का अभिमत था या नहीं। प्रकृत ग्रन्थ में क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य की आत्मा कहीं नहीं कहा है। जैसा कहा जा चुका है, इन्होंने सर्वत्र इसे काव्य का **'जीवित'** हीं कहा है। जीवित का अर्थ है प्राण। काव्यपुरुष के अनेक अङ्गों में प्राण का स्थान औचित्य को दिया गया है। जैसे किसी शरीर में प्राण के न रहने पर उसके अन्य सारे मनोहर से मनोहर धर्म उपेक्षणीय हो जाते वही स्थिति काव्य की होती कि औचित्य के विना इसके सारे के सारे गुणालङ्कारादि व्यर्थ हो जाते (का० ४–६)। यह हम पहले हीं कह आये हैं कि जो प्रतिपाद्य—अभिव्यज्यमान होता वही आत्मशब्द से काव्य के क्षेत्र में ग्राह्य है। इससे भी स्पष्ट है कि औचित्य को काव्य की आत्मा कहना अनुचित है, क्योंकिं औचित्य काव्यतत्त्व का प्रतिपादक है, स्वयं काव्य का प्रतिपाद्य नहीं। यह तो सत्य हीं है कि शरीर में आत्मा के अस्तित्व (संयोगविशेष) की अभिव्यक्ति शरीर के प्राणयुक्त होने पर हीं होती है, निष्प्राण होने पर नहीं। काव्य-क्षेत्र में भी यही बात है कि काव्य की आत्मा की अभिव्यक्ति इसके औचित्यसम्पन्न होने पर ही होती, अन्यथा नहीं। जिस तरह विभु आत्मा का मृत शरीर के साथ भी उदासीन संयोग रहता ही है किन्तु वह संयोगविशेष नहीं जिसके रहते आत्मा की अभिव्यक्ति होती उसी तरह औचित्यशून्य काव्य के साथ भी काव्यात्मभूत तत्त्व का उदासीन सम्बन्ध तो रह सकता है किन्तु वह सम्बन्धविशेष नहीं, जिसके कारण काव्यात्मा की अभिव्यक्ति होती। अतः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

औचित्य को काव्यात्मा का अभिव्यञ्जक मानना हीं क्षेमेन्द्र का अभीष्ट है, काव्यात्मा मानना नहीं। तभी तो क्षेमेन्द्र स्वयं भी औचित्य को **रस का जीवित** (का० ३) तथा **रससिद्ध काव्य का स्थिर जीवित** (का० ५) कहते। अतः 'औचित्य को क्षेमेन्द्र काव्य पुरुष की आत्मा मानते' ऐसा कहना सर्वथा असङ्गत है।

अब यह भी विचारणीय है कि क्षेमेन्द्र किस तत्त्व को काव्य की आत्मा मानते। यह कहा जा चुका है कि ये भी रस को हीं काव्य की आत्मा कहते। इसकां प्रमापण इनके कथन से ही हो जाता है। प्रकृत ग्रन्थ मे ये कहते कि **औचित्य रस का जीवितभूत है** (का० ३)। यहीं इन्होंने यह भी कहा है कि **रससिद्ध काव्य का स्थिर जीवित औचित्य** है (का० ५)। यदि **रसो वै सः** आदि श्रुति तथा युक्ति से रस सिद्ध तत्त्व है, साध्य नहीं तो रसजीवित शब्द का अर्थ रससम्बद्ध जीवित, अर्थात् रसाभिव्यञ्जक जीवित ही होगा। स्वयं क्षेमेन्द्र भी **रससिद्ध काव्य** (का० ५) कहते। इसमे रससिद्ध शब्द से यही प्रकट होता कि काव्य मे रस ही सिद्ध तत्त्व है—**रसः सिद्धो यत्र**। तृतीयातत्पुरुष समास तो इस पद मे मानना अनुचित है, क्योंकि कविकर्म काव्य स्वयं सिद्ध तो हो नहीं सकता। यद्यपि स्वयं ग्रन्थकार ने वृत्ति मे **रसेन शृङ्गारादिना सिद्धस्य प्रसिद्धस्य काव्यस्य**…, ऐसा अर्थ कर तृतीयातत्पुरुष समास दिखलाया है तथापि यह तात्पर्यार्थवर्णन मात्र है, समुचित विग्रहप्रदर्शन नहीं। सिद्ध वस्तु के सम्पर्क से साध्य पदार्थ भी सिद्धवत् प्रतीत हो जाता। अत्यन्तसिद्ध-प्रसिद्ध रस के सम्पर्क से काव्य भी प्रसिद्धवत् होता। शरीर की प्रसिद्धि तो आत्मसंयुक्त होने पर ही होती। अतः काव्य को औपचारिक रूप मे हीं प्रसिद्ध कहना ग्रन्थकार को इष्ट है, मुख्यरूप मे नहीं। देखा भी यही जाता है कि जो काव्य सरस होता वही प्रसिद्ध होता, नीरस काव्य नहीं। इससे भी हमारे वक्तव्य का ही समर्थन होता। अतः रस को हीं क्षेमेन्द्र भी काव्य की आत्मा मानते—यही प्रतीत होता।

जहाँ तक काव्य के शरीर के विषय मे प्रश्न है, क्षेमेन्द्र ने इसका पृथग् विवेचन इस ग्रन्थ में नहीं किया है। किन्तु इनके द्वारा निरूपित जो २७ प्रमुख औचित्यक्षेत्र हैं उनसे स्पष्ट संकेत मिल ही जाता है कि ये भी गुणालङ्कारादि-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशिष्ट शब्दार्थयुगल को हीं काव्य का शरीर मानते। अत एव कारिका सं० ५ की वृत्ति में इन्होंने स्वयं कहा है—

परस्परोपकारकरुचिरशब्दार्थरूपस्य काव्यस्य··· ।

अतः कहा जा सकता है कि क्षेमेन्द्र के अनुसार काव्यात्मभूत रस का प्रतिपादक गुणालङ्कारादिविशिष्ट शब्द काव्य का शरीर है जब कि औचित्य इसके प्राण हैं ॥

स्निग्धेऽङ्के प्रणिधाय यो मृदुगिरा प्राशिक्षयच्छैशवे
शब्दानामनुशासनं च कणभुक्पक्षं तथान्वीक्षिकीम् ॥
लक्ष्मीनाथ इति श्रुतः श्रुतवताऽप्याराधितोऽस्मत्पिता
तस्यैव स्मरणं ममाद्य शरणं विद्यावनेऽस्मिन् घने ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषयसूची

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१. अत्रोदाहरणप्रत्युदाहरणादिकं तत्तत्प्रसङ्गे द्रष्टव्यम्। सुगमत्वादत्र सूचीपत्रे न समावेशितमस्माभिः ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुद्धिपत्रम्

मुद्रितः पाठः—	पृष्ठे	पंक्तौ
विंशति त्रासादयं वामनः।	५३	६
शुद्धः पाठः—		
निहितत्रासादयं वामनः।		
मुद्रितः पाठः—		
नगरस्था विष्ठा…	६५	१४
शुद्धः पाठः—		
नगरस्था विष्ठा…		
मुद्रितः पाठः—		
आम्नासिषुर्दशरसान्…	६८	२२
शुद्धः पाठः—		
आम्नासिषुर्दश रसान्…		
मुद्रितः पाठः—		
अक्षय्या काव्यनिमित्ता…	१७१	६
शुद्धः पाठः—		
अक्षया काव्यनिमित्ता…		
मुद्रितः पाठः—		
येन च निरामवनतेन…	१७२	६
शुद्धः पाठः—		
येन च नितरामवनतेन…		

---

१. अन्या अपि काचनाऽनवधानहेतुका अशुद्धीः सुधीभिः स्वयमेव संशोध्यानुगृहीतव्योऽयं जनः ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीः

महाकविक्षेमेन्द्रविरचिता

औचित्यविचारचर्चा

श्रीनारायणमिश्रकृतमनोरमाख्य-संस्कृत-
हिन्दी-व्याख्याद्वयोपेता

ध्यानैकतानमनसो निहतान्तरायाः संराधने यमनघं यतयः श्रयन्ति ।
सच्चित्सुखाय सकलागमलक्षिताय तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥१॥
एकां दिवङ्गतपितुर्वदनेऽभिषिच्य याऽन्यां दृशं मयि निधाय रुदत्यनाथे ।
चाप्पं न रोद्धुमशकन्न च वा विमोक्तुं साम्बा श्रियं दिशतु बुद्धिमती सती नः ॥२॥

व्यक्ताशयो लघीयान् निगदव्याख्यात एवायम् ।
ग्रन्थस्तथापि विवृतश्छात्रानलसान् समुद्दिश्य ॥ ३ ॥
स्वानुभूत्यनुसारेण यदिहानुचितं मतम् ।
प्रतीतं तद् यथाप्रज्ञं विवेचितमपि क्वचित् ॥ ४ ॥
पारावार इवापारो व्यापारः कविकर्मणाम् ।
तन्मन्मात्र सतत्त्वज्ञा नासूया नापि चाग्रहः ॥ ५ ॥
स्वविवेकसमाश्रयेण चैतां रचितामात्ममतेर्विशोधनाय ।
गुणदोषविदां सुधीजनानां पुरतो न्यस्य कृतिं कृती भवेयम् ॥ ६ ॥

कृतारिवञ्चने दृष्टिर्येनाञ्जनमलीमसा ।
अच्युताय नमस्तस्मै परमौचित्यकारिणे ॥ १ ॥

प्रारिप्सितग्रन्थविघ्नविघाताय कृतं मङ्गलं शिष्यशिक्षायै निबध्नाति—कृतेति । येन विष्णुनाऽरिवञ्चनेऽमृताय परस्परं विवदमानानामसुराणां प्रतारणे । अत्र निमित्तसप्तमीतिहेतोः प्रतारणायेत्यर्थ ऊह्यः । अञ्जनमलीमसा-ऽञ्जनमलिना दृष्टिः । एतेन मोहिनीरूपत्वं तस्य ध्वनितम् । अमृताय विवदमानान-सुरान् प्रतारयितुं भगवता मोहिनीरूपमङ्गीकृत्य देवेभ्योऽमृतं प्रसाधितमिति कथाऽत्रानुसन्धेया । तस्मै परमौचित्यकारिणे कदाचिदप्यौचित्यानुपेक्ष-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कायाच्युताय नम इत्यन्वयः। अत्रौचित्यस्य परमत्वं सर्वविषयकत्वमेवेति यदाकदाचिदौचित्यकारिभ्यो जनेभ्यः सर्वदौचित्यकारिणो भगवतो व्यतिरेको व्यज्यते प्रतिपाद्यविषयश्च। अत्र समाप्तपुरारात्तता यथाकथञ्चित् परिहरणीया ॥ १ ॥

सर्वदा औचित्य के सम्पादक उस अच्युत (कभी च्युत न होने वाले) विष्णु को मेरा नमस्कार है जिसने समुद्रमथन से प्राप्त अमृत के लिए कलह करने वाले असुरों के प्रतारणार्थ अपने नेत्रों को कज्जल से मलिन, अर्थात् मोहिनीरूप धारण कर लिया था ॥ १ ॥

कृत्वापि काव्यालङ्कारां क्षेमेन्द्रः कविकर्णिकाम्।
तत्कलङ्कं विवेकञ्च विधाय विबुधप्रियम् ॥ २ ॥
औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे।
रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना ॥ ३ ॥

सम्प्रति विषयं सप्रयोजनं स्पष्टतो निर्दिशति युग्मकेन—कृत्वापीति। क्षेमेन्द्राभिधः कविः काव्यालङ्कारां काव्यस्योपमादयोलङ्कारा विवेचिता यत्र तां **कविकर्णिकाम्** एतन्नामिकां कृतिम्। अथवा **अस्रुब्वतः** इति भाष्यप्रयोगेण **न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकरः** इत्यस्यानित्यतया षष्ठीतत्पुरुषानन्तरं मत्वर्थीयाच्प्रत्ययविशिष्ट एवायं शब्दः कव्यालङ्कार इति। अत्र च कर्मधारयपदं बहुव्रीहीतरसमासोपलक्षणमित्यन्यत्र विस्तरः। अस्मिंश्च पक्षे व्यधिकरणबहुव्रीहिक्लेशोपि नेति स्पष्टमेव। **तत्कलङ्कमिति**। तत्पदेनोपसर्जनस्यापि बुद्ध्या सन्निकृष्टस्य परामर्श इति तत्पदं काव्यार्थकम्। कलङ्कपदं च दोषार्थकमिति **काव्यकलङ्काभिधं** किमपि पुस्तकमनेन काव्यदोषनिरूपणपरं विरचितमिति प्रतीयते। तद्विवेकमित्यपि **काव्यविवेकस्य** ग्रन्थस्यैव स्वकृतस्य सङ्केतो ज्ञायते। अस्य विषयो भवेत् काव्यलक्षणादिकम्! यद्वा **काव्यकलङ्कविवेक** इत्येक एव ग्रन्थः स्यात् **तत्कलङ्कविवेकम्** इत्यस्यापि पाठान्तरस्य सम्भावितत्वात्। प्रोक्तग्रन्थद्वयं ग्रन्थत्रयं वा विधायाप्यपरितुष्टो रसस्य चारुचर्वणे चमत्कारकारिणो रसजीवितभूतस्यौचित्यस्याधुना विचारं कुरुते, औचित्यविचारचर्चां प्रणयतीत्यर्थः। अत्र जीवितमभिव्यञ्जकं येन विना रसो नानुभवगोचर इत्यभिप्रायः। यद्वा रसपदमत्र काव्यार्थकमेव। तथा च

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काव्यप्राणभूतस्यौचित्यस्येत्यर्थः । अधुनेत्यनेन चेतः पूर्वमौचित्यं नैवं विवेचितं यथा मयेति ध्वन्यते ॥ २-३ ॥

क्षेमेन्द्र कवि काव्यगत अलङ्कारों के निरूपक 'कविकर्णिका', काव्यदोषनिरूपक 'काव्यकलङ्क' एवं काव्यलक्षणादिविषयक 'काव्यविवेक' नामक ग्रन्थों का प्रणयन करके भी पूर्णतः सन्तुष्ट न होने के कारण रस के चारुचर्वण में चमत्काराधायक एवं काव्य के प्राणभूत औचित्य का सम्प्रति विवेचन करने जा रहे हैं ॥ २-३ ॥

काव्यस्यालमलङ्कारैः किं मिथ्यागणितैर्गुणैः ।
यस्य जीवितमौचित्यं विचिन्त्यापि न दृश्यते ॥ ४ ॥

यस्य काव्यस्य जीवितमौचित्यं विचिन्त्यापि न विलोक्यते । एतेनौचित्यात्यन्ताभावः प्रतिपादितः । तस्य काव्यस्यालङ्कारैरुपमादिभिरलमावर्जकत्वं तत्र नास्तीत्यर्थः । तस्य मिथ्याविगणितैर्वृथासन्निवेशितैर्गुणैरप्योजःप्रसादादिभिः किम् ? न किमपि फलमित्यभिप्रायः । औचित्येन विनैते सर्व एव वृथैव । अत्र काव्यस्य किमलङ्कारैः किम्वा विगणितैर्गुणैः इति प्रथमार्धपाठो ज्यायानिति प्रतीमः ॥ ४ ॥

जिस काव्य में सूक्ष्मेक्षण करने पर भी औचित्य न दिखाई पड़े उसमें अलङ्कार एवं गुणों का सन्निवेश व्यर्थ है ॥ ४ ॥

अलङ्कारास्त्वलङ्कारा गुणा एव गुणाः सदा ।
औचित्यं रस-सिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम् ॥ ५ ॥

परस्परोपकारकरुचिरशब्दार्थरूपस्य काव्यस्योपमोत्प्रेक्षादयो ये प्रचुरालङ्कारास्ते कटककुण्डलकेयूरहारादिवदलङ्कारा एव, बाह्यशोभाहेतुत्वात् । येऽपि काव्यगुणाः केचन तल्लक्षणविचक्षणैः समाम्नातास्तेऽपि श्रुतसत्यशीलादिवद् गुणा एव आहार्यत्वात् । औचित्यं त्वग्रे वक्ष्यमाणलक्षणं स्थिरमविनश्वरं जीवितं काव्यस्य, तेन विनाऽस्य गुणालङ्कारयुक्तस्यापि निर्जीवत्वात् । रसेन श्रृङ्गारादिना सिद्धस्य प्रसिद्धस्य काव्यस्य धातुवादरससिद्धस्येव तज्जीवितं स्थिरमित्यर्थः ॥

प्रोक्तार्थमेव विशदयति—अलङ्कारास्त्विति ।

अत्र प्रथमोऽलङ्कारशब्द उपमादिषु योगरूढो द्वितीयस्तु यौगिक इति न शाब्दबोधासङ्गतिः । एवमेव गुणशब्दविषयेपि बोध्यम् ॥ ५ ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उक्तं स्वयमेव विशदयति—**परस्परेति**। अत्र शब्दार्थरूपस्येति प्रकरणात् काव्यस्यानुप्रासोत्प्रेक्षादयोऽनुप्रासोपमादयो वेत्युचितम्। यथा जीवितशरीर एवालङ्कारा अलङ्कारत्वभाजो भवन्ति यथा च तत्रैवाऽधिकरणतावच्छेदकतया श्रुताद्यो गुणा उपलभ्यन्ते तथैवौचित्यसमन्वित एव काव्येपीति सन्दर्भार्थः। अत्र यद्यपि निर्जीवे शरीरे श्रुतादीनां सर्वथाऽभाव एवोपलभ्यते काव्ये पुनरनौचित्यावगाहिनि निर्जीवे प्रसादादिसद्भावेपि तेषां गुणत्वाभावमात्रमिति दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैषम्यन्तथापि तयोः सर्वथा साम्ये तद्भावाभावप्रसङ्गभियाऽनाहार्यमाहार्यम्वा तयोर्वैषम्यमावश्यकमिति प्रकृतेपि यथाकथञ्चित् सङ्गमनीयोयं ग्रन्थः। वस्तुतस्तु रूपादिवद् गुणा एवेति वक्तुमुचितम्। तथा चैतेषामाहार्यत्वं नामान्तरेण जीवितं गुणादिप्रत्ययविषयत्वाभाव एवेति विवेचनीयं सुधीभिः॥

अनुप्रास-उपमा आदि अलङ्कार बाह्य प्रसाधन मात्र हैं जबकि माधुर्य-प्रसादादि गुण केवल उत्कर्षाधान हेतु हैं। श्रृङ्गारादि रसों से प्रसिद्ध काव्य का अनश्वर जीवनाधायक तत्त्व तो औचित्य हीं है, क्योंकि इसके विना अलङ्कारादि सब के सब व्यर्थ हैं॥ ५॥

परस्पर उपकारक सहृदयावर्जक शब्द एवम् अर्थ हैं स्वरूप जिसके उस काव्य के अनुप्रास आदि शब्दालङ्कार एवम् उपमा आदि अर्थालङ्कार तो कटक, कुण्डल एवं केयूरादि के समान बाह्य प्रसाधन मात्र हैं, क्योंकि ये केवल बाह्य शोभा के ही साधन होते। इसी तरह गुणलक्षणज्ञ आचार्यों द्वारा निरूपित जो कुछ माधुर्य-प्रसादादि काव्य-गुण हैं वे भी आहार्य, अर्थात् कृत्रिम, होने से विद्या, सत्यभाषिता एवं शील आदि के समान उत्कर्ष के हीं आधायक हैं। किन्तु अलङ्कार जिसे सुशोभित करते एवं गुण जिसमें उत्कर्षाधान करते उस काव्य का स्थिर, अनश्वर, प्राणभूत तत्त्व तो औचित्य ही है जिसका लक्षण किया जाने वाला है, क्योंकि औचित्य-स्वरूप जीवनाधायक तत्त्व के विना निर्जीव काव्य के लिए अलङ्कार एवं गुण व्यर्थ हैं। पूर्व पद्य के उत्तरार्ध का आशय यह है कि कफ-पित्त-वातस्वरूप 'त्रिधातु'-शब्द-वाच्य 'रस' से सिद्ध शरीर में प्राण के समान श्रृङ्गारादि रसों से प्रसिद्ध शब्दार्थयुगलस्वरूप काव्यशरीर में उसका स्थिर—अविनश्वर जीवनाधायक प्राण तत्त्व तो औचित्य हीं है॥ ५॥

उक्तार्थस्यैव विशेषमाह—

उचितस्थानविन्यासादलङ्कृतिरलङ्कृतिः।
औचित्यादच्युता नित्यं भवन्त्येव गुणा गुणाः॥ ६॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अलङ्कृतिरुचितस्थानविन्यासादलङ्कर्तुं क्षमा भवति, अन्यथा त्वलङ्कृतिव्यपदेशमेव न लभते। तद्वदौचित्यादपरिच्युता गुणा गुणतामासादयन्ति अन्यथा पुनरगुणा एव ॥

चतुर्थपद्योक्तमेव विधिमुखेन निगमयति—उचितेति। स्पष्टार्थमिदं पद्यम् ॥ ६ ॥

पद्यार्थं विशदयति—अलङ्कृतिरिति। न लभते। विच्छित्त्यनाधायकत्वादिति भावः ॥

उचित स्थान में विन्यस्त होने पर हीं अलङ्कार शोभाधायक हो पाते हैं। इसी तरह औचित्यपूर्ण होने पर ही गुण भी उत्कर्षाधान में समर्थ हो पाते ॥ ६ ॥

अलङ्कार उचित स्थान में अपने विन्यास के कारण ही शोभाधान में समर्थ हो पाते, अन्यथा तो शोभाधायक न होने से उन्हें अलङ्कार कहना भी सम्भव नहीं। इसी प्रकार, औचित्य से परिपूर्ण होने पर हीं गुण गुणत्व, अर्थात् उत्कर्षाधानहेतुत्व, को प्राप्त कर पाते, अन्यथा तो ये दोष ही हो जाते ॥

यदाह—

कण्ठे मेखलया, नितम्बफलके तारेण हारेण वा,
पाणौ नूपुरबन्धनेन, चरणे केयूरपाशेन वा।
शौर्येण प्रणते, रिपौ करुणया, नायान्ति के हास्यता-
मौचित्येन विना रुचिं प्रतनुते नालङ्कृतिर्नो गुणः ॥ ६ ॥

उक्तार्थमेव दृष्टान्तेन समर्थयन्नाह—यदाहेति।

कण्ठ इति। मेखला काञ्ची कटिप्रदेशाभूषणम्। नितम्बफलके = कटिप्रदेशे। तारेण=निर्मलेन। नुपुरम् पादाभरणम्। केयूरम् बाहूर्ध्वभागालङ्करणम्। शेषं स्पष्टम्। अत्र 'आर्त्ते क्रूरतया' इति शौर्येण प्रणते इत्यस्य स्थाने पाठ्यम्। तथा च यथैतान्याभरणानि मेखलादीनि यथा च शौर्यादयो गुणा अस्थाने प्रयुक्ता नालङ्कारा नापि गुणास्तथैव अनौचित्येन सह प्रयुक्ता उत्प्रेक्षादयो माधुर्यादयश्चेति प्रख्यापितमौचित्यस्य महत्त्वं नितराम् ॥

अलङ्कारादि को औचित्य की कितनी आवश्यकता है यह विषय निम्नलिखित पद्य में कहा गया है—

करधनी को गले में, सुन्दर हार को कमर में, पाँयजेब को हाथों में और बाजूबन्द को पैरों में पहन कर कौन सी कामिनी और शरणागत के प्रति वीरता

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं शत्रु के प्रति करुणा का प्रदर्शन कर कौन वीर उपहास योग्य नहीं होते ? इससे स्पष्ट है कि औचित्य के विना न तो अलङ्कार आकर्षक हो पाते और न गुण ही ॥

किं तदौचित्यमित्याह—

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत् ।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते ॥ ७ ॥

यत्किल यस्यानुरूपं तदुचितमुच्यते, तस्य भावमौचित्यं कथयन्ति ॥

औचित्यं निरूपयितुकामो जिज्ञासामुत्थापयति—किं तदिति ।

उचितमिति । [यद् यस्य सदृशं तत्तस्योचितमित्याचार्याः प्राहुः । तस्योचितस्य भावस्तदौचित्यमिति स्पष्टार्थोयम् ॥ ७ ॥

औचित्यम् = तदौचित्यमित्यर्थः ॥

जो जिसके सदृश हो वही उसके लिए उचित है—यही आचार्यों का कथन है । उचित के भाव को ही औचित्य कहा जाता है ॥ ७ ॥

जो जिसके अनुरूप हो वही उसके लिए उचित एवं उचित के भाव को औचित्य कहते हैं ॥

अधुना सकलकाव्यशरीरजीवातुभूतस्यौचित्यस्य प्राधान्येनोपलभ्यां स्थितिं दर्शयितुमाह—

पदे वाक्ये प्रबन्धार्थे गुणेऽलङ्करणे रसे ।
क्रियायां कारके लिङ्गे वचने च विशेषणे ॥ ८ ॥
उपसर्गे निपाते च काले देशे कुले व्रते ।
तत्त्वे सत्त्वेऽप्यभिप्राये स्वभावे सारसङ्ग्रहे ॥ ९ ॥
प्रतिभायामवस्थायां विचारे नाम्न्यथाशिषि ।
काव्यस्याङ्गेषु च प्राहुरौचित्यं व्यापि जीवितम् ॥ १० ॥

एतेषु पदप्रभृतिषु स्थानेषु मर्मस्विव काव्यस्य सकलशरीरव्यापि जीवितमौचित्यं स्फुटत्वेन स्फुरदवभासते ॥

सम्प्रत्यौचित्यविषयानाह—अधुनेति । जीवातुर्जीवनाधायकः ।

पद इति । पदौचित्यात्पृथग् वाक्याद्यौचित्यप्रदर्शनं कृतमवयवावयविनोर्भेदविवक्षया । प्रबन्धो महाकाव्यं काव्यं वा । व्रते=नियमे । तत्त्वे=यथावद्वस्तु-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्णने । सत्त्वे=अन्तर्बले । सारसंग्रहे=तात्पर्यार्थसङ्कलने । अवस्थायाम्=वयसि । एषु सर्वेषु काव्याङ्गेषु व्यापि जीवितमौचित्यं बुधाः प्राहुः ॥ ८–१० ॥

एतेष्वित्यादिसन्दर्भः स्फुटार्थः ॥

अब काव्यों के शब्दार्थयुगलस्वरूप समस्त शरीर में जीवनाधायक औचित्य के प्रमुख क्षेत्रों का निर्देश किया जा रहा है—

"काव्यतत्त्वज्ञ सहृदय काव्य के निम्नलिखित २७ अङ्गों में जीवनाधायक, औचित्य की सत्ता बतलाते हैं—(१) पद, (२) वाक्य, (३) काव्यार्थ, (४) गुण, (५) अलङ्कार, (६) रस, (७) क्रिया, (८) कर्ता आदि कारक, (९) पुंस्त्व आदि लिङ्ग, (१०) एकवचनादि, (११) विशेषण, (१२) प्रादि उपसर्ग, (१३) चकारादि निपात, (१४) काल, (१५) देश, (१६) कुल, (१७) नियमव्रत, (१८) वस्तु के यथार्थस्वरूप के वर्णन, (१९) वस्तु के अन्तर्बल के वर्णन, (२०) अभिप्राय, (२१) स्वभाव, (२२) तात्पर्यार्थ-सङ्कलन, (२३) प्रतिभा, (२४) वयस्, (२५) विचार, (२६) नामकरण, एवम् (२७) इष्टाशंसनात्मक आशीर्वाद ॥ ८–१० ॥

काव्य के मर्मसदृश उपर्युक्त पद आदि स्थानों में उसके समस्त शरीर को व्याप्त करने वाला जीवनाधायक औचित्य स्फुट रूप में प्रकाशमान होता है ॥

तेषूदाहरणानि क्रमेण दर्शयितुमाह—

तिलकं बिभ्रती सूक्तिर्भात्येकमुचितं पदम् ।
चन्द्राननेव कस्तूरीकृतं श्यामेव चान्दनम् ॥ ११ ॥

एकमेवोचितं पदं तिलकायमानं बिभ्राणा सूक्तिः समुचितपरभाग-शोभातिशयेन रुचिरतामावहति ॥

सम्प्रति क्रमप्राप्तम् पदौचित्यं वर्णयति—तिलकमिति । यथा चन्द्रानना काचिद् अवदाता कामिनी कस्तूरीकृतं श्यामं तिलकमेकं धारयन्ती यथा वा श्यामा काचन नायिका चान्दनं श्रीखण्डस्य श्वेतं तिलकमेकं बिभ्राणा रोचते तथैवैकमुचितपदस्वरूपं तिलकं तिलकायमानं वा पदमेकमपि बिभ्रती कवि-भारती विभाति ॥ ११ ॥

समुचितपरभाग इति । समुचितो यः परभागः प्रकृततिलकायमानो-चितपदातिरिक्तः सूक्त्यंशः । परस्परं हि सर्वं सर्वस्य प्रसाधकमिति भावः ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपर्युक्त क्षेत्रों के बीच क्रमप्राप्त पदौचित्य का वर्णन कर रहे हैं—

"जिस प्रकार कोई चन्द्रमुखी गौरवर्णा कामिनी कस्तूरीकृत एक श्याम तिलक से अथवा श्यामा नायिका श्रीखण्डचन्दनकृत एक गौर तिलक से सुशोभित होती उसी तरह तिलकतुल्य एक उचित पद से सम्पन्न कविसूक्ति भी सुशोभित-सहृदयावर्जक होती है ॥ ११ ॥"

तिलकतुल्य एक भी पद को धारण करती हुई कविसूक्ति अपने सौन्दर्य से सहृदयों के हृदय को आवर्जित कर लेती है, क्योंकि वह एक पद सूक्ति के अन्य अंशों की भी शोभा को बढ़ा देती ॥

यथा परिमलस्य—

मग्नानि द्विषतां कुलानि समरे त्वत्खड्गधाराकुले,
नाथास्मिन्निति वन्दिवाचि बहुशो देव श्रुतायां पुरा।
मुग्धा गुर्जरभूमिपालमहिषी प्रत्याशया पाथसः
कान्तारे चकिता विमुञ्चति मुहुः पत्युः कृपाणे दृशौ ॥

अत्र मुग्धापदेनौचित्यचमत्कारिणा सूक्तिः शरदिन्दुवदनेव श्यामतिलकेन श्यामेव शुभ्रविशेषकेण विभूषिता सकलकविकुलललामभूतां विच्छित्तिमातनोति ॥

उदाहरणमाह—यथेत्यादिना।

'हे नाथ ? त्वत्खड्गधारया आकुले अस्मिन् प्रक्रान्ते समरे द्विषतां रिपूणां कुलानि मग्नानि लीनानि' इति वन्दिजनवाचि पुरा बहुशः श्रुतायां सत्याम् मुग्धा गुर्जरदेशाधिपतिमहिषी कान्तारे क्लान्ता सती पाथसो जलस्य प्रत्याशया स्वपतेर्धवले कृपाणे दृशौ नेत्रे मुहुः पुनःपुनश्चकिता विमुञ्चति प्रक्षिपतीत्यर्थः। अत्र जलप्रत्याशया कृपाणे दृष्टिक्षेपे मुग्धात्वं हेतुरिति तत्प्रतिपाकं मुग्धापदं नूनमेवौचित्याधायकम्। कान्तादिपदप्रयोगे तु नैवं स्यादिति स्पष्टमेव। पुनः पुनर्दृष्टिप्रक्षेपेऽपि जलप्राप्त्यभावश्चकितत्वे निमित्तमिति मुहुःपदमपि भवत्येवौचित्याधायकम्। अत्र द्वितीयचरणे 'वन्दिभिर्निगदितामाकर्ण्य वाणीं पुरा' इति पठनीयम् ॥

अत्र पदौचित्यं प्रकटयति—अत्र मुग्धेति ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उदाहरणार्थ कवि परिमल का यह पद्य है—

"हे नाथ ? युद्ध में आप के खड्गरूपी जल-प्रवाह में शत्रुओं का समूह डूब चुका है—यह वन्दियों द्वारा वारम्वार की गई स्तुति सुन कर गुर्जरेश्वर की सरल हृदय वाली महारानी जङ्गल में पिपासाकुल होने पर जल की आशा से अपने पति के खड्ग पर चकित होकर वार-वार दृष्टि डाल रही है ॥"

यहाँ श्यामतिलक से विभूपित शरत्कालीन पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली गौरी कामिनी तथा श्रीखण्ड के श्वेत तिलक से विभूषित श्यामा रमणी की तरह औचित्यमूलक चमत्कार से परिपूर्ण 'मुग्धा' पद से विभूषित कवि की यह सूक्ति समस्त कविमण्डली के हृदय को आवर्जित करने वाले चमत्कार का सम्पादन कर रही है ॥

न तु यथा धर्मकीर्तेः—

लावण्यद्रविणव्ययो न गणितः, क्लेशो महान्स्वीकृतः,
स्वच्छन्दस्य सुखं जनस्य वसतश्चिन्ताज्वरो निर्मितः ।
एषापि स्वयमेव तुल्यरमणाभावाद्वराकी हता,
कोऽर्थश्चेतसि वेधसा विनिहितस्तन्व्यास्तनुं तन्वता ॥

अत्र "तन्व्याः" इति पदं केवलशब्दानुप्रासव्यसनितया निवद्धं न काञ्चिदर्थौचित्यचमत्कारकणिकामाविष्करोति । "सुन्दर्याः". इत्यत्र पदमनुरूपं स्यात् । अन्यानि वा निरतिशयरूपलावण्यव्यञ्जकानि ॥

तन्वीपदं तु विरहविधुररमणीजने प्रयुक्तमर्थौचित्यशोभां जनयति—

यथा श्रीहर्षस्य—

परिम्लानं पीनस्तनजघनसङ्गादुभयत-
स्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमलनमप्राप्य हरितम् ।
इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः
कृशाङ्ग्याः सन्तापं वदति विसिनीपत्रशयनम् ॥

अत्र सागरिकाया विरहावस्थासूचकं "कृशाङ्ग्याः" इतिपदं परमौचित्यं पुष्णाति ॥ ११ ॥

सम्प्रति पदगतमनौचित्यं प्रदर्शयति—न तु यथेति । लावण्यद्रविणमिति । लावण्यमेव द्रविणम् इत्यर्थः । क्लेशो निर्माणक्लेशः । तुल्यरमणाभावादनुरूपपत्यभावात् । शेषं पद्यं स्पष्टार्थम् ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्रानौचित्यमुपपादयति—**अत्रेत्यादिना** । सुन्दर्या इति पदप्रक्षेपे छन्दोभङ्ग इति हेतोरुक्तम्—**अन्यानीति** । **'रामामिमाम्'** इत्यादिकानि । **जनयतीति** ।

अत्रेदं विवेचनीय —प्रकृते तन्वीति पदं साध्वेव कविना प्रयुक्तम् । इदं हि पद्यं कञ्चित्कामिनीविशेषमुद्दिश्यैवेति सुव्यक्तमेव । तत्र च तुल्यरमणाभावद्धता यदि सा तर्हि पूर्वं सुतरां तन्वीत्वं तस्याः । यदप्युक्तं तन्वीपदं विरहविधुररमणीजने प्रयुक्तमित्यादि तदप्यत्र न विरोधि, तुल्यरमणाभावादेव तस्या अपि तथात्वात् । वस्तुतस्तु तन्वीपदस्य तथा प्रयोगसङ्कोचः प्रयोगाननुरोधी । अत एव परिणीताया एव यथाकथञ्चित् पतिवियोगे विरहविधुरत्वमिति तुल्यरमणाभावेऽपि अपरिणीतायास्तस्या न विरहविधुरत्वमित्यपि निरस्तम् । अपरिणीतैव सेत्यत्र मानाभावश्च । किञ्च व्यङ्ग्यस्य सौन्दर्यातिशयस्य सुन्दर्यादिपदप्रयोगेण वाच्यत्वे विवक्षिते कीदृशमौचित्यमित्यपि विभावनीयम् ॥

तन्वीपदपर्यायस्य कृशाङ्गीपदस्योचितं प्रयोगं निदर्शयति— **यथा श्रीहर्षस्येति** ।

परिम्लानमिति । रत्नावल्यां सागरिकाविरहावस्थावर्णनमिदम् । अत्रोभयत इति पीनजस्तनजघनाश्रयप्रदेशयोरित्यर्थकम् । श्लथपदं शिथिलार्थकम् । आक्षेपो विक्षेपः समन्तात् क्षेपणमिति भावः । वलनमाकुञ्चनम् । एतदुभयं च वियोगातिशये स्वाभाविकमेव । बिसिनी कमलिनी । अत्राधोमुखं शयानाया नायिकायां दीर्घनिःश्वासवन्नासिकाघटिताननसम्मर्दात् कथं न बिसिनीपत्रशयनस्य परिम्लानत्वमिति कविरेव प्रष्टव्यः, मौनमालम्बमानोयमौचित्याचार्यश्च विशेषेण । सङ्गादित्यत्र च **मर्दाद् भाराद् घर्षाद्वेति** पाठ उचितः प्रतीयते । पीनत्वविशिष्टवस्तुसङ्गस्य यतः परिम्लानजनकत्वं न नियतम् ॥

अभिप्रेतार्थं स्पष्टयति—**अत्रेत्यारभ्य पुष्णातीत्यन्तेन** ग्रन्थेन ॥

किन्तु धर्मकीर्त्ति के इस पद्य में औचित्य नहीं है—

"पता नहीं, विधाता ने इस तन्वी के शरीर का निर्माण क्या सोच कर किया, क्योंकि एक तो उसने इसके निर्माण में सौन्दर्यरूपी बहुमूल्य धन के अपव्यय की उपेक्षा की, स्वयं बहुत क्लेश उठाया, सुखपूर्वक स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने वाले

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरुष के मन में कामिनीचिन्तनजन्य ज्वर भी उत्पन्न कर दिया किन्तु अन्त में यह बेचारी तन्वी भी अपने अनुरूप पति न मिलने से बेमौत ही मर गई ॥"

यहाँ तन्वी-शब्द केवल तकारानुप्रासस्वरूप शब्दानुप्रास के प्रति आग्रह से हो रखा गया है, इससे थोड़ा भी औचित्यमूलक चमत्कार का आधान नहीं होता। यहाँ तो अर्थानुरूप 'सुन्दरी' पद का प्रयोग ही उचित होता, अथवा अद्वितीय लावण्य के अभिव्यञ्जक किसी अन्य शब्द का (क्योंकि 'सुन्दर्याः' कहने पर शार्दूलविक्रीडित छन्द का स्वरूप नष्ट हो जाता) ॥

'तन्वी' पद का प्रयोग तो वहीं औचित्यमूलक चमत्कार का जनक होता है जहाँ विरहाकुल कामिनी की अभिव्यक्ति करनी हो।

उदाहरणार्थ श्रीहर्ष की रत्नावली का यह पद्य है—"कृशाङ्गी (तन्वी) सागरिका के उदयन-विरहजन्य सन्ताप को तो उसकी कमलिनी-पत्रों से बिछी शय्या ही प्रकट कर दे रही है, क्योंकि पीन कुचों एवं जङ्घाओं के भार से दोनों के नीचे यह कुम्हलाई हुई है, जब कि शरीर के मध्य भाग (स्तन एवं जघन के मध्य उदरभाग) के नीचे घर्षण-रहित होने से यह हरी ही बनी है और शिथिल बाहुलता के आकुञ्चन-प्रसारण से अस्तव्यस्त हो गई है ॥"

यहाँ सागरिका की विरहावस्था का सूचक होने से 'तन्वी' के पर्याय 'कृशाङ्गी' पद का प्रयोग अत्यन्त उचित है ॥

वाक्यगतौचित्यं दर्शयितुमाह—

औचित्यरचितं वाक्यं सततं संमतं सताम् ।
त्यागोदग्रमिवैश्वर्यं शीलोज्ज्वलमिव श्रुतम् ॥ १२ ॥

औचित्यरचितं वाक्यं काव्यविवेकविचक्षणानामभिमततमम् ॥

क्रमायातं वाक्यगतौचित्यं प्रशंसति—वाक्येति। उदग्रमुदात्तम्। त्यागेनोदात्तम्। शीलं सत्स्वभावः सद्वृत्तं च ताभ्यामुज्ज्वलम्। काव्यविवेकविचक्षणानामिति कारिकोक्तस्य सतामित्यस्य विवरणम् ॥

अब वाक्यगत औचित्य बतला रहे हैं—जिस प्रकार दान के कारण उदार, अर्थात् प्रशस्त, ऐश्वर्य एवं सत्स्वभाव तथा सदाचरण से विद्या सहृदयों के लिए सर्वदा अभीष्टतम होती उसी प्रकार औचित्य-घटित कविवाक्य भी काव्यतत्त्वज्ञों के लिए अभीष्टतम होता ॥ १२ ॥

औचित्य से युक्त वाक्य हीं काव्य के गुण-दोष के विवेचक सहृदयों का अभीष्टतम होता है ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथा मम विनयवल्ल्याम्—

देवो दयावान्विजयो जितात्मा यमौ मनःसंयममाननीयौ।
इति ब्रुवाणः स्वभुजं प्रमार्ष्टि यः कीचकाकालिककालदण्डम् ॥
धीरः स किर्मीरजटासुरारिः कुबेरशौर्यप्रशमोपदेष्टा।
दृष्टो हिडिम्बादयितः कुरूणां पर्यन्तरेखागणनाकृतान्तः ॥

(युग्मकम्)

अत्र भीमस्य भीमचरितोचितकीचकाकालिककालदण्डहिडिम्बादयितादिभिः पदैरुन्निद्ररौद्रस्वरूपानुरूपो वाक्यार्थः सजीव इव भासते ॥

अथवा राजशेखरस्य—

सम्बन्धी पुरुभूभुजां मनसिजव्यापारदीक्षागुरु-
गौराङ्गीवदनोपमापरिचितस्तारावधूवल्लभः।
सद्योमार्जितदाक्षिणात्यतरुणीदन्तावदातद्युति-
श्चन्द्रः सुन्दरि दृश्यतामयमितश्चण्डीशचूडामणिः ॥

अत्रापि चन्द्रमसः शृङ्गारान्तरङ्गैरनङ्गोद्दीपनैः पदैर्निर्वर्तितो वाक्यार्थः सर्वथौचित्यसामर्थ्येन समुचितार्थवशेनात्यर्थमत्यन्तमर्थनीयतां प्राप्तः ॥

युग्मकेनैतदुदाहरति— यथेति। देवो युधिष्ठिरः। विजयोऽर्जुनः। जितात्मा वशी जितेन्द्रिय इति तात्पर्यम्। यमौ नकुलसहदेवौ मनःसंयममाननीयाविति। एभिर्दयावत्त्वादिविशेषणैः युधिष्ठिरादीनां शत्रुशातनाप्रवृत्तिः सूच्यते। अत एव भीमसेनस्य तत्र प्रयत्नः। प्रमार्ष्टि प्रसाधयति। यो भीमसेनः। कीचकाय विराटश्यालकाय अकालिकम् काले भवं कालिकम् तद्भिन्नमकालिकम्। कालस्य यमस्य दण्डम्। एतच्च स्वभुजविशेषणम्। किर्मीरा विचित्रा जटा यस्यासौ किर्मीरजटः, स चासुरस्तस्यारिरिति किर्मीरजटाऽसुरारिः। पर्यन्तरेखा जीवनान्तलेखा तस्या गणनायां कृतान्तो यम इवेत्यर्थः। कुरुकूलोन्मूलक इति तात्पर्यम्। अत्र मन.पदं व्यर्थमेव। 'देवो दयावान् विजयो जितात्मा यमौ यतौ नालमिति ब्रुवाणः। यः कीचकाकालिककालदण्डं चण्डं स्वबाहुं बहुशः प्रमार्ष्टि' इत्येवं पठनेन सौष्ठवं भवेत्!

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथवा 'देवं दयालुं विजयं विनीतं यमौ पुनः संयमिनौ विचिन्त्य' इति पूर्वार्द्धं पठनीयम् ॥

प्रकृते वाक्यौचित्यं सङ्गमयति--अत्र **भीमस्येति** । उन्निद्रमुद्बुद्धं व्यक्तमिति यावत ॥

अस्यैवोदाहरणान्तरमाह--**सम्बन्धीति** । सम्बन्धी मूलम् । अत एव सन्मूलमिति पठनीयम् यथास्थिते भाषास्वभावात् पुरोरेवादिपुरुषत्वप्रतिपत्तेः । उपमार्थं परिचित उपमापरिचितः तदर्थं सर्वैः प्रसिद्धतयोपात्त इत्यर्थः । तारा एव वध्वः, तासां वल्लभः । **सद्योमार्जितेति** । दाक्षिणात्यतरुणीनां श्यामात्वेन तन्मुखस्थानां सद्योमार्जितानां दन्तानां गौरत्वं प्रखरतया भासत इत्युपमाभिप्रायः । चण्डीशः शिवः । इतः प्राप्त उदित इति भावः ॥

इसके उदाहरण हैं मेरी विनयवल्ली के पद्य—

"पूजनीय युधिष्ठिर दयालु हैं, अर्जुन आत्माभिमानशून्य हैं और नकुल एवं सहदेव संयम को ही सम्मान देते । अतः ये तो शत्रु-दमन में प्रवृत्त होंगे ही नहीं—ऐसा कहते हुए जो कीचक के लिए असामयिक यमदण्डरूप अपने बाहुदण्ड को चढ़ाने लगे वे धीर, विचित्र जटा से सम्पन्न राक्षसों के संहारकर्ता, कुबेर की शक्ति को ध्वस्त करने वाले, कौरवों के विनाशक, हिडिम्बा के प्रियतम भीमसेन देखे गए ॥"

यहाँ भीमसेन की प्रकृति के अनुरूप जो उनके 'कीचकाकालिककालदण्ड', 'हिडिम्बादयित' आदि पदसमूह विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुये हैं उनसे उत्कट रौद्र रस की अभिव्यक्ति में समर्थ वाक्यार्थ सजीव हो उठा है ॥

इसका दूसरा उदाहरण राजशेखर का यह पद्य है—

"हे सुन्दरि ? जो पुरुकुल में उत्पन्न राजाओं का मूल पुरुष है, जो कामलीला की दीक्षा देने वाला गुरु है, जो गौराङ्गी कामिनी के मुख की उपमा के लिए चुना गया है, जो तारा-स्वरूप रमणियों का प्रियतम है, जो श्यामवर्णा दक्षिणदेशीय तरुणी के सद्यः प्रक्षालित दाँतों के समान चमकीला है एवं जो भगवान् शिव का चूड़ामणि है उस उदीयमान चन्द्रमा की ओर देखो ॥"

यहाँ भी चन्द्रमा के विशेषण के रूप में प्रयुक्त 'मनसिजव्यापारदीक्षागुरु', 'गौराङ्गीवदनोपमापरिचित' आदि श्रृङ्गार के अनुरूप एवं कामोद्दीपक पदों द्वारा उपस्थापित वाक्यार्थ अर्थगतौचित्य का प्रतिपादक होने से अत्यन्त श्लाघनीय है ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नतु यथास्यैव—

नाले शौर्यमहोत्पलस्य विपुले सेतौ समिद्वारिधेः
शश्वत्खड्गभुजङ्गचन्दनतरौ क्रीडोपधाने श्रियः।
आलाने जयकुञ्जरस्य सुदृशां कन्दर्पदर्पे परं
श्रीदुर्योधनदोष्णि विक्रमपरे लीनं जगन्नन्दतु॥

अत्रातिशयपरकर्कशसोत्कर्षसुभटभुजस्तम्भस्यासमुचितेन कुवलयनालतुलाधिरोपणेन वाक्यार्थः सोपहासतयेव निबद्धः परिज्ञायते॥ १२॥

सम्प्रति वाक्यगतानौचित्यं प्रसङ्गात्प्रदर्शयति—नत्विति। नाले दण्डे। शौर्यमेव महोत्पलं तस्य। सेतौ बन्धे। समित्समर एव वारिधिस्तस्य। शश्वत् समन्तात् खड्ग एव भुजङ्गस्तस्य कृते चन्दनतरुः, तस्मिन्। अत्र प्रक्रमभङ्गार्थम् 'शश्वच्चन्दनभूरुहेऽसिफणिनः' इति द्वि० चरणे पठनीयम। एवमेव तृतीयचरणे 'आलाने जयकुञ्जरस्य च परं कन्दर्पदर्पे स्त्रियः' इति पठितव्यम्। उपधानं शिरोधानम् 'तकिया' इति लोकभाषायां प्रसिद्धम्॥

अत्र वाक्यानौचित्यं समुद्घाटयति—अत्रातिशयेति॥

किन्तु राजशेखर के ही निम्नलिखित पद्य में वाक्यौचित्य नहीं है—

"महाराज दुर्योधन की उस पराक्रमी भुजा में आश्रित यह जगत् आनन्दित हो जो (भुजा) शूरतारूपी कमलिनी के लिए नालदण्ड, युद्धस्वरूप महासागर के लिए विशाल सेतु (पुल), खड्गस्वरूप सर्पों के लिए चन्दनवृक्ष, राजलक्ष्मी के लिए क्रीडोपधान (तकिया), विजयस्वरूप गजराज के लिए शृङ्खला एवं मृगनयनियों के लिये कामदेव के दर्पस्वरूप है।"

यहाँ एक महान् वीर की शत्रुओं के लिए अत्यन्त कठोर भुजा का कमलनाल (आदि) के साथ अनुचित अभेदारोप होने से वाक्यार्थ उपहासास्पद-सा प्रतीत होता है॥

प्रबन्धार्थौचित्यं दर्शयितुमाह—

उचितार्थविशेषेण प्रबन्धार्थः प्रकाशते।
गुणप्रभावभव्येन विभवेनैव सज्जनः॥ १३॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अम्लानप्रतिभाप्रकर्षोत्प्रेक्षितेन सकलप्रबन्धार्थाप्यायिपीयूषवर्षेण समुचितार्थविशेषेण महाकाव्यं चमत्कारकारितामापद्यते ॥

प्रबन्धार्थौचित्यं व्याचष्टे-उचितेति । पद्यं स्पष्टार्थम् । वस्तुतस्तु पदादिवत्तदर्थौचित्यमपि पृथगेवोपनिबन्धनीयम् ॥ १३ ॥

अम्लानेत्यादि गद्यप्रबन्धोपि स्पष्टार्थ एव ॥

अब प्रबन्धार्थौचित्य का प्रतिपादन किया जा रहा है—समुचित अर्थविशेष द्वारा प्रबन्ध, अर्थात् काव्य, का अर्थ उसी तरह प्रकाशित होता जिस तरह दयादि गुणों के उत्कर्ष से युक्त रमणीय वैभव द्वारा सज्जन पुरुष प्रकाशित होता ॥

उज्ज्वल प्रतिभा के प्रकर्ष से कल्पित एवं समस्त प्रबन्धार्थ को पूरित कर देने वाली सुधावृष्टिस्वरूप समुचित अर्थविशेष द्वारा महाकाव्य चमत्कारपूर्ण हो जाता है ॥

यथा कालिदासस्य—

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।
तेनार्थित्वं विधिपरवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥

अत्राचेतनस्य चेतनाध्यारोपेण मेघस्य दौत्ययोग्यताधानाय प्रथितपुष्करावर्तकपर्जन्यवंश्यत्वममात्यप्रकृतिपुरुषत्वञ्च यदुपन्यस्तं तेन समस्तप्रबन्धस्योत्प्रेक्षितेतिवृत्तरुचिरतरस्य निरतिशयमौचित्यमुद्द्योतितम् ॥

प्रबन्धार्थौचित्यमुदाहरति—यथा कालिदासस्येति । मेघदूते मेघं प्रति यक्षस्योक्तिरियम् । पुष्कराश्चावर्त्तकाश्च मेघजातिविशेषाः । प्रकृतिपुरुषः प्रधानामात्यः । कामरूपमिच्छया नानारूपधारकम् । अर्थित्वं याचकत्वम् । अत्र 'तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्' इति पाठः साधीयान् ॥

औचित्यं विशदयति—अत्राचेतनस्येति । दौत्याय अचेतने चेतनत्वारोप आवश्यकः, अन्यथा तेन दौत्यकर्मनिर्वाहासम्भवात् ।

अत्रेदं चिन्तनीयम्—प्रथमं कविना 'धूमज्योतिः' इत्यादिना 'कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु' इत्यन्तेन पद्येन यक्षस्य चेतनाऽचेतनविवेका-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्षमत्वं वर्णितम् । ततश्च कथं तेनाचेतने मेघे चेतनत्वारोपः संगच्छेत ? यतो हि ज्ञानपूर्वक एवंवम्विधारोपो भवितुमर्हो यक्षदृष्ट्या । अन्यदृष्ट्या यद्यत्र चेतनारोपो वर्ण्यस्तर्हि नास्माभिः किञ्चिद् वक्तव्यम् ॥

उदाहरणार्थ कालिदास का यह पद्य है—

"हे मेघ ? मैं यह जानता हूँ कि तूँ पुष्कर एवं आवर्तक नामक मेघ के विश्व-विख्यात वंश में उत्पन्न हुआ है और देवराज इन्द्र का इच्छानुसार स्वरूप धारण करने वाला प्रधान अमात्य भी है। इसीलिए मैंने, जिसकी प्रेयसी दौर्भाग्य से इस समय दूर है, अर्थात् जो सम्प्रति प्रियाविरह से कातर है, तुझसे दौत्यकर्म के लिए प्रार्थना की है, क्योंकि उच्च व्यक्ति से की गई प्रार्थना विफल हो कर भी नीच से की गई सफल प्रार्थना की अपेक्षा श्रेयस्कर है ॥"

यहाँ अचेतन मेघ में दौत्य-योग्यता के सम्पादनार्थ जो चेतनत्व का आरोप किया गया है तथा उसे पुष्कर एवं आवर्तक का वंशज और इन्द्र का प्रधान अमात्य कहा गया है उससे समस्त प्रबन्ध—मेघदूत काव्य में कवि द्वारा उत्प्रेक्षित रमणीय कथानक का अतिशय औचित्य प्रकट हो रहा है ॥

यथा वा भवभूतेः—

(नेपथ्ये)

योऽयमश्वः पताकेयमथवा वीरघोषणा ।
सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठकुलद्विषः ॥

लवः—(सगर्वमिव ।) अहो सन्तापनान्यक्षराणि ! भो भोः ! किमक्षत्रिया पृथिवी यदेवमुद्घुष्यते । (विहस्य) आः किं नाम स्फुरन्ति शस्त्राणि ? (धनुरारोपयन्)—

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्र-
मुद्गारिघोरघनघर्घरघोषमेतत् ।
ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र-
जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम् ॥

अत्रार्थे रामायणकथातिक्रमेण नूतनोत्प्रेक्षिता रामतनयस्य सहज-विक्रमानुसारिणी शौर्योत्कर्षभूमिः परप्रतापस्पर्शासहिष्णुता प्रबन्धाय रसबन्धुरामौचित्यच्छायां प्रयच्छति ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रबन्धार्थौचित्यस्योदाहरणान्तरं दर्शयति—**यथा वेति**। उत्तररामचरितस्थोयं सन्दर्भः। चतुर्थाङ्कान्ते किम्प्रयोजनोयमश्वः परिवृतः पर्यटतीति बटुना पृष्टस्य नेपथ्यागतमुत्तरमिदम् पद्यम्—**योयमश्व** इति। योयमश्वः परिवृतः पर्यटति स सप्तलोकैकवीरस्य रावणकुलनिहन्तू रामस्य पताका विजयध्वजो वीरघोषणा डिण्डिमध्वनिर्वेति पद्यार्थः। अत्रैकवीरः प्रधानवीर एकमात्रवीरो वेत्यर्थकः। य इयमिति स्त्रीलिङ्गनिर्देशः पताकादिविधेयापेक्षया। यत्रोद्देश्यप्रतिनिर्देश्ययोर्भिन्नलिङ्गता तत्रोभयोरैक्यमापादयत् सर्वनामाविशेषेण तल्लिङ्गभाग्भवतीति शाब्दिकाः॥

सन्तापनानि क्रोधोद्दीपकानि। अत्रोक्तिप्रत्युक्त्योर्मध्यांशो न परामृष्टः। मन्ये ग्रन्थकृद्दृष्ट्या प्रक्षिप्तोयं भवेदथवा प्रकृतानुपयोगादेवापरामृष्टः।

ज्याजिह्वयेति। ज्या मौर्व्येव जिह्वा तया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्रम्। वलयिते वेष्टिते उत्कटकोटी उन्नताग्रभागे दंष्ट्रे दन्तौ यस्य तद् (धनुः), उद्गारिघोरघनघर्घरघोषम् उद्गारिण उद्गच्छन्तः घोराः भयङ्करा घनाः सान्द्राश्च घर्घरघोषा घर्घरेत्याकारकाः शब्दा यस्य तदेतच्चापं ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्रजृम्भाविडम्बि ग्रासे जगद्विनाशे प्रसक्तम् हसतोऽन्तकस्य यमस्य वक्त्रं मुखमेव यन्त्रं तस्य जृम्भां(मुख-)व्यादानं विडम्बयितुमनुकर्तुं शीलं यस्य तत्, अत एव विकटोदरम् विततमध्यभागं भवतु। रूपकेण सङ्कीर्णोपमात्र पद्ये॥

प्रकृतौचित्यमुपपादयति—**अत्रार्थ इति**। रामतनयस्य लवस्य। रसबन्धुरां प्रकृतवीररसस्पृहणीयाम्। औचित्यच्छायामौचित्यरूपावरणम्॥

प्रबन्धार्थौचित्य का ही दूसरा उदाहरण भवभूति का यह सन्दर्भ है—

(नेपथ्य में)

"आप जिस अश्व को देख रहे हैं वह उन रामचन्द्र की विजयपताका अथवा पराक्रमसूचक डिण्डिम है जो सातो लोकों मे एकमात्र वीर हैं तथा रावण के कुल के संहारक हैं।"

लव—(अहङ्कारपूर्ण मुद्रा में) अरे! यह घोषणा तो बहुत ही क्लेशकर है! क्यों? क्या यह पृथिवी वीर-विहीन हो गई है कि ऐसी घोषणा की जारही है? (हँस कर) क्या शत्रु के अस्त्र-शस्त्र चमक रहे हैं! (अपना धनुष सम्भालते हुए)

"मेरा यह धनुष विस्तृत मध्यभागवाला हो जाय (पूर्णरूपेण फैल जाय) जो (धनुष) अपनी प्रत्यञ्चास्वरूप जिह्वा से वेष्टित और उन्नत कोटि (धनुष के

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोने) स्वरूप दातों से युक्त होकर भयङ्कर तथा गम्भीर घर्घर ध्वनि निकाल रहा है तथा निगलने के लिए उद्यत एवं हँसते हुए यमराज के यन्त्रस्वरूप मुखकी जमुहाई का अनुकरण कर रहा है ॥"

यहाँ रामायण में वर्णित कथा का अतिक्रमण करके भी कवि द्वारा प्रथमतः कल्पित जो लव की स्वाभाविक शक्ति के अनुरूप एवं उसकी शूरता की पराकाष्ठा का प्रतिपादक यह वर्णन है कि वह दूसरों के प्रकर्ष को वर्दास्त नहीं कर सकता, वह निश्चित हीं काव्यार्थ मे रसास्वादनसमर्थ औचित्य का आधान करने वाला है ॥

नतु यथा राजशेखरस्य—

रावणः—

यत्पार्वतीहठकचग्रहणप्रवीणे
पाणौ स्थितं पुरभिदः शरदां सहस्रम् ।
गीर्वाणसारकणनिर्मितगात्रमत्र
तन्मैथिलीक्रयधनं धनुराविरस्तु ॥

जनकः—आविरस्तु सममगर्भसम्भवया सीतया ॥

अत्र 'आविरस्तु समं सीतया' इति जनकराजेन यदुच्यते तेनास्य पिशिताशनाय तनयाप्रतिपादनमभिमतमिवोपलक्ष्यते । नचैतद्विद्मः कथं भक्ष्यभूता कुसुमकोमलाङ्गी पुरुषादाय प्रतिपाद्यत इत्यनौचित्येन प्रसिद्धं वृत्तवैपरीत्यं परं हृदयविसंवादमादधाति ॥

प्रबन्धार्थानौचित्यमुदाहरति—नतु यथेति । यत्पार्वतीति । पार्वत्या हठेन यत् कचग्रहणं केशस्पर्शः तत्र प्रवीणे पुरभिदो हरस्य पाणौ शरदां सहस्रं वर्षसहस्रपरिमितं स्थितं यद् (धनुः) गीर्वाणानां देवानां सारस्यास्थ्यादेर्बलस्य वा कणैः निर्मितं गात्रं शरीरं यस्य तथाविधं मैथिल्याः क्रयार्थं मूल्यभूतं तद् धनुरत्र स्वयम्वरसदस्याविर्भवत्विति रावणोक्तेरर्थः । शरदां सहस्रमित्यत्यन्तसंयोगे द्वितीया ॥

ततः परं जनकः प्राह—आविरस्त्विति ।

अगर्भसम्भवया न गर्भसम्भवाऽगर्भसम्भवा तया सीतया सहेति । स्वयम्वरविधिप्रारम्भं सूचयतीयमुक्तिर्जनकस्य ॥

अनौचित्यं प्रकटयति—अत्राविरस्त्विति । पिशिताशनायाममांसभक्षकाय राक्षसाय । भक्ष्यभूतेत्यादि । अत्र पुरुषादाय पुरुषमत्तीति पुरुषा-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दस्तस्मै । वृत्तवैपरीत्यमितिवृत्तविरोधः । अत्रानौचित्योपपपादनं चिन्त्यम् । यतो रावणोक्तेरुद्विग्नस्य जनकस्येयमुक्तिरिममेव भावं प्रकाशयितुमलं यदृष्ट्वा मैथिलीमयं वराको रावणस्तद्दर्शनाकृष्टः कामं स्वपौरुषं परीक्षताम्, अन्यथा परस्तात् पुनरप्ययं दुष्टो मैथिलीमवलोक्य धनुर्भङ्गार्थमुद्यतः स्यात् कदाचित् । अतो मैथिलीमवलोकयन्नेव धनुर्भङ्गार्थमयं सकृदेव प्रयतताम् । तथा च नोक्तरूपेणानौचित्यानुसन्धानस्यावसरोऽस्मन्मते । अधिकं सहृदयैर्विवेचनीयम् ॥

किन्तु राजशेखर के निम्नलिखित सन्दर्भ में प्रबन्धार्थौचित्य नही है—

"रावण (कह रहा है)—

जो (धनुष) पार्वती के केशपाश से हठपूर्वक खेलने में कुशल भगवान् शङ्कर के हाथ में हजारों वर्षों तक रहा है, वह देवताओं के तेजःकणों से निर्मित तथा सीता को खरीदने के लिए मूल्यभूत धनुष प्रकट होवे ॥

जनक (कह रहे हैं)—अयोनिजा सीता के साथ ही वह धनुष प्रकट होवे ।"

यहाँ जनक द्वारा यह कहा जा रहा है कि वह धनुष सीता के साथ ही प्रकट होवे । इससे ऐसा प्रतीत होता है मानों राक्षस रावण को वे सीता का समर्पण करना चाहते हों । यह नहीं समझ पाते कि फूलों के तुल्य कोमल शरीर वाली सीता मानव के भक्षक राक्षस रावण को कैसे दे दी जाय ? अतः प्रसिद्ध इतिवृत्त के विपरीत यह सन्दर्भ अनौचित्य के कारण हृदय को बहुत आन्दोलित कर देता है ॥

यथा वा कालिदासस्य—

ऊरुमूलनखमार्गपङ्क्तिभिस्तत्क्षणं हृतविलोचनो हरः ।
वाससः प्रशिथिलस्य संयमं कुर्वतीं प्रियतमामवारयत् ॥

अत्राम्बिकासम्भोगवर्णने पामरनारीसमुचितनिर्लज्जसज्जनखराजिविराजितोरुमूलहृतविलोचनत्वं त्रिलोचनस्य भगवतस्त्रिजगद्गुरोर्यदुक्तं तेनानौचित्यमेव परं प्रबन्धार्थः पुष्णाति ॥ १३ ॥

उदाहरणान्तरं कुमारसम्भवस्याष्टमसर्गात् प्रस्तौति—यथा वेति । ऊरुमूलेति । ऊरुमूले जघनमूले या नखक्षतपंक्तयस्ताभिस्तत्क्षणं प्रातर्वायुसेवनसमये हृते विलोचने यस्य स हरः प्रशिथिलस्य वाससः शाटिकायाः संयमं निरोधं कुर्वतीं प्रियतमां पार्वतीं न्यवारयत् ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्रानौचित्यमुद्घाटयति—अत्राम्बिकेति। अत्र 'पामरनारीसमुचित-निर्लज्जसज्जनखराजिविराजितोरुमूलत्वं तद्धूतलोचनत्वं च' इति पाठः साधुः। यथाश्रुते तु 'पामरपुरुषसमुचित' इत्येव ज्यायान् पाठः। वस्तुतस्तु जगत्पित्रोः सम्भोगवर्णनमेवानुचितमित्यनुक्त्वा तद्धूतविलोचनत्ववर्णनानौचित्यप्रतिपादनपर्यन्तानुधावनं ग्रन्थकृतो मुधैव॥

इसी प्रकार कालिदास के निम्नलिखित पद्य में भी प्रबन्धार्थौचित्य का अभाव है—

"जब प्रातः काल पार्वती तथा परमेश्वर रतिश्रम के निराकरण के लिए शीतल मलयानिल का सेवन कर रहे थे उस समय पार्वती का वस्त्र-बन्धन कुछ ढीला पड़ गया था। तब वे उसे सम्हालने लगीं, किन्तु उनके जघनों के उपरी भाग में अङ्कित नख-क्षत भगवान् परमेश्वर की दृष्टि को इतना आकृष्ट कर रहे थे कि उन्होंने पार्वती को वैसा करने नहीं दिया॥"

यहाँ जगदम्बा पार्वती के सम्भोग का वर्णन करते समय उनके जघनमूल में पामर नारी के जघनस्थल के समान नख-क्षतों का तथा उससे जगत्पिता परमेश्वर की दृष्टियों के आकृष्ट होने का जो वर्णन कवि ने किया है उससे प्रबन्धार्थ में अत्यन्त अनौचित्य प्रकट हो रहा है॥

गुणौचित्यं दर्शयितुमाह—

प्रस्तुतार्थोचितः काव्ये भव्यः सौभाग्यवान्गुणः।
स्यन्दतीन्दुरिवानन्दं सम्भोगावसरोदितः॥ १४॥

प्रस्तुतार्थस्यौचित्येनौजःप्रसादमाधुर्यसौकुमार्यादिलक्षणो गुणः काव्ये भव्यः सौभाग्यवत्तामवाप्तः सहृदयानन्दसन्दोहमिन्दुरिव स्यन्दति॥

क्रमप्राप्तं गुणौचित्यं निरूपयति—गुणौचित्यमिति। प्रस्तुतार्थोचित इति। भव्यः सुन्दरः। गुणो माधुर्यादिः शब्दगुणः, अर्थगुणः, शब्दार्थोभयगुणश्च। स्यन्दति वर्षतीत्यर्थः। स्यन्दतीति परस्मैपदं चिन्त्यम्॥ १४॥

कारिकां विवृणोति—प्रस्तुतेति। सन्दोहः प्रवाहः॥

अब क्रमप्राप्त गुणौचित्य का निरूपण करने जा रहे हैं—

प्रस्तुत अर्थ के लिए उचित ओज आदि गुण काव्य में उसी प्रकार सौन्दर्याधायक होता जिस प्रकार सम्भोग-काल में उदित चन्द्र आनन्दवर्षी हो जाता है॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गद्यभाग का अनुवाद पद्य के सर्वथा समान है ॥

यथा भट्टनारायणस्य—

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तक-
प्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः ।
रवः श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकन्दरः
कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः पुरः ॥

अत्रौजस्विनो भटमुकुटमणेरश्वत्थाम्नः स्फूर्जदूर्जितप्रतापानुरूपं वाक्यमोजसा काव्यगुणेनोदग्रतामवाप्तं सहस्रगुणमिव विक्रमौचित्य-गौरवमावहति ॥

यथा वा भट्टबाणस्य—

हारो जलार्द्रवसनं नलिनीदलानि
प्रालेयशीकरमुचस्तुहिनांशुभासः ।
यस्येन्धनानि सरसानि च चन्दनानि
निर्वाणमेष्यति कथं स मनोभवाग्निः ॥

अत्र विप्रलम्भभरभग्नधैर्यायाः कादम्बर्या विरहव्यथावर्णना माधुर्य-सौकुमार्यादिगुणयोगेन पूर्णेन्दुवदनेव प्रियंवदत्वेन हृदयानन्ददायिनीं दयिततमतामातनोति ॥

उदाहरति—यथेति । महाप्रलयेति । वेणीसंहारस्थमिदं पद्यम् । महाप्रलयकालिको यो मारुतो झञ्झावातस्तेन क्षुभितावान्दोलितौ यौ पुष्करावर्त्तकाख्यौ प्रचण्डौ घनौ तयोर्गर्जितस्य यः प्रतिरवः प्रतिध्वनिस्तमनुकरोतीति महाप्रलय······प्रतिरवानुकारी । श्रवणभैरवः श्रवणे श्रवणाय वा भैरवो भयङ्करः स्थगिता पूरिता रोदस्योर्द्यावापृथिव्योः कन्दराऽन्तरालं येन सोयमभूतपूर्वो रवः शब्दोऽद्य कुतः समरोदधेः पुरः समक्षमुपस्थित इति पद्यार्थः ॥

लक्ष्ये लक्षणं सङ्गमयति—अत्रौजस्विन इति । स्फूर्जन् प्रकटीभवन् य ऊर्जित उत्कटः प्रतापस्तदनुरूपं वाक्यम् । ओजसा तन्नामकेन गुणेन ।

एतद्विवरणं साहित्यदर्पणे यथा—

ओजश्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते ।
वीरबीभत्सरौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु ॥ इति ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चण्डीदासस्तु हास्याद्भुतभयानकेष्वप्योजसः सत्त्वं समर्थयति। प्रकृतपद्ये समासबहुलत्वं तद्व्यञ्जकम् ॥

उदाहरणान्तरमाह—**यथा वेति। हार इति।** हारो मौक्तिकमाला पुष्पमाला वा जलार्द्रवसनं जलार्द्रत्वादेवेतराग्निशामकम्, कामाग्नेस्तूद्दीपकमेव जलार्द्रे वसने सति रमण्या अन्तरङ्गाणां स्फुटमवलोकनात् कामिनां कामाग्निरुद्दीप्त एव भवति। प्रालेयशीकरमुचस्तुषारकणवर्षकास्तुहिनांशोः शीतरश्मेश्चन्द्रमसो भासश्चन्द्रिकाः। सरसानि चन्दनानि च यस्योद्दीपकानि स कामाग्निः कथं नाम शाम्येत्? इतराग्नीनां जलेन जलमिश्रितेनेतरसाधनेन च शान्तिर्दृश्यते। यदा पुनरेत एवोद्दीपकाः कामाग्नेस्तदा केन साधनेन स शाम्येत्? न केनापीति भावः। अत्र जलपदमत्यार्द्रतासूचकतया सार्थकम् ॥

गुणौचित्यमुपपादयति—**अत्रेति।** विप्रलम्भभरेण वियोगाधिक्येन भग्नं नष्टं धैर्यं यस्यास्तस्याः कादम्बर्या विरहव्यथाया वर्णना। दयिततमतां प्रियतमताम्। यथा काचनेन्दुमुखी कामिनी स्वपतिं प्रति प्रियवचनमाचक्षाणा तस्य हृदयाह्लादकारिणीं प्रियतमतामवाप्नोति तथा गुणविशिष्टा कविवाण्यपीति तात्पर्यम् ॥

इसका उदाहरण भट्टनारायण का यह पद्य है—

"महाप्रलय के समय के महावात से क्षुब्ध (आन्दोलित) पुष्कर एवं आवर्त्तक आदि प्रचण्ड मेघों के गर्जन का अनुकरण करने वाला, पृथिवी तथा अन्तरिक्ष के अन्तराल को भर देने वाला और सुनने में भयङ्कर यह अभूतपूर्व शब्द आज समरसागर से क्यों उठ रहा है?"

ओजस्वी तथा वीरों में मूर्धन्य अश्वत्थामा का उसके देदीप्यमान प्रकृष्ट प्रताप के अनुरूप यह वक्तव्य ओज नामक उचित काव्यगुण से और अधिक उत्कर्ष को प्राप्त कर मानो उस (अश्वत्थामा) के पराक्रम को हजारगुना अधिक बढ़ा रहा है ॥

इसका दूसरा उदाहरण महाकवि बाण का यह पद्य है—

"पुष्पमाला, टपकते हुए पानी वाला गीला वस्त्र, हिमकणों की वर्षा करने वाली चन्द्रमा की किरणें और घिसा हुआ श्रीखण्डचन्दन जिसके उद्दीपक हैं वह कामाग्नि भला कैसे शान्त हो सकेगा?"

यहाँ वियोग के भार से धैर्यहीन कादम्बरी की विरहव्यथा का वर्णन सौकुमार्य आदि काव्य-गुणों के योग से सहृदयों के लिए उतना ही आकर्षक हो गया है जितना कोई पूर्णचन्द्रसदृश मुखवाली कामिनी अपनी मधुर वाणी से अपने प्रियतम का आकर्षक हो जाती है ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न तु यथा चन्द्रकस्य—

युद्धेषु भाग्यचपलेषु न मे प्रतिज्ञा
दैवं नियच्छति जयञ्च पराजयञ्च।
एषैव मे रणगतस्य सदा प्रतिज्ञा
पश्यन्ति यन्न रिपवो जघनं हयानाम् ॥

अत्र क्षात्रवृत्तिरिवौजसा काव्यगुणेनास्पृष्टा सुभटोक्तिरुचितार्थापि तेजोजीवितविरहिता दुर्गतगृहदीपशिखेव मन्दायमाना न विद्योतते ॥

प्रत्युदाहरति—न तु यथेति । युद्धेष्विति । प्रतिज्ञा जेष्याम्येवेति निश्चयः । जयञ्चेत्यत्र चकारो हेत्वर्थः । यतो जयं पराजयं च दैवमेव नियच्छति निमयति । दैवाधीनत्वाज्जयादेस्तद्विषये पूर्वं किमपि निश्चेतुमशक्यमेवेत्यर्थः । एषैव म इति । भयाद् युद्धात् पलायने रिपवो हि स्वरिपूणां हयानां जघनं पश्चाद्भागं पलायनकाले विमुखत्वात्तेषां पश्यन्ति । एवं यथा कदापि न भवेत्तथा मदीया प्रतिज्ञा । युद्धात् कदापि न पलायिष्ये शत्रुभयादिति भावः ॥

अत्र प्रथमपादे युद्धेष्वनिश्चितफलेषु इति पठनीयम् ॥

अनौचित्यमुपपादयति—अत्रेति । अत्रार्थौचित्येपि तदुचितोजःपूर्णशब्दाभावान्न चारुतामदधातीयं वचनावलीति तात्पर्यम् । तेज एव जीवितं जीवनं तद्विरहिता दुर्गतानां दरिद्राणां गृहे स्नेहाद्यभावात्प्रकाशयाभावाच्च दीपशिखा यथा मन्दायते तथैवेयमुक्तिरपि ॥

किन्तु चन्द्रक कवि के निम्नोद्धृत पद्य में माधुर्य-प्रसाद-गुणों का सन्निवेश उचित नहीं है—

"युद्धों की स्थिति बहुत ही अव्यवस्थित होती है। अतः इसके विषय में मैं जय की प्रतिज्ञा नहीं कर सकता, क्योंकि जय और पराजय दैवाधीन हैं। परन्तु युद्धस्थल जाने पर यह तो प्रतिज्ञा मेरी है ही कि मेरे शत्रु मेरे घोड़ों का पीठ नहीं देख सकते ॥"

इस पद्य में वीररस का वर्णन है। वर्णन सुन्दर है, किन्तु वीररसोचित ओजस्विता इसमें है ही नहीं जो क्षत्रियों के व्यवहार में अत्यावश्यक तेजस्विता के समान वीररस के काव्य में अनिवार्य है। अतः दरिद्रों के घर में तैलादि की कमी के कारण टिमटिमाती दीपशिखा की तरह यह उक्ति हृदयावर्जक नही है ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथा वा राजशेखरस्य—

एतस्याः स्मरसंज्वरः करतलस्पर्शैः परीक्ष्यो न यः
स्निग्धेनापि जनेन दाहभयतः प्रस्थम्पचः पाथसाम् ।
निर्वीर्यीकृतचन्दनौषधिविधौ तस्मिंस्तडत्कारिणो
लाजस्फोटममी स्फुटन्ति मणयः सर्वेऽपि हारस्रजाम् ॥

अत्र विरहविधुररमणीमनोभवावस्थानुरूपं माधुर्यमुत्सृज्य तडत्कारिणो लाजस्फोटं स्फुटन्तीत्योजःस्फूर्जितोर्जितस्वभावाधिवासिता सूक्तिर्लावण्यपेशलतनुर्ललितललनेव परुषभाषिणी झटित्यनौचित्यं चेतसि सञ्चारयति ॥ १४ ॥

प्रत्युदाहरणान्तरमाह—यथा वेति ।

एतस्या इति । कस्याश्चिद्विरहिण्या वर्णनमिदम् । स्मरसंज्वरः = कामज्वरस्तथा तीव्रो यथाऽयम् स्निग्धेन = प्रियेण जनेनापि ([करतल-) दाहभयात् करतलस्पर्शैर्न परीक्ष्यः । साधारणो हि ज्वरः करतलस्पर्शैः प्रियेण जनेन परीक्ष्यते । अयं तु न तथेति व्यतिरेकेण तीव्रतातिशयो ज्वरस्यास्य व्यज्यते । अतितीव्रत्वाच्च पाथसां जलानां प्रस्थं द्रोणपरिमितं पचति शोषयति निर्दहतीति प्रस्थम्पचः । द्रोणपरिमितमपि जलमेतच्छरीरे ज्वरतापशान्त्यर्थं प्रसिक्तं सद्य एव विशुष्यन्नालं शमयितुं तत्तापमित्यर्थः । अनेनाप्यस्य ज्वरस्य तीव्रतातिशयो व्यज्यते । तस्मिन् चन्दनमेवोषधिः तद्विधिर्विनियोगो लेपो निर्वीर्यीकृतो विफलीकृतो येन तस्मिन् प्रकृते कामज्वरे तत्तापातिशयप्रभावात् तडत्कारिणस्तडतडायमाना अमी सर्वे हारस्रजां मणयो लाजस्फोटम् लाजानां स्फोटमिव स्फुटन्ति विदीर्यन्ते । यथा वह्निसंयोगेन धान्यादिकं लाजारूपेण परिणमते तथैव कामज्वरज्वालासंयोगादमी मणयोपीति भावः ॥

अत्रानौचित्यमुपपादयति—अत्रेति । अत्रास्य पद्यस्य कृते 'सूक्तिः' इति कथनं ग्रन्थकृतोऽनौचित्यं प्रकटयति । परुषभाषिणी = कटुभाषिणी । शेषं स्पष्टार्थम् ॥

गुणानौचित्य का दूसरा उदाहरण राजशेखर का निम्नोद्धृत पद्य है—

"इस विरहिणी का कामरज्व ऐसा है कि कोई प्रियजन भी अपने हाथ से छूकर इसका परीक्षण नहीं कर सकता, क्योंकि इसमें हाथ जल जाने की आशंका है। इसके सन्तप्त शरीर के ऊपर यदि १० सेर (एक प्रस्थ) भी पानी छिड़क

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिया जाय तो वह तुरन्त सूख जायगा। श्रीचन्दनरस को भी प्रभावहीन बना देने वाले इस कामज्वर के सन्ताप के सम्पर्क से तो इस विरहिणी के गले में लटकते हार में पिरोये सब के सब मणि लावे की तरह तड़तड़ाहट के साथ फूट रहे हैं॥"

इस वाक्य में विरहिणी नायिका की मनःस्थिति के अनुरूप माधुर्यगुणयुक्त पदावली होनी चाहिए थी। किन्तु कवि ने इसमें "तडतडत्कारिणो लाजस्फोटं स्फुटन्ति" इस तवर्गघटित पदावली का प्रयोग कर दिया है जिसमें तेजस्विता (उत्कटता) को स्वभाव से ही प्रकट करने वाला ओजस् नामक गुण विद्यमान है। अतः यह उक्ति लावण्यमयी किन्तु कटुभाषिणी ललना के समान झट ही मन में उद्वेग उत्पन्न कर देती है॥

अलङ्कारौचित्यं दर्शयितुमाह—

अर्थौचित्यवता सूक्तिरलङ्कारेण शोभते।
पीनस्तनस्थितेनेव हारेण हरिणेक्षणा॥ १५॥

प्रस्तुतार्थस्यौचित्येनोपमोत्प्रेक्षादिनालङ्कारेण सूक्तिश्चकास्ति कामिनीवोच्चकुचचुम्बिना रुचिरमुक्ताकलापेन॥

अलङ्कारौचित्यं निरूपयन्नाह—अलङ्कारेति।

अर्थौचित्यवतेति। प्रकृतार्थानुरूपेणालङ्कारेण कविसूक्तिस्तथा शोभते यथा पीनस्तनयोः स्थितेन हारेण हरिणेक्षणा ललनेति श्लोकार्थः॥ १५॥

इदमेव पद्यं विवृणोति—प्रस्तुतार्थस्येति। गद्यबन्धः स्फुटार्थः। अत्रौचित्येनेत्यपपाठः, उचितेनेति तु युक्तः पाठः। यद्वा औचित्येन निमित्तेनेत्यर्थं इति यथाश्रुत एव पाठः संगतः॥

अब अलङ्कारौचित्य का निरूपण किया जा रहा है—अर्थानुरूप अलङ्कार से कवि की उक्ति उसी तरह सुशोभित होती जिस तरह उन्नत पयोधरों पर लटकते हार से कोई मृगनयनी॥ १५॥

उन्नत कुचों का चुम्बन (स्पर्श) करने वाले मनोहर मुक्ताहार से कोई कामिनी जिस प्रकार अलंकृत होती उसी प्रकार वर्णनीय अर्थ के उचित उपमा-उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारों से कवि की सूक्ति सुशोभित होती है॥

यथा श्रीहर्षस्य—

विश्रान्तविग्रहकथो रतिमाञ्जनस्य
चित्ते वसन् प्रियवसन्तक एव साक्षात्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर्युत्सुको निजमहोत्सवदर्शनाय
वत्सेश्वरः कुसुमचाप इवाभ्युपैति ॥

अत्र वत्सेश्वरस्य कुसुमचापेनोपमा शृङ्गारावसरसरसचारुतरतामौचित्येन कामपि चेतश्चमत्कारिणीमाविष्करोति ॥

अलङ्कारौचित्यस्योदाहरणमाह—**यथेति** ।

विश्रान्तेति । रत्नावल्यां प्रथमेङ्के राज्ञो वत्सेश्वरस्योदयनस्य वसन्तमहोत्सवं द्रष्टुमागच्छतो यौगन्धरायणकृतं वर्णनमिदम् । अत्र विशेषणेष्वभङ्गश्लेषानुप्राणितोपमेति विग्रहादिपदं श्लिष्टम् । तथाचोदयनपक्षे विग्रहो युद्धम् तस्य कथा विश्रान्ता यद्विषये सः । कामपक्षे विग्रहः शरीरम्, तस्य कथेत्यादि समानम् । उदयनस्य हि प्रभावातिशयात्सर्वे राजानस्तद्वशम्वदा इति न क्वापि विग्रहवार्त्ता । कामस्य च हरकोपाग्निदग्धशरीरत्वात् तथात्वम् । रतिरुदयनपक्षे सुखम्, तद्वान् राजा । कामपक्षे तु 'रतिः' कामस्य पत्नीति प्रसिद्धमेव, तद्वान् इत्यर्थः । जनस्य चित्ते वसन् इति राज्ञो जनैः स्पृहणीयगुणत्वात् तद्विषये संगतम् । कामस्य च मनोभवत्वात् तथात्वं प्रसिद्धमेव । वसन्तको राजपक्षे तन्नामको विदूषकः, स प्रियो यस्य सः । कामपक्षे तु वसन्तर्तुः । स्वार्थे कः प्रत्ययः । निजमहोत्सवदर्शनायेति चतुर्थी 'क्रियार्थोपपदस्य च' इत्यादिसूत्रेण । अतो दर्शनायेत्यस्य दर्शनं कर्तुमित्यर्थः । अत्र च राजपक्षे निजशब्दस्य स्वीयः स्वैः स्वस्मै वायोजित इत्यर्थः । कामपक्षे तु निजशब्दस्य स्वविषयकोऽर्थः । तथा चैवंविधवसन्तमहोत्सवं द्रष्टुं पर्युत्सुक उत्कण्ठितो वत्सेश्वर उदयनः साक्षादेव मूर्तिमानेव कुसुमचापः काम इवाभ्युपैति । अत्र **'जनस्य'** इत्यस्य स्थाने **'जनानाम्'** इति पाठः श्रेयान् । एवमेव **एवे**त्यस्य प्रयोगोऽनावश्यक इव प्रतीयते । एवमेव **साक्षादिति** पदमतिदूरावस्थितं विच्छित्तिमंशतश्छिन्नतीवावभाति । यद्वा चतुर्थचरणे **'इहाभ्युपैति'** इति पठित्वा श्लेषानुप्राणितं रूपकमेवात्राङ्गीकरणीयम् । यद्वा **एवे**त्यस्य स्थाने **एष** इति पाठ्यम् ॥

प्रकृतमुद्घाटयति—**अत्रेति** । शेषमतिरोहितार्थम् ॥

अलङ्कार के उचित सन्निवेश का उदाहरण रत्नावली का यह पद्य है—

"जिनके विषय में विग्रह (राजपक्ष-युद्ध, कामपक्ष-शरीर) की चर्चा समाप्त हो चुकी है, जो रति (राजपक्ष-सुख, कामपक्ष-तन्नामक पत्नी) से युक्त हैं, जो

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोगों के चित्त में निवास करने वाले हैं और जिन्हें वसन्तक (राजपक्ष-वसन्तक नामक विदूषक, कामपक्ष-वसन्त ऋतु) प्रिय है वे साक्षात् कामदेव-सदृश वत्स-देशाधिपति उदयन अपने वसन्तमहोत्सव देखने के लिये उत्कण्ठित होने के कारण इधर ही आ रहे हैं ॥"

इस पद्य में वत्सेश्वर उदयन की कामदेव के साथ दी गई उपमा औचित्यपूर्ण है। अतः यह उपमा शृङ्गार के अनुरूप हृदयावर्जक अपूर्व सौन्दर्य का उपस्थापक है ॥

न तु यथा चन्द्रकस्य—

खगोत्क्षिप्तैरन्त्रैस्तरुशिरसि दोलेव रचिता
शिवा तृप्ताहारा स्वपिति रतिखिन्नेव वनिता।
तृषार्तो गोमायुः सरुधिरमसिं लेढि बहुशो
विलान्वेषी सर्पो हतगजकराग्रं प्रविशति ॥

अत्रानुचितस्थानस्थितायाः पुरुषपिशिततृप्तसुप्तायाः शिवायाः सुरतकेलिक्लान्तकान्तया विच्छायैवोपमा परं वैपरीत्यं प्रकाशयति ॥

प्रसङ्गादलङ्कारानौचित्यमुदाहरति—न त्विति।

खगेति। संग्रामसमाप्त्यनन्तरकालिकं रणाङ्गणवर्णनमिदम्। तरुशिरसि = वृक्षाग्रे। खगोत्क्षिप्तैः = गृध्रादिभिरूर्ध्वं न्यस्तैरन्त्रैः संग्रामनिहतानां वीरादीनामिति शेषः। आममांसादिभक्षणकाले गृध्रादयः स्वमुखस्थं मांसादि-भागं बहिर्भागेभ्यस्त्रोटयितुं मुखमुत्क्षिपन्तीति प्रसिद्धम्। तत एव वृक्षाग्रेऽन्त्रादि-स्थानं सम्भवत्येव। दोलेव रचितेति। रणाङ्गणसमीपवर्त्तिषु वृक्षेषु मृतानां वीरादीनामन्त्राणि तथाऽवरुद्धान्यधोमुखानि येनेदं प्रतीयते यत्तेषु दोला रचिते-त्याशयः। शिवा = शृगाली। तृप्ताहारा = परिपूर्णभोजना सती रतिक्लान्ता वनितेव स्वपिति। तृषा पिपासा, तया आर्त्तः पीडितो गोमायुः शृगालः सरुधिरं रक्तसिक्तमसिं खड्गं बहुशो जिह्वया लेढि। विलान्वेषणशीलः सर्पश्च रणे हतानां गजानां कराग्रं शुण्डामुखं प्रविशति ॥

अनौचित्यमुद्घाटयति—अत्रेति। अनुचिते=उपमानभूतरतिक्लान्तकान्ता-स्थानविप्रतीपे स्थाने = रणाङ्गणे। पिशितम् = नरमांसादि। तृप्तसुप्ताया इति पूर्वं तृप्ता पश्चात् सुप्तेति तृप्तसुप्ता, तस्याः। विच्छाया = विच्छित्ति-रहिता। वैपरीत्यम् = रसवैपरीत्यम्। बीभत्सोऽत्र रसः प्रकृतः, तत्र शृङ्गारो-चितकामिनीतुल्यत्ववर्णनमसङ्गतमिति भावः ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किन्तु चन्द्रक कवि के इस पद्य में अलङ्कार का औचित्य नहीं है—

"जहाँ युद्ध अभी-अभी समाप्त हुआ है उस समराङ्गण के समीपवर्त्ती वृक्षों पर गीध आदि द्वारा उत्क्षिप्त अँतड़ियाँ इस प्रकार लटक रही हैं जिससे ऐसा लगता है कि दोला लटक रही हो; सियारनी खाने-पीने के बाद थक कर इस प्रकार सोई हुई है जिस प्रकार रतिक्रीड़ा करते-करते परिश्रान्त कामिनी सो जाती है, प्यास से व्याकुल सियार शोणितपूर्ण खड्ग को चाट रहा है और बिल खोजने वाला सर्प मरे हुए गजराजों की सूँड़ में घुस रहा है ॥"

यहाँ (रतिक्रीड़ा से क्लान्त कामिनी के शयन के स्थान के प्रतिकूल) रणभूमि में शयन करने वाली सियारनी की उपमा रतिक्लान्त हो कर सोने वाली कामिनी के साथ दी गई है। यह अत्यन्त विपरीत है। अतः यह सहृदयों के हृदय में आनन्द के बदले खेद ही उत्पन्न करती है ॥"

यथा वा मालवरुद्रस्य—

अभिनववधूरोषास्वादः करीषतनूनपा-
दसरलजनाश्लेषक्रूरस्तुषारसमीरणः ।
गलितविभवस्याज्ञेवाद्य द्युतिर्मसृणा रवे-
र्विरहिवनितावक्त्रौपम्यं बिभर्ति निशाकरः ॥

अत्र कोमलकामिनीकोपेन करीषकृशानोः सादृश्यं शीतसमयस्वादुतया हृदयसंवादसुन्दरमप्यनुचितत्वेन सहसैव चेतसः सङ्कोचमिवादधाति ॥

अलङ्कारानौचित्यस्योदाहरणान्तरमाह—यथा वेति ।

अभिनवेति । शीतकालवर्णनमिदम् । अद्य=शीतकाले । अभिनवा वधूः = नवोढा, तस्या यः कृत्रिमो रोषः क्रोधः सुरतादिप्रसङ्गे पत्यौ तस्यास्वाद इवास्वादो यस्य तथाविधः करीषे शुष्कगोमये प्रज्वलितः तनूनपादग्निर्भवति । यथोक्तो नवोढाक्रोधः प्रियो भवति तथैवाग्निरपीति भावः । तुषारसमीरणः शीतलो वायुरसरलजनस्य कपटिन आश्लेषः संसर्ग आलिङ्गनं वा तद्वत् क्रूरो रूक्षोऽप्रिय इति यावत् । शीतलो वायुः शीतकालेऽप्रियो भवतीति प्रसिद्धमेव । रवेः सूर्यस्य द्युती रश्मिर्गलितविभवस्य निर्धनस्य जनस्याज्ञेव मसृणा कोमला निष्प्रभावा । यथा निर्धनस्याज्ञाऽऽज्ञप्ते जने न कामपि तदनुरूपां प्रवृत्तिं निवृत्तिम्वोत्पादयति तथैव सूर्यरश्मिरप्यकिञ्चित्करीति भावः । अत्रोपमा-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नोपमेयभावः क्लिष्टः । निशाकरश्चन्द्रो विरहिण्या वनिताया वक्त्रस्य मुखस्यौपम्यं विभर्त्ति । यथा विरहिण्या आननं परिपाण्डुदुर्बलकपोलं च भवति तथैव चन्द्रोपि स्खलद्धिमप्रभावात् परिपाण्डुरः कृशश्च परिलक्ष्यते ।।

अनौचित्यं प्रदर्शयति—**अत्रेति** । कोमल आह्लादको विकासकः कामिनीकोपः, करीषकृशानुश्च तद्विपरीतः कर्कशो दाहक इत्युभयोरुपमानोपमेयभावोऽनुचितः सन्नापाततो रुचिरमपि झटित्येव विवेकिनां सहृदयानां हृदयं समुद्वेजयतीति सन्दर्भार्थः ।।

अलङ्कार के अनौचित्य का दूसरा उदाहरण मालवरुद्र का निम्नलिखित पद्य है—

"शीतकाल में गोहरी में सुलगा अग्नि उतना ही प्रिय होता है जितना कि नवोढा का सुरतिकालीन कृत्रिम रोष; शीतल वायु कुटिल व्यक्ति के आलिङ्गन के समान अप्रिय हो जाता, सूर्य की किरण निर्धन व्यक्ति की आज्ञा के समान प्रभावहीन हो जाती है और चन्द्रमा तो विरहिणी के वदन के समान हतप्रभ हो जाता है ॥"

यहाँ गोहरी में सुलगे अग्नि की उपमा नवोढा के सरस कोप के साथ दी गई है। चूँकि नवोढ़ा का कोप भी प्रिय होता है और शीतकाल में करीषाग्नि भी इसलिए यह उपमा लगती तो पहली नजर में बहुत अच्छी, पर यह सोचते ही कि कहाँ कामिनी का सरस-मादक कोप और कहाँ कर्कश-दाहक करीषाग्नि, यह उपमा सहृदयों के लिये अप्रिय हो जाती है ॥

यथा वा राजशेखरस्य—

चिताचक्रं चन्द्रः कुसुमधनुषो दग्धवपुषः
कलङ्कस्तत्रत्यः स्पृशति मलिनाङ्गारकलनाम् ।
यदेतत्सज्योतिर्दरदलितकर्पूरधवलं
मरुद्भिर्भस्मैतत्प्रसरति विकीर्णं दिशि दिशि ॥

अत्राप्यानन्दिसुधावस्यन्दसुन्दरस्येन्दोश्चिताचक्रत्वमनुचिततया कर्णकटुकमातङ्कमिवातनोति ॥

अस्यैवानौचित्यस्य तृतीयमुदाहरणमाह—**यथा वेति** ।

चिताचक्रमिति । चन्द्रस्योपालम्भोऽयम् । चन्द्रोयं हरकोपाग्निना दग्धं वपुर्यस्य तस्य कुसुमधनुषः कामदेवस्य चिताचक्रं चिता चक्रमिव गोलकाकारेति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चिताचक्रम् । तत्रत्यश्चन्द्रस्थितः कलङ्को मलिनस्य विगतज्वालस्याङ्गारस्य कलनां तुलनां स्पृशति बिभर्त्ति । यच्च दरदलितमीषच्चूर्णीकृतं कर्पूरमिव धवलमेतत् सज्योतिर्ज्योतिर्दिशि दिशि प्रसरति तदपि न ज्योतिर्वस्तुतोऽपि तु मरुद्भिर्विकीर्णं विक्षिप्तं चिताभस्मैव । सज्योतिःशब्दः सतत्त्वशब्दवज्ज्योतिरर्थकः ॥

अनौचित्यं प्रतिपादयति—अत्रापीति । सुधावस्यन्दः = अमृतप्रवाहोऽमृतवर्षणम्वा तद्वत् सुन्दरस्य । आतङ्कं भयमुद्वेगम् । विरहिण्या उक्तौ तु नानौचित्यमत्र ॥

राजशेखर के भी इस पद्य में अलङ्कार का औचित्य नहीहै—

"यह चन्द्रमा वास्तव में महेश्वर के कोपानल से जला दिये गये शरीर वाले कामदेव की वर्तुलाकार चिता है, इसमें जो कलङ्क दिखाई देता वह वास्तव में बुझे हुये अङ्गार हैं, यह जो सब दिशाओं में फैलती हुई इसकी अधचुरे कपूर के समान धवल ज्योति है वह भी हवा द्वारा विखेरा गया चिता का भस्म ही है ॥"

यहाँ भी सुखद अमृतप्रवाह के समान मनोहर चन्द्रमा में वर्तुलाकार अशुभ चिता का अभेदारोप अनुचित होने से सुनने में मधुर नही है। अत एव उद्वेगकर एवम् अनुचित है ॥

योऽर्थस्तु हृदयसंवादी स यद्यनौचित्यस्पर्शलेशरहितस्तदाऽधिकतरामलङ्कारशोभां पुष्णाति । यथा कार्पटिकस्य—

शीतेनोद्धुषितस्य माषशिमिवच्चिन्तार्णवे मज्जतः
शान्ताग्नि स्फुटिताधरस्य धमतः क्षुत्क्षामकण्ठस्य मे ।
निद्रा क्वापि विमानितेव दयिता सन्त्यज्य दूरं गता
सत्पात्रप्रतिपादितेव वसुधा न क्षीयते शर्वरी ॥

अत्रानौचित्यस्पर्शपरिहारेण केवलं हृदयसंवादसौन्दर्यमेव स्वादुतामादधाति ॥ १५ ॥

पूर्वं हृदयसम्वादिनः किन्त्वनुचितेनालङ्कारसन्निवेशेन विशिष्टस्योद्वेजकत्वमुक्तं सोदाहरणम् । सम्प्रति समुचितालङ्कारसन्निवेशवतो हृदयसम्वादिनोर्थस्य सौन्दर्याधायकत्वमुदाहरणमुखेन प्रदर्शयति—योर्थस्त्विति ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शीतेनेति । कस्यचिन्निर्धनस्योक्तिरियम् । शीतेन माषस्य शिमिः फलम् 'छीमी' इति भाषायां प्रसिद्धम्, तद्वदुद्घुषितस्यातिसङ्कुचितस्य मम । शीतेन हि माषशिमेः सङ्कुचितत्वं लोकसिद्धम् । निर्धनस्य च सङ्कोचः शैत्यनिवारक-वस्त्राद्यभावात् । चिन्तार्णवे मज्जतो निमग्नस्यातितरां चिन्तितस्येति भावः । शान्तमग्निं फूत्कारेण धमतः प्रज्वालयतोत एव भारातिशयेन स्फुटितं विदीर्ण-मधरं यस्य तथाविधस्य मम । शान्ताग्निं धमत इति हेतुगर्भं विशेष-णम् । क्षुत्क्षामकण्ठस्य क्षुधया क्षामार्दितं शुष्कं मुखं यस्य तस्य मम निद्रा विमानितापमानिता वनितेव मां सन्त्यज्य दूरं गता । यथाऽपमानिता पत्नी स्वपतिं परित्यज्य दूरं गच्छति तथैवातिक्लिष्टं मां परित्यज्य निद्रा दूरं गता । किञ्चेयं शर्वरी रात्रिरपि तथा न क्षीयते व्यत्येति यथा सत्पात्राय प्रतिपादिता समर्पिता वसुधा न क्षीयते शीघ्रमपि तु यावज्जीवं पुत्रपौत्रादि-पर्यन्तं च तिष्ठत्येवेति तात्पर्यम् । न हि सज्जनः कदापि दानाधिगतां वसुधां विक्रीणीते ॥

अत्रौचित्यं समर्थयन्नाह—अत्रेति । विमानितया वनितया निद्रायाः सत्पात्रप्रतिपादितया च वसुधया शर्वर्या औपम्यं परममौचित्यमावहत् परमां विच्छित्तिं सहृदयहृदय आतनोतीति सन्दर्भार्थः ॥

किन्तु यो काव्यार्थ हृदयसम्वादी होने के साथ-साथ अलङ्कार के अनौचित्य से रहित होता वह अलङ्कारशोभा का सम्वर्धक ही होता है । इसका उदाहरण है कार्पाटिक का यह पद्य—

"मैं उड़द की छीमी के समान ठण्ढ से सिकुड़ गया हूँ, शोक-सागर में निमग्न हूँ, बुझी आग को सुल्गाने में मेरा अधरोष्ठ फट गया है और मेरा गला भूख से सूख चुका है । अतः अपमानित कामिनी की तरह निद्रा मुझ से बहुत दूर भग चुकी है और रात भी सत्पात्र को समर्पित वसुधा के समान जल्दी नही समाप्त होती (=वीतती) ॥"

यहाँ तृतीय चरण में निद्रा की अपमानित कामिनी के और रात की सत्पात्र-समर्पित वसुधा के साथ दी गई उपमा हृद्य अर्थ को रमणीयतर बनाती हुई आह्लादजनक ही है ॥

रसौचित्यं दर्शयितुमाह—

कुर्वन्सर्वाशये व्याप्तिमौचित्यरुचिरो रसः ।
मधुमास इवाशोकं करोत्यङ्कुरितं मनः ॥ १६ ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

औचित्येन भ्राजिष्णुः शृङ्गारादिलक्षणो रसः सकलजनहृदय-व्यापी वसन्त इवाशोकमङ्कुरितं मनः करोति ॥

सम्प्रति क्रमप्राप्तं रसौचित्यमाह—रसौचित्यमिति ।

कुर्वन्निति । औचित्येन देशकालाद्यनुरूपतया रुचिर आस्वाद्यो रसः शृङ्गारादिः सर्वस्मिन्नाशये हृदये व्याप्तिं कुर्वन् सर्वं हृदयं व्याप्नुवन् । वस्तुतस्तु सर्वेषां सहृदयानामाशये हृदये व्याप्तिं कुर्वन्नित्येवार्थं उचितः, व्याप्त्यैव सम्पूर्णहृदयस्य प्रतीत्या कर्मधारये सर्वविशेषणवैयर्थ्यात् । अत एव वृत्तौ सकलजनहृदयव्यापीत्यर्थं उक्तः । एतादृशो हि सर्वहृदयव्यापको रसो मनस्तथैवाङ्कुरितं प्रफुल्लितं करोति यथा मधुमासो वसन्नर्त्तुरशोकवृक्षम् ॥

कारिकार्थं व्याचष्टे—औचित्येनेति । भ्राजिष्णुः शोभनशीलः ॥

अब रसौचित्य का निरूपण किया जा रहा है—

औचित्य के कारण रमणीय रस सहृदयों के हृदय को प्रभावित करता हुआ उसे उसी प्रकार प्रफुल्लित कर देता है जिस प्रकार वसन्त ऋतु अशोक वृक्ष को॥

औचित्य से सुशोभित शृङ्गारादि रस सभी सहृदयों के हृदय को व्याप्त करता हुआ अशोक वृक्ष को वसन्त ऋतु की तरह उनके मन को प्रफुल्लित कर देता॥

यथा श्रीहर्षस्य—

उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा-
दायासं श्वसनोद्गमैरविरलैरातन्वतीमात्मनः ।
अद्योद्यानलतामिमां समदनां नारीमिवान्यां ध्रुवं
पश्यन्कोपविपाटलद्युति मुखं देव्याः करिष्याम्यहम् ॥

अत्रेर्ष्याविप्रलम्भरूपस्य शृङ्गाररसस्य वासवदत्तायामवेक्ष्यमाणस्य नवमालिकालताया ललितवनितातुल्यतया विरहावस्थारोपेण नितरामौचित्यरुचिरचमत्कारकारिणी दीप्तिरुपपादिता ॥

रसौचित्यस्योदाहरणमाह—यथेति ।

उद्दामोत्कलिकामिति । सागरिकां द्रष्टुमुत्सुकस्य राज्ञस्तत्तुल्यनवमालिकालतादर्शनेन देव्या वासवदत्ताया भाविक्रोधविषयकं वचनमिदं रत्नावल्यां द्वितीयाङ्के स्थितम् । अत्रोद्दामोत्कलिकेत्यादिविशेषणानि श्लेषवशेनोभयत्र लतायां नार्यां च योज्यानि । अत एव चात्र श्लेषमूलोपमाऽलङ्कारः । तथाहि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उद्दामा उद्भूता उत्कलिका उत्कृष्टाः कलिका यस्यास्तामिति लतापक्षे। नारीपक्षे च उद्दामोत्कटोत्कलिकोत्कण्ठा यस्यास्तामिति। विपाण्डुरुच-मिति विपाण्डुरा विशेषेण पाण्डुरा रुचिर्यस्यास्ताम्। उभयत्र समान एवार्थः। हेतुस्तु भिन्नः—लतापक्षे विपाण्डुरुचित्वे वसन्तर्तुप्रभावो हेतुः, तदानीं पत्रशातनकालागमात्; नारीपक्षे च प्रियविरहः, सोपि वसन्तकालिक इति न केवलं पाण्डुराऽपि तु विपाण्डुरा विशेषेण पाण्डुरा रुचिस्तयोरिति भावः। क्षणात् क्षणादनन्तरं द्वितीयादिक्षणेषु, भूयो भूय इति तात्पर्यम् प्रारब्धा जृम्भा विकासो ययेति लतापक्षे। अत्र प्रारब्धेत्यादिकर्मणि क्तः, पूर्णविकासस्यासन्नतया विकासक्रियाघटकव्यापाराणामादिव्यापारस्य सम्वृत्तत्वात्। नारीपक्षे तु भूयोभूयः प्रियविरहचिन्तातुरतया प्रारब्धा जृम्भा मुखविकासो (जम्भाई) ययेति पदार्थः। अविरलैः श्वसनस्य वसन्तानिलस्योद्गमैरात्मन आयासं कम्पनमातन्वतीं प्रकटयन्तीमिति लतापक्षे। वसन्तानिलाघातादान्दोलितामिति तात्पर्यम्। नारीपक्षे तु श्वसनोद्गमा दीर्घनिश्वासाः प्रियविरहजन्मान इति, आयासश्च विरहव्यथेति विशेषः। समदनां 'मदन'वृक्षाश्रिताम् इति लतापक्षे। सकामामिति नारीपक्षे। वस्तुतस्तूद्दामोत्कलिकामित्यनेनैव गतार्थमेतद् विशेषणम्। इमामुद्यानलतामन्यां नारीमिवानुरागेण पश्यन्नहं देव्या वासवदत्ताया मुखं परनारीदर्शनेर्ष्याप्रभावात् कोपविपाटलद्युति कोपारुणं ध्रुवं निश्चयेन करिष्यामीत्युत्प्रेक्षा॥

अत्र रसौचित्यमुपपादयति—अत्रेति। ईर्ष्याकृतो विप्रलम्भ ईर्ष्याविप्रलम्भः। परनारीतुल्यलतादर्शनजन्येर्ष्यया वासवदत्ता नूनं मत्पराङ्मुखी भवेदिति हेतोरियमुक्तिः संगतार्था। **विरहावस्थारोपेणेति**। अत्रेदं चिन्त्यम्—यदीयं लता समदना 'मदन'वृक्षाश्रिता तर्हि कथं नाम तत्र विरहावस्थारोपः संगच्छते? अतोऽयुक्तमेतत्। वस्तुतस्तु नारीपक्षे विशेषणमिदं पुनरुक्तदोषदुष्टमिति पूर्वमुक्तमेव, उद्दामोत्कलिकामित्यनेनैव नार्याः समदनत्वस्य स्पष्टं प्रतिपत्तेः। तथा च **'अद्योद्यानलतामिमां समदनाम्'** इत्यस्य स्थाने **'अद्योद्यानलतामिमाममदनाम्'** इत्येव पाठ्यमिति प्रतीमः। अत एव **'आयासं श्वसनोद्गमैः'** इत्यादिविशेषणमपि संगतं भवति, पवनान्दोलिताया लतायाः स्वाश्रयीभूतमदनवियोगसम्भवात्। तथा च सति नारीपक्षेऽपि

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशेषणमेतत् संघटते, मदनेन नायकेन रहितामित्यर्थबोधात्। एवं चोक्तो विरहावस्थारोपोपि सूपपादितो भवति ॥

इदमपि च विचारणीयम्—मनुष्यातिरिक्तस्य रत्यादे रसाभासप्रयोजकतया लतानिष्ठो विरहो न विप्रलम्भश्रृङ्गाररसत्वं भजते। तथा च तन्निष्ठौचित्यस्य कथंचिद्रसाभासौचित्यत्वस्वीकारेऽपि रसौचित्यत्वं कथमिति नावबुध्यते। विरहावस्थारोपनिष्ठत्वेऽप्यौचित्यस्य रसनिष्ठत्वाभावः स्पष्ट एव। यदि च वासवदत्तानिष्ठविप्रलम्भश्रृङ्गाररसोपयोगितयास्याभासस्य रसौचित्यत्वमुपपाद्यं तर्हि पदौचित्यादिपदार्थवर्णने का गतिः ? न हि तत्र पदायौचित्यमिति विग्रहः शक्यः कर्तुमुपपादयितुं वा स्वरसतः। तस्मादिदमुदाहरणमसङ्गतमेवेति। शेषमग्रे वक्ष्यामः ॥

रसौचित्य का उदाहरण श्रीहर्ष का यह पद्य है—

"उद्यान की यह मालती लता एक विरहिणी के समान है, क्योंकि दोनों 'उद्दामोत्कलिका' हैं (लता उद्दाम=उद्भूत, उत्कलिका=कलियों से भरी है और विरहिणी उद्दाम=उद्दण्ड, उत्कलिका=उत्कण्ठा से परिपूर्ण होती है); प्रतिक्षण 'प्रारब्ध-जृम्भा' हैं (लता जृम्भा=विकास कर रही है और विरहिणी निद्रा न होने से वारम्वार जृम्भा=जम्भाई लेती है); दोनों अविरल 'श्वसनोद्गम' से (लता श्वसन=वायु के उद्गम=आघात से और विरहिणी विरहजन्य श्वसन=निःश्वास के उद्गम=उत्पत्ति से) अपने 'आयास' (लता आयास=आन्दोलितावस्था और विरहिणी आयास=विरहजन्य श्रान्ति) को प्रकट कर रही हैं और दोनो 'अमदना'[१] (लता 'मदन' वृक्ष से और विरहिणी अपने प्रियतम से वियुक्त) हैं। अतः आज विरहिणी परकीया नायिका के समान इस उद्यानलता को देखता हुआ मैं निश्चय ही महारानी वासवदत्ता के मुख को क्रोध से लाल वना दूँगा ॥"

इसमें महारानी वासवदत्ता में ईर्ष्यामूलक विप्रलम्भश्रृङ्गार की कल्पना की गई है। अतः मालती लता में उसके विरहिणीतुल्य होने से विरहावस्था का आरोप देवीनिष्ठ विप्रलम्भश्रृङ्गार रस के अनुरूप है। अत एव इससे कवि की सूक्ति में एक आकर्षक चमक आ गई है ॥

---

१. संस्कृतव्याख्यायां युक्तत्वेन प्रदर्शितममदनामिति पाठमनुरुध्यायं भाषानुवादः कृतः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथा वा कालिदासस्य—

बालेन्दुवक्राण्यविकासभावाद् बभुः पलाशान्यतिलोहितानि ।
सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् ॥

अत्र पार्वत्यां परमेश्वरस्याभिलाषशृङ्गारे वक्ष्यमाणे प्रथममुद्दीपनविभावभूतस्य वसन्तस्य वर्णनायां कामुकाध्यारोपेण वनस्थलीललनानां कुटिललोहितपलाशकलिकाभिर्नवसङ्गमयोग्यनखक्षतान्युत्प्रेक्षितानि परमामौचित्यचारुतां प्रतिपादयन्ति ॥

उदाहरणान्तरमाह—यथा वेति ।

बालेन्द्विति । कुमारसम्भवस्य तृतीये सर्गे वसन्तवर्णनमिदम् । अविकासभावादविकसितत्वात् कारणाद् बालेन्दुर्द्वितीयाचन्द्र इव वक्राणि कुटिलान्यतिलोहितान्यतिरक्तानि पलाशानि पलाशवृक्षकोरकाणि बभुः शुशुभिरे । कथं शुशुभिर इत्युत्प्रेक्षते—सद्य इति । वसन्तेन नायकेन समागतानां सङ्गतानाम् वनस्थलीनां तत्स्वरूपकामिनीनां कुचयोरुपरि सद्यः कृतानि नखक्षतानीवेति ॥

अत्र समागतानां संगतानामिति विशेषणसामर्थ्याद्वसन्ते नायकत्वस्य वनस्थलीषु च नायिकात्वस्य प्रतीतेः समासोक्तिः, तद्गर्भा च वक्रत्वातिलौहित्यनिमित्ता कोरकेष्वविकसितेषु सद्यःकृतनखक्षतत्वोत्प्रेक्षा । सद्यः कृतानि नखक्षतान्यपि द्वितीयाचन्द्रवद् वक्राणि परमलोहितानि च भवन्ति ॥

अत्रौचित्यमुपपादयति—अत्र पार्वत्यामिति । अभिलाषोनुरागः, स च पार्वत्यां भवस्य "हरस्तु किञ्चित्परिलुप्तधैर्यः" इत्यादिना भवे च पार्वत्याः "विवृण्वती शैलसुतापि भावम्" इत्यादिना प्रदर्श्यमानः । तन्मूलश्च शृङ्गारोऽभिलाषशृङ्गारः । अत्रापि समासोक्तिगर्भोत्प्रेक्षाऽभिलाषशृङ्गारानुरूपिणीत्यलङ्कारनिष्ठमेवौचित्यं रसायौचित्यं भवदपि रसनिष्ठं नेति रसौचित्योदाहरणत्वमस्य चिन्त्यमेव । वस्तुतस्तु रसौचित्यं तत्रैव शोभते यत्राङ्गिरसानुरूपोऽङ्गरसो भासते । एवं यत्र यथावसरं रसो भासते तत्रापि रसस्यावसरानुरूपत्वाद्रसौचित्यं स्यात् । विशेषस्तु सुधीभिर्विचारणीयः । रसपदं च रसाभासादेरप्युपलक्षणं मन्तव्यम्, तदौचित्यस्य पृथगनुल्लेखात् ॥

अत्रेदमप्याकलनीयम्—कुमारे हि वसन्तवर्णनं शिवकामोद्दीपनोपयोगितयैव कविना कृतम् । तत्र प्रत्यर्थंनियतं भवानीभवनाथशृङ्गारानुरूप्यं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नैव विवक्षितमिति प्रतीमः। कथमन्यथा वल्लीनां वनस्थलीस्वरूपनायिकानामुरोजेषु समुत्प्रेक्षितानि नखक्षतान्येकस्या एव भवान्या विषये समन्वयं प्राप्नुयुः? तस्माद् ग्रन्थकृदुक्तं नास्मभ्यं बहु रोचते। अधिकं विचक्षणैर्विवेचनीयम् ॥

इसका उदाहरण कालिदास का यह पद्य है—

"अविकसित होने के कारण बाल चन्द्र की तरह वक्र और अत्यन्त रक्तवर्ण के पलाशकोरक इस प्रकार शोभित हो रहे थे मानों वे वसन्तरूपी नायक के साथ समागम करने वाली वनस्थलीरूपी नायिकाओं के कुचों पर तत्काल किये गये नखक्षत हों॥"

इस तृतीय सर्ग में पार्वती-परमेश्वर के परस्पराभिलापमूलक श्रृङ्गार रस का वर्णन किया जाने वाला है। अतः उसके पूर्व उस श्रृङ्गार के उद्दीपन विभाव वसन्त ऋतु में नायकत्व का एवं वनस्थलियों में नायिकात्व का (समासोक्तिप्रयुक्त) आरोप कर उन नायिकाओं के कुचों पर वक्र एवं लाल (अविकसित) पलाशकोरकों की नखक्षत के रूप में उत्प्रेक्षा प्रकृत रस के अनुरूप होने से बहुत ही आह्लादक है॥

न तु यथास्यैव—

वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः।
प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः॥

अत्र केवलकर्णिकारकुसुमवर्णनमात्रेण विधातृवाच्यतागर्भेणैव प्रस्तुतश्रृङ्गारानुपयोगिना तदुद्दीपनविभावोचितं न किञ्चिदभिहितम्॥

रसानौचित्यं प्रसङ्गादाह—न त्विति।

वर्णप्रकर्ष इति। इदमपि कुमारसम्भवस्थमेव पद्यं पूर्वपद्याव्यवहितपूर्ववृत्ति। कर्णिकारपुष्पं वर्णप्रकर्षे रूपगतोत्कर्षे सत्यपि निर्गन्धतया चेतो दुनोति स्म खेदयति स्म। अत्रार्थान्तरन्यासमाह—प्रायेणेति। बाहुल्येनेत्यर्थः। गुणानां सामग्र्यविधौ गुणसाकल्यसम्पादने, किमपि वस्तु सकलगुणास्पदं विधातुमिति तात्पर्यम्। विश्वसृजो विधातुः प्रवृत्तिः पराङ्मुखी प्रतिकूला। न किमपि वस्तु विधाता सकलगुणसम्पन्नं विधत्त इति भावः। तथा चोक्तम्—

चन्द्रे कलङ्कः सुजने दरिद्रता
विकासलक्ष्मीः कमलेषु चञ्चला।
मुखाप्रसादः सधनेषु सर्वदा
यशो विधातुः कथयन्ति खण्डितम्॥ इति।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्रानौचित्यमुपपादयति—अत्रेति । वाच्यता = निन्दा, उपालम्भो वा । अत्र निर्गन्धकर्णिकारपुष्पनिर्मातुर्विधातुर्निन्दामात्रं प्रतिपादितम् । तच्च प्रकृतश्रृङ्गारोपयोगि न भवतीत्यनौचित्यम् इति भावः ॥

यद्वा नात्रानौचित्यम्,

श्रुताप्सरोगीतिरपि क्षणेस्मिन्
हरः प्रसंख्यानपरो बभूव ।
आत्मेश्वराणां न हि जातु विघ्नाः
समाधिभेदप्रभवो भवन्ति ॥

इति पद्योक्तार्थानुरूपतयात्र वर्णनसौष्ठवात् । किञ्च रसौचित्योदाहरणवदस्यापि रसानौचित्योदाहरणत्वं चिन्त्यम्, अनौचित्यस्य रसनिष्ठत्वाभावात् ॥

अब प्रसङ्गवश रसानौचित्य का उदाहरण भी कुमारसम्भव के ही तृतीय सर्ग से दे रहे हैं—

"यह कर्णिकार देखने में तो बहुत ही सुन्दर है। किन्तु गन्धहीन होने के कारण चित्त को आनन्दित नहीं अपितु खिन्न ही बना रहा है। यह सत्य है कि विधाता ने प्रायः किसी भी वस्तु को समग्रगुणसम्पन्न नहीं बनाया ॥"

यहाँ निर्गन्ध कर्णिकार पुष्प के वर्णन से विधाता की निन्दा तो की गई है किन्तु इसमे ऐसे किसी पदार्थ का वर्णन कवि ने नही किया है जो प्रकृत श्रृङ्गार रस के उद्दीपन विभाव के अनुरूप हो। अतः प्रकृतरसानुपयोगी होने के कारण यहाँ रसौचित्य नही है ॥

हास्यरसे यथा मम लावण्यवतीनाम्नि काव्ये—

सीधुस्पर्शभयान्न चुम्बसि मुखं किं नासिकां गूहसे
रे रे श्रोत्रियतां तनोषि विषमां मन्दोऽसि वेश्यां विना ।
इत्युक्त्वा मदघूर्णमाननयना वासन्तिका मालती-
लीनस्यात्रिवसोः करोति बकुलस्येवासवासेचनम् ॥

अत्र श्रोत्रियस्यात्रिवसोरपवित्रसीधुस्पर्शशङ्कासङ्कोचनिलीनस्य शुष्कबकुलवृक्षस्येव सरसतापादनाय वेश्याविलासिन्या यदासवासेचनं तदङ्गभूतश्रृङ्गाररसाभासस्पर्शेन हास्यरसस्य वरासवस्येव सहकाररसवेधेन सचमत्कारमौचित्यमाचिनोति ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्प्रति हास्यरसौचित्यं निदर्शयन्नाह—**हास्येति**। लावण्यवतीति काव्यं क्षेमेन्द्रस्य।

सीधुस्पर्शभयादिति। वासन्तिकाभिधा काचिद्वेश्या मालती-पतिमत्रिवसुमुपहसन्त्याहेदम्। रे मूढ श्रोत्रियात्रिवसो! **सीधुस्पर्शभयादिति**। सीधुशब्दको मद्यार्थकः। तत्स्पर्शभयात्त्वं मम मुखं कथं न चुम्बसि! मद्यगन्धाद्विभ्यन् स्वनासापुटे कथं गूहसे मुद्रयसि! व्यर्थमेव त्वं विषमां मन्दां श्रोत्रियतां वैदिकतां तनोषि। सेयं तव मन्दता वेश्यासम्पर्काभावप्रयुक्तैवेति वदन्ती सीधुमदप्रभावादाघूर्णमाने नयने यस्यास्सा वासन्तिकाभिधा वाराङ्गना मालत्यां तनाम्न्यां स्वपत्न्यां लीनस्यासक्तस्यात्रिवसुनामकस्य श्रोत्रियस्यासेचनं तथा करोति यथा नीरसं बकुलवृक्षं सरसं कर्तुं कामिनी तस्यासेचनं कुरुते। शुष्कप्रायो बकुलवृक्षो योषितो मद्यगण्डूषेणासिक्तः पल्लवितो भवतीति कविसमयः। तथा च यथा शुष्कप्रायन्नीरसम्बकुलवृक्षं काचिद् योषिन्मद्यगण्डूषेण पल्लवितं सरसं सम्पादयति तथैव नीरसमत्रिवसुं सरसं विधातुं सा वासन्तिका मुखसीधुना तं परिषिञ्चतीति भावः॥

अत्रौचित्यं संघटयति—**अत्रेति**। **वेश्याविलासिन्येति**। वेश्यैव विलासिनी तयेत्यर्थः। कर्त्तरि तृतीया। वरासवो नामोत्कृष्टं मद्यम्।

वस्तुतस्तु समस्त एवायं वृत्तिग्रन्थोऽसमञ्जसः। यदि नामासवासेचनमेव हास्यरसस्यौचित्यं बिभर्त्ति तर्हि तदासेचननिष्ठमेव न रसतदाभासान्यतरनिष्ठम् इति कथमेतद्रसौचित्योदाहरणमिति नावगच्छामः। शृङ्गाररसाभासनिष्ठमौचित्यं त्वस्य हास्यरसस्य पोषकमिति युक्तम्। हास्यरसे त्वौचित्यवर्णनं नितरामसङ्गतम्, तस्याङ्गित्वात्। यद्वैवम्विधशृङ्गाराभासे हास्यरसस्तद्वर्णनं तत्परिपाको वा तथेति यथाकथञ्चित्सङ्गमनीयम्। एवमन्यत्रापि पूर्वापरयोर्बोध्यम्॥

हास्यरसौचित्य का उदाहरण मेरी लावण्यवती का यह पद्य है—

"अरे मूर्ख ब्राह्मण! मदिरोत्सिक्त मेरे मुख का तूँ चुम्बन इस लिए नहीं कर रहा है कि इससे तुझे मदिरा का सम्पर्क करना होगा! तूँ अपनी नाक क्यों मून्द

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहा है ! अपनी मूर्खतापूर्ण श्रोत्रियता को क्यों प्रकट करता ! तेरी यह मूर्खता तो मुझ वेश्या का सम्पर्क न होने के कारण ही है—ऐसा कह कर अत्रिवसुको, जो अपनी पत्नी मालती मे आसक्त होने से उस वेश्या के प्रति तत्काल नीरस हो गया था, अपने मुखमद्य से वह मदमत्त नयनों वाली वासन्तिका नामक वेश्या उसी प्रकार आसिक्त कर देती है जिस प्रकार नीरस वकुल वृत्त को सरस बनाने के लिए कोई नायिका उसे आसिक्त करती है ॥"

इस पद्य मे अपवित्र मद्य के सम्पर्क की आशङ्का से सङ्कुचित (=नीरस) हो जाने से शुष्क वकुल वृत्त के समान श्रोत्रिय अत्रिवसु को सरस वनाने के लिए वेश्याविलासिनी द्वारा मुखमद्य से आसिक्त करने की वात कही गई है। यहं अङ्गभूत श्रृङ्गाराभास के सम्पर्क से, आम्ररस के सम्पर्क से उत्कृष्ट मद्य के समान, हास्यरस के चमत्कारपूर्ण औचित्य का उपपादन कर रही है ॥

यथा वा मम लावण्यवत्यामेव—

मार्गे केतकसूचिभिन्नचरणा सीत्कारिणी केरली
रम्यं रम्यमहो पुनः कुरु विटेनेत्यर्थिता सस्मिता ।
कान्ता दन्तचतुष्कबिम्बितशशिज्योत्स्नापटेन क्षणं
धूर्तालोकनलज्जितेव तनुते मन्ये मुखाच्छादनम् ॥

अत्रापि हास्यरसस्य कुटिलविटनर्मोक्तिवचनौचित्येन श्रृङ्गाररसाभासाधिवासितस्य सचमत्कारः परः परिपोषः समुन्मिषति ॥

अस्यैवोदाहरणान्तरमाह—यथा वेति ।

मार्गे इति । यदा केरली केरलदेशीया काचन कान्ता क्वचिद् गच्छन्ती मार्गे केतकपुष्पस्य तद्वृक्षस्य वा सूच्या कण्टकेन भिन्नमाविद्धं चरणं यस्यास्तथाविधा सती सीत्कारिणी सीत्कारशब्दकर्त्री जाता तदा विटेन "रम्यं रम्यम् , पुनरपि सीत्कारं कुरु" इत्येवं प्रार्थिता सती सस्मिता सञ्जाता । एवं स्थितावुत्प्रेक्ष्यते—दन्तेत्यादि । दन्त एव चतुष्कं चतुष्कोणस्थानं द्वारदेशः तत्र बिम्बिता शशिज्योत्स्ना चन्द्रिकैव पटस्तेन धूर्तालोकनलज्जिता सा क्षणं मुखाच्छादनं तनुत इति मन्ये सम्भावयामि । क्षणमेव स्मयस्य तत्त्वावबोधात् क्षणमित्यस्य क्रियाविशेषणत्वमुपपन्नमेव ॥

अत्र च चतुर्थचरणे "तत्सन्दर्शनलज्जिता वितनुते......" इति पाठः साधीयान् ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्रौचित्यमुपपादयति—अत्रापीति । इहापि शृङ्गाराभासनिष्ठमेवौचित्यं हास्यरसपरिपोषकमिति वक्तव्यम् । यद्वा पूर्ववद्व्याख्याय कथञ्चिदुपपत्तिः प्रदर्शनीया । विटवचननिष्ठत्वे त्वौचित्यस्य रसौचित्योदाहरणत्वं दुर्घटमेव ॥

इसका दूसरा उदाहरण भी लावण्यवतीकाव्य का ही यह पद्य है—

"केरलदेशीय कामिनी जब कहीं जा रही थी तब उसके पैर में केवड़े का काँटा चुभ गया जिससे वह सीत्कार कर उठी। यह सुन कर विट ने यह कहा—'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, फिर ऐसा हीं करो।' इस पर वह मुस्करा उठी। इससे ऐसा लग रहा था मानो उस विट के देख लेने से लज्जित वह कामिनी अपने दन्त-रूपी चतुष्कोण द्वार पर प्रतिबिम्बित चन्द्रिकारूपी पर्दे से क्षण भर के लिए अपने मुँह को ढक रही हो ॥"

यहाँ भी कुटिल विट के परिहासपूर्ण वचन से प्रयुक्त शृङ्गाराभासनिष्ठ औचित्य द्वारा हास्य रस का चमत्कारपूर्ण उत्कर्ष प्रकट हो रहा है ॥

न तु यथा श्यामलकस्य—

चुम्बनसक्तः सोऽस्या दशनं च्युतमात्मनो वदनात् ।
जिह्वामूलप्राप्तं खाडिति कृत्वा निरष्ठीवत् ॥

अत्र हास्यरसस्य बीभत्सरसाधिवासितस्य लसुनलिप्तस्येव कुसुमशेखरस्यातिजुगुप्सितत्वादनीप्सितस्य परमानौचित्येन चमत्कारस्तिरोहितः । वृद्धापरिचुम्बने जिह्वामूलप्राप्तस्य च्युतदशनस्य कण्ठलोलिनः ष्ठीवनेन बीभत्सस्यैव प्राधान्यम्, न तु हास्यरसस्य ॥

प्रत्युदाहरणमाह—न त्विति।

चुम्बनसक्त इति। यदा कश्चिदधमो वृद्धायाश्चुम्बन आसक्तस्तदा तस्या वार्धक्यप्रभावादाघाताक्षमं दशनमेकं च्युतं सक्तस्याधमस्य जिह्वामूले कण्ठे निषक्तम् । ततश्च सोधमः खाडिति शब्दं कृत्वा जिह्वामूलस्थं तद्दशनं थूत्कृत्य स्वमुखान्निरष्ठीवद्बहिष्कृतवान् ॥

अत्र बीभत्सो रसो हास्यरसायानुचित इत्याह—अत्रेत्यादिना । यथा कुसुमशेखरो नाम पुष्पमाल्यम् लसुनलिप्तं सदतिदुर्गन्धतयाऽतिजुगुप्सितं सदनीप्सितं भवति सहृदयानाम् तथैव बीभत्सरसाधिवासितो हास्यरसोपि । अतश्च बीभत्सरसस्य हास्यरसाननुरूपतयानुचितत्त्वात्तेन हास्यरसस्य चमत्कारस्तिरोहितः । यद्वा बीभत्सरसाधिवासितो हास्यरसोऽनुचित इत्यस्य चमत्कार-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्तिरोहित इति व्याख्येयम् पूर्ववदेव। एवं वर्णने हि वीभत्सस्यैव हठादाकर्षकस्य प्राधान्यं न हास्यरसस्येत्याह—**वृद्धापरिचुम्बन इति**। अत्रेदं बोध्यम्—अङ्गाङ्गिविनिमयमात्रेणौचित्यानौचित्यविषयकविशेषाभावो रसप्रसङ्गे। अन्यथा हास्यरसाङ्गतया वीभत्सवर्णने नानौचित्यमिति भ्रमः स्यात् संशयो वा। इतिवृत्താननुरूपतया त्वयं विनिमयस्तथा भवितुमर्हति। तथा चात्र वीभत्साऽङ्गितया हास्योपवर्णनमनुचितम् ॥

किन्तु कवि श्यामलक के इस पद्य में हास्यरसौचित्य नही है—

"यह अधम कामुक वृद्धा के चुम्वन में जब आसक्त हो गया तो उस (वृद्धा) का एक दाँत टूट गया और वह उस अधम के गले में उलझ गया। तब उसने थूककर उसे वाहर किया ॥"

यहाँ हास्यरस वीभत्सरसमिश्रित होने से अत्यन्त जुगुप्सित हो जाने के कारण उसी प्रकार अनभीष्ट है जिस प्रकार लशुन की गन्ध से वासित पुष्पमाला। यह अत्यन्त अनुचित है। इससे हास्यरस का चमत्कार समाप्त हो गया है। वृद्धा का चुम्वन करते समय उसका टूटा हुआ दाँत अधम नायक के गले में उलझ जाता है जिसे वह थूककर वाहर निकालता है—इस वर्णन से यहाँ वीभत्सरस की ही प्रधानता प्रतीत होती, हास्यरस की नहीं जवकि प्रधानता हास्यरस की ही होनी चाहिए थी ॥

करुणे यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

प्रत्यग्रोपनताभिमन्युनिधने हा वत्स हा पुत्रके-
त्यश्मद्रावि सुभद्रया प्रलपितं पार्थस्य यत्तत्पुरः।
येनोद्बाष्पविमुक्तशष्पकवलैः सेनातुरङ्गैरपि
न्यञ्चत्पार्श्वगतैककर्णकुहरैर्निःस्पन्दमन्दं स्थितम् ॥

अत्र प्रत्यग्रोपनताप्रियतरतनयवियोगोपजनितशोकाख्यस्थायिभावोचितं दृषतामपि हृदयद्रावणं सुभद्रया यत्प्रलपितं तदर्जुनचेतसि प्रतिफलितं न केवलमुद्दीप्ततामुपगतं यावत्तिरश्चां तुरङ्गमाणामप्यन्तः संक्रान्तमुद्बाष्पविमुक्तशष्पकवलनिःस्पन्दमन्दस्थितादिभिरनुभावैरुदीर्णतरुणकरुणरसप्रतिपत्तिं किमप्यादधाति ॥

करुणरसौचित्यमुदाहरति—**करुण इति**।

प्रत्यग्रेति। प्रत्यग्रं सद्य उपनतं जातं यदभिमन्युनिधनं तस्मिन् सति सुभद्रयाऽभिमन्युजनन्या यद् 'हा वत्स! हा पुत्रक!' इति प्रलपितं तदश्म

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रस्तरं द्रावयितुं शीलमस्येत्यश्मद्रावि सञ्जातम् । तेन च प्रलपितेनोद्बाष्पत्वादुद्गताश्रुत्वाद्विमुक्तानि शष्पकवलानि तृणग्रासानि यैस्तैर्न्यञ्चन्त्यधोमुखीभवन्ति पार्श्वंगतानि मुखपार्श्वलग्नान्येककर्णकुहराणि कर्णविवराणि येषान्तैश्च सेनाङ्गभूतैस्तुरङ्गैरपि निष्पन्दं निश्चेष्टं मन्दञ्च स्थितम् शोकावेगेऽश्वाः कर्णं न्यञ्चन्तीति प्रसिद्धम् । अत्र पार्श्वगतत्वमेकत्वं कुहरत्वं चाप्रयोजकम् । तृतीयचरणादौ च 'येन' इत्यस्य स्थाने 'तेन' इति युक्तम् ॥

अत्रौचित्यमुपपादयति—अत्रेति ।

प्रत्यग्रमुपनतो योऽप्रियतरस्तनयवियोगस्तेनोपजनितो यः शोकाख्यः करुणरसस्थायिभावस्तदनुरूपं यत्सुभद्रायाः प्रस्तराणामपि विद्रावकं प्रलपितं तदर्जुनस्य चेतसि प्रतिबिम्बितं न तत्रैव केवलमुद्दीप्तमपि तु तिरश्चामश्वानामपि हृदये संक्रान्तं सदुद्बाष्पविमुक्तशष्पकवलादिभिरनुभावैः किमप्यपूर्वामुदीर्णस्योत्कर्षमाप्तस्य प्रौढकरुणरसस्य प्रतिपत्तिमादधातीति प्रबन्धार्थः । अत्र प्रियतमेति तनयविशेषणमनुक्त्वाऽप्रियतरेति वियोगविशेषणोपादानं शिरोवेष्टनेन नासिकास्पर्शोपमं ग्रन्थकृतः । तरप्प्रत्ययप्रयोगस्तु नितान्तमनुचितः, एवं सति शोकातिशयाप्रतिपत्तेः । अत्रापीदृशानुभावादौ सत्येव करुणरसपरिपाकस्यौचित्यं वर्णनीयम् । अनुभावादिनिष्ठन्त्वौचित्यं व्याख्यातव्यमत्रास्माभिः । यद्यप्युभयमपि परस्परमौचित्यमावहत्येव—ईदृशानुभावादौ करुणरसप्रतिपत्तेस्तत्प्रतिपत्तये चेदृशानुभावादेरवश्यम्भावात्, तथापि प्रधानानुरूपत्वमङ्गस्येत्येव युक्तं मन्यामहेऽनुभवस्वाभाव्यादित्यसकृदुक्तमेवेत्यलम् ॥

करुणरसौचित्य का उदाहरण मेरी मुनिमतमीमांसा का यह पद्य है—

"कुछ ही देर पहले हुई अभिमन्यु की मृत्यु का अप्रियतम समाचार पाकर अर्जुन के समक्ष सुभद्रा जो 'हाय बेटे! हाय पुत्र!' यह विलाप करने लगी वह पत्थर को भी पिघला देने वाला था। उससे अर्जुन की शोकाकुलता के विषय मे तो कहना ही क्या, पाण्डवों की सेना में जो घोड़े थे वे भी रोने लग गए और घास खाना छोड़ तथा अपने कान को झुका निश्चेष्ट एवम् उत्साहहीन हो कर खड़े हो गए॥"

यहाँ पुत्र के सद्यःप्राप्त अप्रियतम वियोग से उत्पन्न शोक से जन्य सुभद्रा का पत्थरों को भी पिघला देने वाला यह विलाप अर्जुनमात्र के अन्तःकरण में ही उदग्ररूप में प्रतिबिम्बित हुआ हो ऐसी बात नही, अपि तु अश्व जैसे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निम्नस्तर के जीवों के हृदय में भी आघात पहुँचाता है। अतः प्रकृत शोकस्वरूप स्थायिभाव के अत्यन्त अनुरूप होने तथा अश्वों में भी अश्रुप्रवाह, घास का परित्याग और निश्चेष्ट एवं निरुत्साह होकर खड़ा रहना आदि अनुभावों का उद्भावन करने के कारण उत्कृष्ट एवं सर्वाङ्गपूर्ण करुण रस की विलक्षण प्रतिपत्ति करा रहा है॥

न तु यथा परिमलस्य—

हा शृङ्गारतरङ्गिणीकुलगिरे हा राजचूडामणे
हा सौजन्यसुधानिधान हहहा वैदग्ध्यदुग्धोदधे।
हा देवोज्जयिनीभुजङ्ग युवतिप्रत्यक्षकन्दर्प हा
हा सद्बान्धव हा कलामृतकर? क्वासि प्रतीक्षस्व नः॥

अत्र हाहेति हतमहीपतिविरहे तद्गुणामन्त्रणपदैर्वक्तृवक्त्रगत एव शोकः केवलमुपलक्ष्यते, न तु विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगेन शोकाख्यस्य स्थायिभावस्योचितं रसीकरणं किंचिन्निष्पन्नम्॥

प्रसङ्गात् करुणरसानौचित्यमुदाहरति—न त्विति। हा शृङ्गारेति। उज्जयिनीनगराधिपस्य प्रयाणेन शोकाकुलस्य कस्यचनोक्तिरियम्। शृङ्गार एव तरङ्गिणी नदी तस्यै तस्या वा यः कुलपर्वतस्तस्य सम्बोधनम्। कुलपर्वताश्च सप्त प्रसिद्धाः—

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः॥ इति।

राजचूडामणे = राजमुकुटमणे। सौजन्यमेव सुधा तस्या निधानम्। वैदग्ध्यं विद्वत्त्वमेव दुग्धं तस्योदधे। उज्जयिन्या भुजङ्ग = वेश्यापते। अत्रोज्जयिन्या तमीशं परित्यज्य पत्यन्तरवरणाद्वेश्यासदृशत्वं तस्याः परिकल्प्य पतित्वं तस्मिन् गते नरपतौ कल्प्यमेतदर्थमिति क्लिष्टतरा कल्पना, सापि न प्रशंसाप्रतिपादिकेत्यपि सुव्यक्तमेव। यद्वा भुजङ्गपदमत्र पतिमात्रार्थकमेव प्रयुक्तम्। युवतीनां साक्षात्कन्दर्परूप! कलैव विविधामृतं तत्करोतीति कलामृतकरस्तस्य सम्बोधने रूपम्। त्वं क्वासि? नोऽस्मान् प्रतीक्षस्वावलोकय॥

अत्र हेति पदं शोकप्रकाशकम्, हहहेति च तदावेगप्रकाशकम्॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्रानौचित्यं प्रतिपादयति—अत्रेति। गुणामन्त्रणपदम् = गुणप्रख्यापकपदम्। अत्र शोकाख्यस्थायिभावस्य प्रतिपाद्यमानत्वेऽपि तस्य रसत्वापादनाय यो विभावानुभावव्यभिचारिसंयोग आवश्यकस्तदभाव एवेति नैवंस्थितौ करुणरसस्याविर्भाव इत्यनौचित्यमस्येत्याशयः। एवम्विधोऽनुभावाद्यपरिपुष्टः शोको वर्णितः स्थायिभावतयेत्यनौचित्यमत्रेति वयम्॥

किन्तु परिमल कवि के निम्नलिखित पद्य मे करुणरसौचित्य नही है—

"हे शृङ्गार-प्रवाह के कुलपर्वत (=उत्पादक=प्रभव), राजाओं के मुकुटमणि, सौजन्यरूपी सुधा के आलय, वैदग्ध्यरूपी दुग्ध के समुद्र, युवतियों के साक्षात् कामदेव, सज्जनों के मित्र और कलारूपी अमृत के सम्पादक उज्जयिनीनाथ राजन्! तुम कहाँ हो! जरा मेरी ओर भी तो देखो!"

इस पद्य में वारम्वार हा, हहहा आदि शब्दों के प्रयोग एवं राजा के गुणों के प्रतिपादक सम्वोधनों से यही प्रतीत होता है कि करुण रस का स्थायिभाव शोक वक्ता के मुख तक ही सीमित है। इस वर्णन में स्थायिभाव को रसरूपता प्रदान करने वाले विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारिभावों का संयोग चित्रित नहीं किया गया है। अतः यहाँ करुण रस की अभिव्यक्ति एकदम नही हो पाती॥

रौद्रे यथा भट्टनारायणस्य—

यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां
यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा।
यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीपः
क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम्॥

अत्र क्रूरक्रोधस्थायिभावात्मकस्योन्निद्ररौद्ररसस्योचिता शिशुस्थविरगर्भगतविशसननिस्त्रिंशकर्माध्यवसायाधिरोहणसंवादिनी द्रोणवधविधुरामर्षविषविषमव्यथा कश्मलशिथिलमश्वत्थाम्नः स्थेमानं प्रतिज्ञापयति॥

अधुना रौद्ररसौचित्यं निदर्शयति—रौद्र इति।

यो य इति। द्रोणवधानन्तरं युद्धभूमिमुपागतस्याश्वत्थाम्न इयमुक्तिर्वेणीसंहारनाटके। पाण्डवीनां पाण्डवसम्बद्धानां चमूनां सेनानां मध्ये यो यः स्वभुजयोर्गुरुर्मदोऽस्यास्तीति कर्मधारयोत्तरं सप्तमीतत्पुरुषे मत्वर्थीयाच्-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रत्ययान्तं स्वभुजगुरुमद इति पदम्। अन्यथा व्यधिकरणवहुव्रीहिक्लेश एव स्यात्। **न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो वहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकरः** इति त्वौत्सर्गिक इत्यवोचाम। तथा च यः कोपि पाण्डवसेनामध्यगतः स्वभुजयोर्विषये गुरु मदं दधानः शस्त्रं विभर्त्ति। यो यः पाञ्चालगोत्रे द्रुपदकुले शिशुरधिकवया युवा गर्भस्थो वा कश्चन। अधिकत्वस्य सावधित्वेनोपस्थितं परित्यज्यानुपस्थितकल्पने मानाभावाच्छिशुरेवात्रावधिभूत इत्यधिकवया इत्यस्य युवेत्यर्थः सिद्ध्यति। तत्कर्मणो द्रोणवधक्रियायाः साक्षी साक्षाद् द्रष्टा श्रोता वा! अत्र साक्षी स एव विवक्षितो योऽविहितप्रतीकारस्तदानीम्। मय्यश्वत्थाम्नि रणे चरति सति यः कोपि प्रतीपः प्रतिकूलो मम तस्य तस्य सर्वस्य जगतामन्तकस्य यमराजस्यापीह रणे क्रोधान्धोहं स्वयमेवान्तको यमोऽस्मि। सर्वं विप्रतीपं हनिष्याम्यद्य, स विप्रतीपो जनसाधारणो वा भवेत्स्वयं यमराज एव वा, न कमपि त्यक्ष्यामीत्याशयः॥

औचित्योपपादनमाह—**अत्रेति**। क्रूरो घातुकः प्रचण्डः क्रोधस्वरूपः स्थायिभावस्स आत्मा स्वरूपम् यस्योन्निद्रस्य प्रकटस्य रौद्ररसस्य सः। विभावाद्यभिव्यक्तस्य स्थायिभावस्य रसत्वात्तदात्मकत्वं रसस्यास्त्येव। तस्योचिताऽनुरूपा व्यथेत्यनेन सम्बध्यते। शिश्वादीनां विशसने वधे विषये यन्निस्त्रिंशस्य खड्गस्य कर्म। यद्वा विशसनमेव निस्त्रिंशकर्म तस्याध्यवसायो निश्चयस्तस्याधिरोहणेनोत्कर्षेण सह सम्वदतीति सम्वादिन्यनुरूपा या द्रोणस्य वधेन विधुरस्य सन्तप्तस्याश्वत्थाम्नोऽमर्षः क्रोध एव विषं तज्जन्या विषमाऽसह्या व्यथा सा तस्य कश्मलेन मोहेन शिथिलं स्थेमानं स्थितिं मनोदशां प्रतिज्ञापयति प्रकटयति। अत्र कानिचित् पदान्यपार्थकान्येव। प्रकृतेप्यौचित्यव्याख्या पूर्ववदेव विधेया॥

रौद्ररसौचित्य का उदाहरण भट्टनारायणकृत वेणीसंहार नाटक का यह पद्य है—

"आज क्रोधान्ध होकर मैं इस युद्ध-भूमि में उन सबका संहार करने जा रहा हूँ जो कोई पाण्डवों की सेना में अपने वाहुवल पर उद्दाम दर्प से चूर होकर शस्त्र लिए हुए हैं, जो कोई भी द्रुपद के कुल से सम्बद्ध हैं, चाहे वह बालक हो या युवा या गर्भस्थ भ्रूण; जो कोई भी मेरे पितृदेव के अनुचित वध का साक्षी रहा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है एवं जो कोई भी इस युद्ध-भूमि में विचरण करते समय मेरा विरोध करेगा, चाहे वह साक्षात् यमराज हीं क्यों न हो !"

इस पद्य में अश्वत्थामा की द्रोणवधजन्य क्रोधस्वरूप विष की उसी असह्य वेदना का वर्णन है जो नृशंस क्रोधस्वरूप स्थायिभावात्मक प्रकट रौद्र रस के अनुरूप तथा द्रुपद-कुल से सम्बद्ध बालक, वृद्ध तथा गर्भस्थों के खड्गप्रहार द्वारा संहार के निश्चय से सामञ्जस्य रखने वाली है। इससे अश्वत्थामा की मोहाच्छन्न मनःस्थिति प्रकट हो रही है ॥

न तु यथा श्रीप्रवरसेनस्य—

दणुएन्दरुहिरलग्गे जस्स फुरन्ते णहप्पहाविछड्डे ।
गुप्पन्ती विवलाआ गलिअब्वथणंसुए महासुरलच्छी ॥

अत्र क्रोधव्यञ्जकपदविरहिततया "दनुजेन्द्ररुधिरलग्ने यस्य नृसिंहस्य स्फुरति नखप्रभासमूहे व्याकुलीभवन्ती विपलायिता गलितस्तनांशुका महासुरलक्ष्मीः" इति वर्णनया रुधिरलग्न इति बीभत्सरससंस्पर्शो व्याकुलीभवन्ती दैत्यश्रीः पलायितेति भयानकरससङ्करेण प्रकृतोचितप्रधानभूतस्य रौद्ररसस्य क्वचिन्मुखमपि न दृश्यते ॥

रौद्ररसानौचित्यम्प्रसङ्गादुदाहरति—न त्विति ।

दणुएन्देति । अस्य पद्यस्य च्छाया संस्कृते यथा—

दनुजेन्द्ररुधिरलग्ने यस्य स्फुरति नखप्रभाविच्छर्दे ।
व्याकुला विपलायिता गलितस्तनांशुका महासुरलक्ष्मीः ॥

हिरण्यकशिपुनिहन्तुर्नृसिंहस्य वर्णनमिदम् । यस्य नृसिंहस्य दनुजेन्द्रस्य दैत्याधिपतेर्हिरिण्यकशिपो रुधिरेण लग्ने सम्पृक्ते नखप्रभासमूहे व्याकुलीभवन्ती महासुरलक्ष्मीः गलितं स्तनांशुकं स्तनावरणं यस्यास्तथा सती विपलायिता । ततो दैत्याधिपतेरिति शेषः ॥

अत्रानौचित्यं प्रतिपादयति—अत्रेति । रुधिरलग्न इति पदेन बीभत्सस्य व्याकुलीभवन्ती दैत्यश्रीरित्यनेन च भयानकस्य प्रतीतावपि रौद्रस्थायिभावक्रोधव्यञ्जकपदाभावेन प्रकृतरौद्ररसानभिव्यक्तेरनौचित्यमिति भावः ॥

किन्तु प्रवरसेने कवि के निम्नोद्धृत पद्य में रौद्ररस का औचित्य नहीं है—

"जिस भगवान् नृसिंह की दैत्यराज के रक्त से सम्पृक्त नखद्युतियों की चमक से व्याकुल दैत्यश्री निर्वस्त्र होकर भाग खड़ी हुई ॥"

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यहाँ जो वर्णन किया गया है उसमे 'रुधिरलग्न' कहने से वीभत्स रस की और 'व्याकुल दैत्यश्री भाग खड़ी हुई' कहने से भयानक रस की प्रतीति होने पर भी प्रक्रान्त रौद्र रस की अभिव्यक्ति होती ही नहीं, क्योंकि इस वर्णन में रौद्र रस के स्थायिभाव क्रोध का अभिव्यञ्जक कोई पद ही नहीं है ॥

वीरे यथा मम नीतिलतायाम्—

शौर्याराधितभर्गभार्गवमुनेः शस्त्रग्रहोन्मार्गिणः
संक्षेपेण निवार्य संक्षयमयीं क्षत्रोचितां तीक्ष्णताम् ।
आकर्णायतकृष्टचापकुटिलभ्रूभङ्गसंसर्गिणा
येनान्यायनिषेधिना शममयी ब्राह्मी प्रदिष्टा स्थितिः ॥

अत्र "सोऽयं राम" इति रावणाग्रे शुकसारणाभ्यां दूरान्निर्दिश्यमानस्य रामस्य निःसंरम्भगम्भीरावष्टम्भसंभाव्यमानप्रभावोचितायां शस्त्रसंग्रहोन्मार्गगामिनो भार्गवस्य मुनेः स्वजातिसमुचितस्थित्युपदेशे सति प्रभविष्णुतायां चापरूपभङ्ग्या भ्रूभङ्गः प्रदर्शितः, न तु स्वाभाविकः, वीरस्य क्रोधे विकारासंभवात् । प्रसन्नमधुरधीरा हि वीरवृत्तिः, तदुचितमत्राभिहितम् । भार्गवाभिभवेन च प्रधाननायकस्योत्कर्षः प्रतिपादितः ॥

वीररसौचित्यमुदाहरति—वीर इति ।

शौर्येति । परशुरामं शमितवतो रामस्य रावणाभिमुखमागच्छतो दूरत एवावलोकनं कुर्वद्भ्यां रावणानुचराभ्यां कृतं वर्णनमिदं क्षेमेन्द्रकृतनीतिलतायाम् । शौर्येणाराधितो भर्गः शिवो येन तस्य भार्गवस्य परशुरामस्य मुनेः । शस्त्रग्रहादुन्मार्गिण उन्मार्गगतस्य । ब्राह्मणस्यानापदि शस्त्रग्रहणं निषिद्धमिति शस्त्रग्राहिणोऽस्योन्मार्गगामित्वमेतेन व्यक्तमेव । क्षत्राय क्षत्रियायोचितां संक्षयमयीं क्षत्रसंहारात्मिकां तीक्ष्णतां प्रखरतां संक्षेपेण शीघ्रं निवार्य आकर्णं कर्णान्तिमायतं दीर्घं चाकृष्टो यश्चापस्तद्रूपेण कुटिलेन भ्रूभङ्गेन संसर्गिणा सम्बद्धेन येनान्यायस्य निषेधिनी ब्राह्मी स्थितिः ब्राह्मणमर्यादा भार्गवाय प्रदिष्टोपदिष्टा सोयं राम इत्याशयः ॥

औचित्यम्प्रतिपादयति—अत्रेति । शुकः सारणश्च राणस्यानुचरविशेषस्ताभ्यां दूरत एव निर्दिश्यमानस्य रामस्य निस्संरम्भोऽनायासो गम्भीरश्चावष्टम्भ आक्रमणन्तेन सम्भाव्यमानो यः प्रभावस्तदनुरूपा या ब्राह्मणोचितकार्य-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

म्प्रति परशुरामप्रवर्तनक्षमता सा न क्रोधजन्यवास्तवभ्रूभङ्गेन प्रदर्शिताऽपितु कर्णपर्यन्तमायताकृष्टतया वक्रेण चापेनैवेति वर्णनमेतदुचितम्। वास्तवभ्रूभङ्गे हि रामे क्रोधजविकारप्रदर्शनात्तस्य महत्त्वं व्याहन्येत। न हि महापुरुषाः सत्यपि क्रोधादिजन्यविकारे तम्प्रकटयन्ति। वस्तुतस्तेषु विकार एव न जायते। तदेवमनायासेनैव महावीरभार्गवशामकतया प्रधाननायकस्य रामभद्रस्योत्कर्षोऽपि सूचित एव। प्रतिनायकापकर्षवर्णनं हि नायकोत्कर्षसूचकत्वेन प्रसिद्धमेव। तदत्र रौद्ररसोद्भावनमौचित्यपूर्णमिति ग्रन्थाशयः॥

वीररसौचित्य का उदाहरण मेरी नीतिलता का यह पद्य है—

"ये वही अन्यायनिवारक राम हैं जिन्होंने कर्णपर्यन्त अत एव पूर्णरूपेण ताने गए अपने धनुपरूपी वक्र भ्रूभङ्ग द्वारा भगवान् शङ्कर को भी अपनी शूरता से प्रसन्न कर लेने वाले एवम् शस्त्र-ग्रहण कर कुमार्ग मे प्रवृत्त मुनि परशुराम की क्षत्रियोचित संहारकारिणी ओजस्विता को शीघ्र ही दूर कर उन्हें शमपूर्ण ब्राह्मणोचित कर्त्तव्य में प्रवृत्त करा दिया है॥"

शुक एवं सारण नामक दो रावण के अनुचरों ने दूर से ही राम को देखकर यह बात रावण से कही है। इसमे अनायास गम्भीर आक्रमण से सम्भावित प्रभाव के अनुरूप राम की उस अलौकिक शक्तिशालिता का वर्णन करना अभीष्ट है जिससे उन्मार्गप्रवृत्त एवं शङ्कर को भी शौर्य द्वारा प्रसन्न करने वाले परशुराम भी ब्राह्मण मार्ग पर शीघ्र आ जाते हैं। किन्तु कवि ने उक्त शक्तिशालिता का वर्णन करने के लिए सामान्य जन मे स्वभावतः जो क्रोधजन्य भ्रूभङ्गरूपी विकार हो जाता है उसका राम मे अस्तित्व नहीं बतलाया है, अपि तु आकर्णाकृष्ट धनुष को ही भ्रूभङ्ग—आरोपित भ्रूभङ्ग—मान लिया है। अन्यथा राम की अलौकिक शक्तिशालिता प्रमाणित नहीं होती। वास्तविक वीर में कभी क्रोधादिजन्य विकार उत्पन्न नही होते। वीर का चरित तो उज्ज्वल, रोचक एवं धैर्यसम्पन्न होता है। इस प्रकार राम में आरोपित भ्रूभङ्ग का वर्णन कर कवि ने उनकी महत्ता को अक्षुण्ण बनाए रखा है। यही उचित भी है राम जैसे महान् पुरुष की वीरता के वर्णन के लिए। साथ हीं, राम का यह उत्कर्ष प्रतिनायक परशुराम के अपकर्ष के वर्णन से भी स्पष्ट है। अतः यह वीररस का वर्णन समुचित है॥

यथा वा राजशेखरस्य—

स्त्रीणां मध्ये सलीलं भ्रमितगुरुगदाघातनिर्नष्टसंज्ञः
सद्यो वध्योऽभवस्त्वं पशुरिव विवशस्तेन राज्ञाऽर्जुनेन।
तस्य च्छेत्तापि योऽसौ सकलनृपरिपुर्जामदग्न्यो भुजानां
जित्वोच्चैः सोऽपि येन द्विज इति न हतस्तापसस्त्वेष रामः॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र रावणकार्तवीर्यजामदग्न्योत्कर्षोत्कर्षतरसोपानपरम्पराधिरोहणक्रमेण प्रधाननायकस्य प्रतापः परां कोटिमारोपितः ॥

वीररसौचित्यस्योदाहरणान्तरमाह—**यथा वेति ।**

स्त्रीणामिति । स्त्रीणां मध्य एव भ्रमिताया गुर्व्या गम्भीराया गदाया आघातेन निर्नष्टा विनष्टा संज्ञा चेतना यस्य तथाविधस्त्वं रावणो येनार्जुनेन कार्त्तवीर्यार्जुनेन राज्ञा विवशः पशुरिव सद्यस्तत्कालमेव सलीलमनायासं वध्योऽभवस्तस्यापि राज्ञो भुजानां च्छेत्ता योयं सकलनृपरिपुः क्षत्रकुलसंहर्त्ता जामदग्न्यः परशुरामः सोऽप्युच्चैः प्रकटं जितोपि द्विजत्वेन निमित्तेन येन न हतः सोयं तापसो रामः । द्विजस्यावध्यत्वं धर्मशास्त्रसम्मतम् ।

स्त्रीणां मध्य इत्यनेन रावणस्यापमानातिशयः सूच्यते । अत्र च प्रथमद्वितीयचरणयोः—

सद्यो वध्योऽभवस्त्वं भ्रमितगुरुगदाघातनिर्नष्टसंज्ञः ।
स्त्रीणां मध्ये सलीलं पशुरिव विवशो येन राज्ञार्जुनेन ॥

इति पाठेऽर्थलाघवं स्यात् ? एवमेव चतुर्थचरणान्ते **तापसस्त्वेष रामः** इत्यत्र **तापसस्सैष रामः** इति पठनीयम् । तृतीयचरणेपि पदन्यासो नातीवाह्लादकः ॥

अस्मिन् पद्ये रावणापेक्षयार्जुनस्य तदपेक्षया जामदग्न्यस्य तदेपक्षयापि रामस्योत्कर्षातिशयस्य वर्णनेन प्रधाननायकस्य (रामस्य) प्रतापातिशयः प्रतिपादित इत्यौचित्यमत्र वीररसस्येत्याह—**अत्रेति ॥**

वीररसौचित्य का दूसरा उदाहरण है राजशेखर का यह पद्य—

"जो कार्तवीर्यार्जुन स्त्रियों के बीच अपनी प्रचण्ड गदा के आघात से तुझे बेहोस कर के अनायास ही विवश पशु के समान तत्त्वण मार रहा था उसकी भी हजार भुजाओं को काट देने वाले क्षत्रियकुलसंहारक परशुराम को जिन्होंने सब के समक्ष जीत कर भी ब्राह्मण जान कर नहीं मारा था वही तपस्वी राम ये हैं ॥"

इस पद्य में रावण से कार्त्तवीर्यार्जुन का, उससे परशुराम का तथा उनसे भी रामचन्द्र का क्रमिक उत्कर्षातिशय का वर्णन कर प्रधान नायक (राम) के प्रताप को कवि ने पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। अतः इस वर्णन में वीररस का औचित्य स्पष्ट है ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नतु यथा भवभूतेः—

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्तताम्

युद्धं स्त्रीदमनेऽप्यखण्डयशसो लोके महान्तो हि ते ।

यानि त्रीणि कुतोमुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधने

यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुदमने तत्राप्यभिज्ञो जनः ॥

अत्राप्रधानस्य रामसूनोः कुमारलवस्य परप्रतापोत्कर्षासहिष्णोर्वीररसोद्दीपनाय सकलप्रबन्धजीवितसर्वस्वभूतस्य प्रधाननायकगतस्य वीररसस्य ताडकादमनखररणापसरणान्यरणसंसक्तवालिव्यापादनादिजनविहितापवादप्रतिपादनेन स्ववचसा कविना विनाशः कृत इत्यनुचितमेतत् ॥

अत्रैव प्रसङ्गाद् वीररसानौचित्योदाहरणमाह—न त्विति ।

वृद्धा इति । रामं प्रशंसन्तं चन्द्रकेतुं प्रति लवस्येयमुक्तिः । ते वृद्धा रामादयो विचारणीयचरिता आलोचनीयचरित्रा न तिष्ठन्तु मा भूवन्, यतो हि सुन्दस्य स्त्रियास्ताडकाया दमनेऽप्यखण्डं यशो येषां तथाविधा एते लोके महान्तो महापुरुषा एव । इयमाक्षेपपूर्णोक्तिः, स्त्रीवधस्यानुचितत्वात् । यानि त्रीणि कुतोमुखानि विक्षिप्तानि पराङ्मुखानि पदानि खरेणासुरेण युद्धे तेषामासन् यच्च कौशलमिन्द्रसूनोर्वालिनो दमने वधे तत्रापि तद्विषयेऽपि जनोऽभिज्ञ एव । खरेण युध्यन् रामश्चापकर्षणार्थं पदत्रयं पश्चाद् गत्वा तं जघानेति कथा । युद्धे च पश्चाद्गमनमनुचितं वीराणाम् । एवमेव सुग्रीवेण सह युध्यन्तं वालिनं वृक्षे निलीय रामो जघानेत्येतदपि न वीरोचितम् । तदेवं जघन्याचरणस्य रामस्य विषये यानि कान्यपि प्रशंसावचनानि तानि सर्वाण्यपि वस्तुतोऽप्रशंसार्थान्येवेति तानि सर्वाणि तिष्ठन्तु, नास्माभिस्तद्विषये किमपि वक्तव्यम् । अतो युद्धमेवावयोर्वर्तताम् प्रवर्त्तताम्, तत्रैव च निर्णयः कर्त्तव्य इति भावः । अत्र पद्ये 'हुम्' इति भर्त्सने (=निन्दायां) वर्त्तते । तथा च वैजयन्ती—**आमन्त्रणे भर्त्सने हुम्** इति । वितर्क इति व्याख्यानं तु प्रकृतानुपयोगि ॥

अत्र रामनिष्ठवीररसवर्णनेऽनौचित्यमुपपादयति—**अत्रेति** । नाटकेऽस्मिन्नुत्तरचरिते रामो नायक इति तस्योत्कर्षः साक्षात् परम्परया वा वीरप्रतिनायकापकर्षादिवर्णनेन प्रतिपादनीयः । परन्त्वत्र कविना रामस्य तथा निन्दा लवमुखेन कारिता येन तस्य शौर्यंन्नितरामपकर्षं प्रापितमित्यनौचित्यम् विद्यते

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लवनिष्ठवीररसवर्णनेऽस्मिन् । लवनिष्ठशौर्यवर्णनमत्र प्रसङ्गे कृतं कविना न नायकोत्कर्षानुरूपमिति तात्पर्यम् ॥

किन्तु भवभूति के निम्नोद्धृत पद्य में वीररस का वर्णन औचित्यपूर्ण नही है—

"हूँ! रामचन्द्र के वारे में तूँ यें वातें मत कह! वे वृद्ध हैं, अतः उनके आचरणों की आलोचना नहीं करनी है! वे तो ऐसे महापुरुष हैं जिन्होने ताडका की हत्या कर इस लोक में अपनी अखण्ड कीर्त्ति स्थापित कर ली है! राक्षस खर के साथ युद्ध करते समय वे जो तीन पग पीछे हट गये थे तथा वालिवध के समय उन्होंने जैसी शूरता दिखलाई थी उन सब से भी लोग सुपरिचित हैं॥"

इस पद्य में दूसरों के प्रताप को वर्दास्त न कर पाने वाले रामतनय लव के वीररस के उत्कर्ष का प्रतिपादन करने के लिए कवि ने लव द्वारा रामकृत ताडका-वध, खर के साथ युद्ध के समय तीन पग पीछे हटने एवम् सुग्रीव के साथ लड़ते हुए वालि के वृक्ष की ओट में छिप कर हनन का वर्णन करवा कर प्रमुख नायक रामचन्द्र की वीरता पर पानी फेर दिया है। अतः लवनिष्ठ वीररस का यह वर्णन अनुचित है॥

भयानके यथा श्रीहर्षस्य—

कण्ठे कृत्तावशेषं कनकमयमधः शृङ्खलादाम कर्षन्
क्रान्त्वा द्वाराणि हेलाचलचरणरणत्किङ्किणीचक्रवालः।
दत्तातङ्कोऽङ्गनानामनुसृतसरणिः संभ्रमादश्वपालैः
प्रभ्रष्टोऽयं प्लवङ्गः प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरायाः॥

अपि च—

नष्टं वर्षवरैर्मनुष्यगणनाभावादकृत्वा त्रपा-
मन्तः कञ्चुकिकञ्चुकस्य विशति त्रासादयं वामनः।
पर्यन्ताश्रयिभिर्निजस्य सदृशं नाम्नः किरातैः कृतं
कुब्जा नीचतयैव यान्ति शनकैरात्मेक्षणाशङ्किनः॥

अत्राङ्गनानां निशितदशननखशिखोल्लेखातङ्कदानेन प्रचुरतर-वानराभिसरणभयसंभ्रान्तान्तःपुरिकवृद्धवामनकिरातकुब्जादीनां पुरुष-गणनाविहीनतया धैर्यविरहकातराणामुचितचेष्टानुभाववर्णनया भयान-करससंवादिरुचिरौचित्यमाचकास्ति॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधुना भयानकरसौचित्यस्योदाहरणमाह—**भयानक इति।**

कण्ठ इति। पशुशालातोऽन्तःपुरं प्रविष्टस्य वानरस्य वर्णनमिदम्। प्रभ्रष्ट उन्मुक्तवन्धनोयम् वारोऽश्वपालैरनुसृतसरणिः कृतानुगमनोऽपि तैरनिवद्धतया मन्दुरायाः पशुशालाया द्वाराणि क्रान्त्वा कण्ठे निवद्धं कृत्तस्य स्वदन्तैश्छिन्नस्यावशेषमवशिष्टं कनकमयं सुवर्णनिर्मितं शृङ्खलादाम वन्धनरज्जुमधः कर्षन् दन्तैरिति शेषः। पशवो हि भग्नावशेषं कण्ठस्थं रज्जुं दन्तादिभिरधःकर्षन्ति तत्त्रोटनायेति प्रसिद्धम्। हेलया लीलयोत्प्लुत्योत्प्लुत्य गच्छतोस्य चलौ यौ चरणौ तयो रणच्छब्दायमानं किङ्किणीचक्रवालं क्षुद्रघण्टिकाकुलं यस्यासौ। किञ्चाङ्गनानां दत्त आतङ्को येनासौ वित्रासितयुवतिजनः प्लवङ्गो वानरोयं नृपतेर्मन्दिरं प्रविशति। अत्र मन्दुराशब्दस्य वाजिशालार्थकत्वेपि तत्र वानरबन्धनस्यायुक्ततया यथाकथञ्चिदस्य पशुशालार्थकत्वं कल्प्यम्। एवमेवाश्वपालशब्दविषयेऽपि वोध्यम्॥

एवं प्रविष्टेन्तःपुरं वानरे तत्रस्थानां सम्भ्रमं कीदृशमिति वर्णयति कविः—**नष्टमिति।** तदानीं सम्भ्रमेणान्तःपुरस्थैर्वर्षवरैः क्लीवैस्तत्त्वादेव मनुष्येषु स्त्रीषु पुरुषेषु वा गणनाया अभावात् कारणात् त्रपां लज्जामकृत्वैव नष्टं लीनम्। **णश अदर्शने** इति धातोर्भावे क्तः। तथा च तेऽदृश्या अभूवन् भयात्प्लवङ्गस्य तस्य। वर्षवरः क्लीवः। **षण्डो वर्षवरः समौ** इति वैजयन्ती। अत्र **अपास्य त्रपाम्** इत्यपपाठः, तथाहि सति तेषु लज्जासद्भावप्रतिपत्तेरनुभवापलापः स्यात्। अत्र मनुष्यगणनाभावादित्यस्य वामनान्तःप्रवेशादिकारणत्वेन स्वीकारेपि न क्षतिः। तथाच सति पदस्यास्य हीनमनुष्यत्वादिति तात्पर्यं कल्प्यम्। वामनश्चान्तःपुरस्थस्त्रासाद् वानरस्य भयात्कञ्चुकस्यान्तर्विशति। कञ्चुकं हि दीर्घमायतं चेति तत्र वामनप्रवेशः संगत एव। तत्रस्थैः किरातैश्च पर्यन्तं प्रान्तदेशमाश्रयन्तीति तैः पर्यन्तभूमिं गतैर्निजस्य किरातेतिनाम्नः सदृशं यथानामर्थं कृतम्। किरं प्रान्तभूमिमतति गच्छतीति किरातशब्दस्य योगार्थः। अन्तःपुरप्रविष्टप्लवङ्गत्रासाच्च तेऽन्तःपुरं परित्यज्य प्रान्तदेशमाश्रितवन्त इति तैः स्वनामानुरूपं कर्माचरितम् इति तात्पर्यम्। कुब्जाश्चान्तःपुरस्था आत्मेक्षणविषयाशङ्किनः सन्तः शनकैर्मन्दं मन्दं नीचतयैव स्वशरीरं नम्रतरीकृत्यैव यान्ति॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्लीववामनकिरातकुब्जाद्याश्चान्तःपुरसहायकाः। तदुक्तं विश्वनाथेनान्तःपुरसहायान् प्रकृत्य—

वामनषण्डकिरातम्लेच्छाभीराः शकारकुब्जाद्याः॥ इति॥

अत्र च प्रक्रमभङ्गायेत्थं पठनीयम्—

नष्टो वर्षवरो मनुष्यगणनाभावादकृत्वा त्रपा-
मन्तः कञ्चुकिकञ्चुकस्य विशति त्रासादयं वामनः।
पर्यन्ताश्रयणात् स्वनामसदृशं कार्यं किरातो व्यधा-
दात्मावेक्षणसाध्वसाच्च शनकैः कुब्जोपि नीचैर्गतः॥ इति।

अपरश्चात्र भयानकस्य प्रकान्तत्वेपि नष्टमित्यादिपद्यश्रवणेन श्रोतॄणां हास्यमेव जायते न भयम्। क्लीवादिनिष्ठस्य भयस्यापि रसपर्यवसानं सन्दिग्धमेव। द्वित्राणां परदुःखदुःखिनां सहृदयानां हृदये तु भयसञ्चारो भवेत्॥

औचित्यम्प्रतिपादयति प्रकृते—**अत्राङ्गनानामिति**। निशितयोस्तीक्ष्णयोर्दशननखशिखयोर्दन्तनखाग्रयोरुल्लेखेन य आतङ्को भयं तत्प्रदानेन। प्रचुरतरेण वानरसञ्चरणजन्यभयेन संभ्रान्तानामाकुलानामन्तःपुरिकाणामन्तःपुरस्थानां वृद्धवामनकिरातकुब्जादीनां धैर्यविरहेण कातराणां सत्पुरुषेषु गणनाभावाद् या भयोचिता चेष्टा सैवानुभावस्तद्वर्णनया भयानकसम्वादि तदनुरूपं रुचिरमौचित्यमा समन्ताच्चकास्ति। अत्र निशितदशनादीनामुल्लेखो ग्रन्थकृदुल्लिखितो मूले क्वेति न विद्मः। एवमेव वामनादिभिः सह वृद्धस्योपात्तस्य कुत आगमः कश्चार्थ इत्यपि नावगच्छामः। वर्णनस्योपलक्षणत्वेपि तत्स्वाभाव्यादत्र वृद्धपदेन कञ्चुकिनो ग्रहणन्त्वसम्भवमेव। शकारादीनामन्तःपुरसहायकानां ग्रहणेन वा कथञ्चित् सङ्गतिर्विधेया॥

भयानकरसौचित्य का उदाहरण श्रीहर्ष की रत्नावली के निम्नोद्धृत पद्य हैं—

"बन्धन टूट जाने या काट दिए जाने के कारण पशुशाला के द्वारों का उल्लंघन कर बाहर निकला हुआ वह वानर अपने गले में लटकती टूटी हुई रस्सी को नीचे की ओर खींचता हुआ राजभवन की ओर भागे जा रहा था। उस समय उसके उछलते पैरों में बन्धे घुंघरू झनझना रहे थे। पशुपालक उसका पीछा कर रहा था पर वह पकड़ में नहीं आया। अन्ततः वह राजभवन में घुस हीं गया जिससे वहाँ की अङ्गनाएँ भयभीत हो उठीं॥"

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और भी,

"उस समय अन्तःपुर में रहने वाले हिजड़े कहीं छिप रहे थे। इसमे उन्हें लज्जा तो होती नहीं थी, क्योंकि यह तो मनुष्य—स्त्री या पुरुष—को हीं होती है जब कि हिजड़े इनसे परे होते। वहाँ जो वौने थे वे भी डर से कञ्चुकियों के कञ्चुक में घुसकर अपने को छिपा रहे थे। जो किरात थे वे भी एक किनारे भाग कर अपने नाम को सार्थक (किर=प्रान्तभूमि=एक किनारे, अत=जानेवाला=घूमने वाला) सार्थक कर रहे थे और जो कुबड़े थे वे तो और अधिक ढुक्क कर चल रहे थे ताकि उन्हें वह वानर देख न ले॥"

इन पद्यों में अन्तःपुर की अङ्गनाओं के उस वानर के तीखे कटकटाते दाँत और नाखूनों से आतङ्कित होने एवं उसके (वानर के) आजाने से अत्यधिक भयभीत एवं धैर्यहीन वौनों, किरातों एवं कुबड़ों की, जिनकी गणना मनुष्यकोटि में नहीं होती, भगदड़ के वर्णन से भयानकरसौचित्य स्पष्ट ही दिखाई देता॥

नतु यथा राजपुत्रमुक्तापीडस्य—

नीवारप्रसराग्रमुष्टिकवलैर्यो वर्धितः शैशवे
पीतं येन सरोजपत्रपुटके होमावशेषं पयः।
तं दृष्ट्वा मदमन्थरालिवलयव्यालोलगल्लं गजं
सानन्दं सभयञ्च पश्यति मुहुर्दूरे स्थितस्तापसः॥

अत्र गजस्याघातकविकृतचेष्टानुवर्णनाविरहिततया स्थायिभावस्य भयानुभाववर्जितस्य केवलं नाममात्रोदीरणेन च भयानकरसोचित-संभ्रमाभावादुपचितमौचित्यं न किंचिदुपलभ्यते॥

अधुना भयानकरसानौचित्यमुदाहरति—न त्विति।

नीवारेति। यो वन्यो गजश्शैशवे तापसेन पूर्वं मुष्टिपरिमितैः मुष्टिस्थितैर्वा नीवारसमूहकवलैर्ग्रासैर्वर्धितः पोषितः। अग्रेत्यनेन ग्रासस्य कोमलत्वं सूच्यते। स्नेहातिशयेन लोकः कोमलघासं मुष्टौ समादाय पशुना खादयतीति प्रसिद्धम्। येन च गजेन तापसेन सरोजपत्रनिर्मिते पुटके न्यस्तं होमावशेषं पयो जलं पीतम्। पीतमित्यत्रान्तर्भावितो ण्यर्थः। पायितमित्यर्थः। तापसश्चात्र प्रयोजकः कर्त्ता। णिचोऽप्रयोगेण प्रयोज्यकर्तुर्गजात्तृतीयापि संगतैव। एवं व्याख्याने तापसस्य गजेऽनुरक्तत्वं प्रतीयते। अन्यथाव्याख्याने त्वेतन्नैव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रतीयेत, स्वतः पानस्य वलादपि सम्भवात्। तमेव दानवारिणा मन्थरो योऽलिवलयो मधुकरसमूहस्तेन व्यालोलं चञ्चलं गल्लं गण्डस्थलं यस्य तथाविधं गजं दृष्ट्वा दूरे स्थितस्तापसः सानन्दं स्वपालितत्वात् सभयं चोन्मत्तत्वान्मुहुः पश्यति ॥

अत्रानौचित्यमुपपादयन्नाह—अत्रेति। आधातक-विकृतचेष्टाया भयानुभावभूताया वर्णनाभावात् प्रकृते भयं न रसत्वं भजते, विभावानुभावसञ्चारिणां संयोगेनैव रसनिष्पत्तेरिति ग्रन्थार्थः॥

अत्रेदं चिन्तनीयम्— प्रकृतपद्येऽनौचित्यप्रदर्शनं मुधैव ग्रन्थकृतः। नह्यत्र रसपर्यन्तं परिपक्ष्यमाणस्य भयस्य वर्णनं कवेरभिप्रेतम्, तथा सति कथं सानन्दमितिसमुच्चितं स्यात्? क्षणं सानन्दं क्षणान्तरे च सभयं क्रमव्युत्क्रमाभ्यां तं परिपालितमुन्मत्तं च गजं तापसः पश्यतीति केवलं कवेर्वर्णनीयम्। आनन्दमिश्रस्य भयस्य रसत्वं तु न कुत्रापि श्रुतमनुभूतं वा साक्षात्। दूरस्थितत्वरूपोनुभावोपि वर्णित एवात्र। वर्णनं चैतत्स्वाभाविकं सहृदयाह्लादकं चाग्रहमात्रेण दूषयन् ग्रन्थकृन्नूनमात्मनोऽसूयामात्रमुपपादयति। यत्र त्वापाततोऽनौचित्यसम्भाना "(तं गजं) दृष्ट्वा (तमेव) पश्यति" इति तत्र नास्य चित्तं विचिकित्सतेऽपीत्याश्चर्यमेव। यद्यपि चात्रोभयत्र दर्शनक्रिययोः सूक्ष्मतर्कपरिकल्प्यो विशेषः शक्यते वक्तुं तथाप्येवंविधं वर्णनं न कवित्वपक्षे वर्त्तत इत्युपेक्ष्यमेव यत्नतः। कथञ्चिद् द्वितीयां दर्शनक्रियामस्तिसमानार्थकां पूर्वदर्शनक्रियानुरोधेनाभ्युपेत्य समाधानमपि नातीव मनोहारीत्यलं प्रपञ्चेन॥

किन्तु राजपुत्र मुक्तापीड़ के निम्नोद्धृत पद्य में भयानकरसौचित्य नहीं है—

"इस गज को इसी तपस्वी ने इसकी बाल्यावस्था में मुट्ठी भर-भर तिन्नी की कोमल घास खिलाकर पाला है तथा अपने होम से अवशिष्ट जल पुड़इन के पत्ते के दोने में भर कर पिलाया है। अब तो प्रौढ़ावस्था में इसके गण्डस्थल से मद चूने लगा है और इसके ऊपर बैठे भौरे निश्चल होकर रस पी रहे हैं। अतः वही तपस्वी आज आनन्द एवं भय दोनों के साथ इस गज को दूर रह कर ही देख रहा है॥"

इस पद्य में भयानक रस के स्थायिभाव भय का तो उल्लेख है किन्तु इसमें कहीं भी अनुभाव रूप में आघातकारक विकारयुक्त चेष्टा का वर्णन नहीं है। अतः ऐसी स्थिति में भयानक रस का कुछ भी औचित्य नही है॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बीभत्से यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

सर्वापायचयाश्रयस्य नियतं कुत्सानिकायस्य किं
कायस्यास्य विभूषणैः सुवसनैरानन्दनैश्चन्दनैः ।
अन्तर्यस्य शकृद्यकृत्कृमिकुलक्लोमान्त्रमालाकुले
क्लेदिन्यन्तदिने प्रयान्ति विमुखाः कौलेयकाका अपि ॥

अत्र वैराग्यवासनाच्छुरितबीभत्सरसस्य जुगुप्सास्थायिभावोचित-कायगतकुत्सिततरान्त्रादिसमुदीरणेन परा परिपुष्टिर्निःसारशरीराभिमानवैरस्यजननी प्रतिपादिता ॥

सम्प्रति बीभत्सरसौचित्यमुदाहरति—बीभत्स इति ।
सर्वापायेति । यस्यास्य कायस्य शरीरस्य क्लेदिनो घर्माप्लुतस्यान्तेऽन्तोपलक्षिते दिने, मृत्योरनन्तरमिति तात्पर्यम् । शकृद् विष्ठा, यकृत् पाचनयन्त्रम् प्लीहा, कृमीणां कुलम् , क्लोमोदरस्थं जलस्थानं तिलकम् , आन्त्राणां लघुदीर्घाणां च मालया समूहेनाकुले सङ्कीर्णे व्याप्ते वाह्याभ्यन्तरे विषये कौलेयाः श्वानः काकाश्च विमुखाः सन्तस्ततोन्यतः प्रयान्ति तस्य सर्वेषामपायानां दोषाणां निचयस्याश्रयस्य कुत्साया निन्दाया निकायस्यास्पदस्य संस्थानस्य विभूषणैः केयूरादिभिरलङ्कारैः सुवसनैः चीनांशुकादिभिरानन्ददायिभिश्चन्दनैश्च किम् ? न किमपि फलम् इति भावः ॥
अत्रौचित्यमुपपादयति—अत्रेति । च्छुरितं मिश्रितम् । जुगुप्सा स्थायी भावो बीभत्सस्य । तदनुरूपं कायगतकुत्सिततरशकृदादिवर्णनमस्य रसत्वापादने समर्थम् ॥

बीभत्सरसौचित्य का उदाहरण मेरी मुनिमतमीमांसा का यह पद्य है—

"यह शरीर तो मल, प्लीहा, क्लोम (जलस्थान), कीड़ों और अँतड़ियों से ऐसा भरा है तथा पसीने से इतना गन्दा होता है कि मरने के बाद कुत्ते और कौवे भी इससे विमुख होकर दूर भाग जाते हैं। इस प्रकार सभी दोषों के आकर तथा सर्वदा निन्दनीय इस शरीर को अलङ्कारों, अच्छे वस्त्रों तथा आकर्षक चन्दनादि द्वारा सजाने से क्या लाभ है !"

इसमें जो (बीभत्सरस के) स्थायिभाव जुगुप्सा के अनुरूप शरीरगत अत्यन्त निन्दनीय अँतड़ी आदि का वर्णन किया गया है उससे वैराग्य की वासना से मिश्रित बीभत्सरस की निःसार शरीर के प्रति आत्मत्वाभिमान से विमुखता

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का प्रतिपादक परिपूर्णता प्रकट होती है। अतः यह वीभत्सरस का वर्णन समुचित है॥

न तु यथा चन्द्रकस्य—

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलः
क्षुधाक्षामो रूक्षः पिठरककपालार्दितगलः।
व्रणैः पूतिक्लिन्नैः क्रिमिपरिवृतैरावृततनुः
शुनीमन्वेति श्वा तमपि मदयत्येष मदनः॥

अत्राशुचिचर्वणरुचेरुपचितविचिकित्सकुत्सानिकायस्य स्वभावजुगुप्सितयोनेः शुनकस्य क्रिमेतैर्बीभत्सविशेषणैरतिशयनिर्बन्धानुबद्धैरधिकमुद्भासितम्। एतैरेव पुरुषगतैर्जुगुप्सापरं गौरवमावहति॥

प्रसङ्गाद् वीभत्सरसानौचित्यं निदर्शयति—न त्विति।

कृश इति। कृशो दुर्बलः काण एकाक्षः, खञ्जो विकलैकपादः, श्रवणरहितः श्रवणेन्द्रियेण हीनः श्रोतुमशक्तः, पुच्छविकलश्छिन्नपुच्छः, क्षामो मलिनः, रूक्षः कर्कशशरीरः शुष्कः, पिठरककपालार्दितगलः पिठरकः स्थालीवज्जातमध्यगर्त्तः कपालो यस्य स चार्दितगलश्च पीडितकण्ठश्च। पूतिक्लिन्नैर्दुर्गन्धयुक्तैः क्रिमिपरिवृतैश्च कीटपरिपूर्णैश्च व्रणैरावृता व्याप्ता तनुर्यस्य तथाविधोऽपि श्वा कुक्कुरः शुनीं सम्भोगायान्वेत्यनुगच्छति। येन तथाविधमपि श्वानं मदनो मदयति कामातुरं करोति तेन कामदेवस्याद्भुतत्वं सूच्यते॥

अत्रानौचित्यम्प्रदर्शयति—**अत्रेति**। अशुचेरपवित्रवस्तुनो भक्षणे रुचिर्यस्याशुचये वा रुचिर्यस्य। उपचिता विचिकित्साऽऽश्चर्यं यत्र तादृशीनां कुत्सानां निकायस्य तादृशनिन्दासमूहात्मकस्य। वस्तुतस्तु '**अपचितविचिकित्सकुत्सानिकायस्य** इत्येवात्र पठनीयम्। तथाच अपचिता निर्गता विचिकित्सा संशयो यासु कुत्सासु इत्यादिरीत्या व्याख्याय निर्विचिकित्सकुत्सासमूहात्मकस्येति भावो वर्णनीयः, शुनः कुत्सितत्वे कस्यापि संशयाभावात्। स्वभावत एव जुगुप्सिता निन्दिता योनिर्यस्य तथाविधस्य च कुक्कुरस्य सम्बन्धिभिरुक्तैरतिशयेन निर्बन्धेनाग्रहेणानुबद्धैः कृशादिविशेषणैर्न किमपि सामान्यजनानुभवविषयादधिकं शुनो विषये कविना प्रकटीकृतमिति व्यर्थान्येवैतानि विशेषणानि रसविरोधीनि। यदि त्वेतान्येव जुगुप्सापराणि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशेषणानि कस्यचन पुरुषस्य दीयेरन् तर्हीमान्युपकारकाणि रसपरिपाके भवेयुरनुभवाधिकविषयप्रकाशकत्वादिति प्रकृतप्रबन्धार्थः ॥

किन्तु चन्द्रक कवि के निम्नोद्धृत पद्य में वीभत्सरसौचित्य नहीं है—

"यह कुत्ता दुर्बल, काना, लंगड़ा, बहरा, पुच्छहीन, भूख से व्याकुल एवं सूखा हुआ है। इसका माथा (जीर्णता के कारण) धँस गया है और गला भी सूख चुका है। इसके सारे शरीर पर दुर्गन्धयुक्त घाव भरे पड़े हैं जिनमें कीड़े उत्पन्न हो गए हैं। फिर भी काम की कैसी विचित्र वासना होती कि यह कुतिया के पीछे मैथुन के लिए दौड़ ही रहा है।"

जिसकी अभक्ष्य का भक्षण करने में ही रुचि होती, जिसके निन्दित होने में किसी को कोई सन्देह नहीं और जिसकी योनि (वर्ग) स्वभाव से ही घृणित है उस कुत्ते के लिए वीभत्सानुकूल उक्त विशेषणों का कवि ने जो अत्यन्त आग्रहपूर्वक निर्देश किया है उससे वर्णन में कोई नवीनता नहीं आती। हाँ, यदि ये ही वीभत्सव्यञ्जक विशेषण किसी मनुष्य के लिए प्रयुक्त हुए होते तो निश्चित हीं ये वीभत्सरसपरिपाक में उपयोगी होते। किन्तु कवि ने इनका प्रयोग एक कुत्ते के लिए किया है। इससे स्पष्ट है कि यहाँ वीभत्स का जो वर्णन कवि ने किया है वह अनुचित है॥

अद्भुते यथा चन्द्रकस्य—

कृष्णेनाम्ब ? गतेन रन्तुमधुना मृद् भक्षिता स्वेच्छया
सत्यं कृष्ण ? क एवमाह ? मुसली, मिथ्याम्ब ? पश्याननम्।
व्यादेहीति विकासितेऽथ वदने दृष्ट्वा समस्तं जग-
न्माता यस्य जगाम विस्मयपदं पायात्स वः केशवः ॥

अत्र पाण्डुराङ्करसाक्षिलक्षितमृद्भक्षणाक्षेपोद्यतजननीभयचकितस्यापह्नवकारिणः शिशोर्विकासितास्यस्यान्तः समस्तजगद्दर्शनेन मातुश्च तत्प्रभावानभिज्ञतया वात्सल्यविह्वलाया विस्मयगमनेनात्युचितोऽयमद्भुतातिशयः ॥

इदानीमद्भुतरसौचित्यं दर्शयति—अद्भुत इति।

कृष्णेनेति। हे अम्ब ? मातः ? रन्तुं क्रीडितुं गतेन कृष्णेनाधुना स्वेच्छया मृद् भक्षितेति बलरामेणोक्ता यशोदा कृष्णं पृच्छति—कृष्ण ? सत्यमेव त्वया मृत्तिका भक्षितेति। ततः कृष्णो मातरं पृच्छति—मया

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मृद् भक्षितेति क आह ? यशोदा ततः कथयति—मुसली वलराम इति। ततः कृष्णो ब्रवीति—अम्ब ? एतन्मिथ्यैव, ममाननं मुखं पश्येति। ततश्च यशोदा प्राह—व्यादेहि स्वमुखम् इति। एवमम्बयोक्तेन येन कृष्णेन स्वमुखे विकासिते यशोदा तस्मिन् समस्तमेव जगद् दृष्ट्वा विस्मिताऽभवत्स केशवः कृष्णो वो युष्मान् पायाद् रक्षेत् ॥

अत्रौचित्यं प्रतिपादयति—**अत्रेति**। पाण्डुराणि धूसराण्यङ्गानि कराश्चैव साक्षिणस्तैर्लक्षितं यन्मृद्भक्षणं तस्याक्षेपेऽभियोग उद्यतायाः प्रवृत्ताया जनन्या यशोदाया भयेन चकितस्यातएव मृद्भक्षणाभियोगापह्नवकारिणो वालकृष्णस्य विकासिते मुखे समस्तजगदवलोकनेन वात्सल्येन विह्वलाया द्रवीभूताया मातुस्तस्य श्रीकृष्णस्य प्रभावं ज्ञातुमशक्ताया यद् विस्मयानुभवनं तेनायमद्भुतो रस औचित्यातिशयं गच्छति। अतिशयश्चात्र स्वाभाविकत्वमेव विस्मयगमने यशोदायाः ॥

अद्भुतरसौचित्य का उदाहरण तो कवि चन्द्रक का ही यह पद्य है—

"वलराम द्वारा लगाए गए अभियोग का परीक्षण करते समय जिन कृष्ण के मुँह के भीतर त्रैलोक्य के दर्शन कर यशोदा विस्मित हो उठी थी वह कृष्ण आप सब की रक्षा करें। अभियोग तथा परीक्षण इस प्रकार है—एक दिन वलराम ने यशोदा से कृष्ण के विरुद्ध यह शिकायत की—अरी माँ, देख, कृष्ण ने तो आज खेलते समय खूब मिट्टी खाई है। इस पर यशोदा ने कृष्ण से पूछा—क्या यह बात सही है ? कृष्ण ने प्रतिप्रश्न किया—किसने ऐसा कहा है ? यशोदा ने उत्तर दिया—(मुसलधारण करने वाले) वलराम ने। यह सुन कर कृष्ण ने सफाई दी—मेरी माँ, यह एकदम झूठ है, ले मेरा मुँह देखले। तब यशोदा ने उनसे कहा—फैला अपना मुँह, देखूँ तो सही। तब कृष्ण ने अपना मुँ फैला दिया। उनके मुँह के अन्दर यशोदा ने जब झाँका तो उन्हें उसमें मिट्टी के वजाय सारा ब्रह्माण्ड दिखाई पड़ा। इससे यशोदा आश्चर्यचकित हो उठी॥"

इस पद्य मे यह कहा गया है कि कृष्ण के धूलि-धूसरित अङ्गों एवं हाथों से ज्ञापित मिट्टी खाने के अभियोग के सत्यापन के लिए माँ यशोदा जब उद्यत हो गई तो वालकृष्ण घबड़ा गए और सत्य को छिपाने लग गए। इस पर यशोदा ने उन्हें मुँह खोलने का आदेश दिया, क्यों कि वह उनके प्रभाव को नही जानती थी। उस आदेश का पालन करने के लिए कृष्ण ने अपना मुँह फैला दिया। जब उसके अन्दर वात्सल्य से द्रवित यशोदा ने झाँका तो उन्हें उसमें सारा विश्व

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिखलाई पड़ा जिससे वह विस्मित हो उठी। इसमें अद्भुत रस का जो वर्णन है वह अत्यन्त उचित है॥

न तु यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

समस्ताश्चर्याणां जलनिधिरपारः सवसति-
स्ततोऽप्याश्चर्यं यत्पिबति सकलं तं किल मुनिः।
इदं त्वत्याश्चर्यं लघुकलशजन्मापि यदसौ
परिच्छेत्तुं को वा प्रभवति तवाश्चर्यसरणिम्॥

अत्रापारसरित्पतिप्रभावेण मुनिना तस्यैकचुलकाचमनेन मुनेश्च लघुकलशजन्मना क्रमाक्रान्तिसमारूढोऽप्यसमविस्मयमयोऽयमद्भुतप्रसरः संसारस्यैवंविधैवाश्चर्यसरणिरपरिच्छिन्ना न किंचिदेतत्कौतुकमित्यर्थान्तरन्याससामर्थ्येन सहसैवावरोपित इव तिरोभूततामुपगतः॥

प्रसङ्गागतमद्भुतरसानौचित्यं प्रदर्शयन्नाह—न त्विति।

समस्तेति। एकतस्तु स प्रसिद्धोपारोऽनन्तो जलनिधिरेव समस्तानामाश्चर्याणां वसतिर्निधानम्, इदन्तु ततोप्याश्चर्यतरं यज्जलनिधिमपि मुनिरगस्त्यः सकलं निःशेषं पिबतीति। एतत्तु परमाश्चर्यम् यदसौ सकलसमुद्रशोषकोऽगस्त्यो लघुकलशजन्मा क्षुद्रकुम्भोत्पन्न इति। हे विभो? तवाश्चर्यसरणिमाश्चर्यपरम्परां परिच्छेतुं विमातुं याथातथ्येन परिज्ञातुं कः प्रभवति! न कोपीत्यर्थः। अपरिमेया हि परमेश्वरस्याश्चर्यपरम्परा॥

अस्मिन् पद्ये समुद्रागस्त्यतत्कलशजन्मत्वेष्वाश्चर्यतारतम्यवर्णनेनानुपमविस्मयात्मकस्याद्भुतस्योदये जातेऽपि चतुर्थचरणन्यस्तेनार्थेन संसारगताश्चर्यपरम्पराया अपरिमेयत्वेन पूर्वस्मिन्नाश्चर्यतारतम्ये न किमपि कौतुकमवशिष्यत इति प्रकृतो विस्मयो न रसपर्यन्तगामीत्याह—अत्रेति। अर्थान्तरन्यासश्चतुर्थचरणे पद्यस्यालङ्कारभूतः। अवरोपितोस्तमितः। शेषं स्पष्टम्॥

किन्तु मेरी मुनिमतमीमांसा के निम्ननिर्दिष्ट पद्य में अद्भुतरसौचित्य नहीं है—

"एक तो यह विख्यात अपार सागर हीं सभी आश्चर्यों का निधान है, परन्तु इससे भी आश्चर्य यह है कि मुनि अगस्त्य इसे चुल्लू में ही भर कर पी गए। यह तो सब से अधिक आश्चर्य है कि वे अगस्त्य एक छोटे घट से उत्पन्न हुए थे। हे परमेश्वर? तुम्हारे आश्चर्यों की परम्परा को कोई पूर्णरूपेण नहीं जान सकता!"

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस पद्य में अपार सागर के प्रभाव, मुनि अगस्त्य द्वारा चुल्लू में भर कर उसे पी जाने तथा अगस्त्य का भी एक छोटे कलश से उत्पन्न होने में आश्चर्यों का क्रमिक तारतम्य वर्णित होने से यद्यपि पहले तो अद्वितीयविस्मयकारी अद्भुत रस का प्रसार (उदय) होता हुआ प्रतीत होता तथापि चतुर्थचरण में जो अर्थान्तर-न्यास द्वारा यह कह दिया गया है कि परमेश्वररचित इस संसार की आश्चर्य-परम्परा की इयत्ता का निर्धारण किसी के वश का काम नहीं, इससे वह अद्भुत रस एकाएक अस्तमित-सा होकर तिरोभूत हो गया है। अतः यह औचित्यपूर्ण वर्णन नहीं है॥"

शान्ते यथा मम चतुर्वर्गसंग्रहे—

भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं वित्तेऽग्निभूभृद्भयं
दास्ये स्वामिभयं गुणे खलभयं वंशे कुयोषिद्भयम्।
माने म्लानिभयं जये रिपुभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं नाम भवे भवेद्भयमहो वैराग्यमेवाभयम्॥

अत्र सकलजनाभिमतभोगसुखवित्तादीनां भयमयतया हेयतां प्रतिपाद्य वैराग्यमेव सकलभयायासशमनमुपादेयतया यदुपन्यस्तं तेन शान्तरसस्य निरर्गलमार्गावतरणमुचिततरमुपदिष्टं भवति॥

एतावता प्रबन्धेन शृङ्गाराऽद्भुतान्तेषु रसेषु प्रायेण सर्वेषां सम्प्रतिपत्ते-स्तेषामौचित्यं प्राङ्निरूपितम्। इदानीं विप्रतिपन्नशमस्थायिभावात्मकशान्त-रसौचित्यमुदाहरति सर्वान्ते—**शान्त इति**।

भोग इति। भोगे रोगस्य भयम् वर्त्तते, भोगस्य भोक्तर्यतिभोगप्रयोजक-तयाऽन्ते रोगसम्भावनायाः सत्त्वाद् रोगस्य क्षयाख्यस्यावश्यम्भावाद् वा। सर्वो हि भोगः कामपर्यवसायी, अतिशयकामुकस्य क्षयरोगावश्यम्भावात्। सुखे क्षयस्य भयम्, विषयसम्प्रयोगजन्यत्वात्तस्य। न हि किमपि भावरूपमुत्पन्नं सन्नित्यं भवितुमर्हति। **अपाम सोममम्ृता अभूम** इत्यादौ श्रुतममृतत्व-मपि कल्पान्तस्थायित्वमेव।

आभूतसंप्लवं स्थानममृतत्वं हि भाष्यते॥ इत्यादिविष्णुपुराणा-दिवचनेभ्यः। वित्ते धनेऽग्नेर्भूभृतश्च भयम्। वित्तं कदाचिदग्निना दह्यते कदाचिच्चात्मापराधाद्राज्ञा, अधार्मिकत्वे तु नृपस्यात्मापराधाभावेपि तदप-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ह्रियत एव । एतच्चोपलक्षणम् चौरादिकृतापहरणभयस्यापि । दास्ये स्वामिनो भयम्, सेवाधर्मस्यातिगहनत्वेन स्वामिकोपस्य प्रतिपदं सम्भवात् । गुणे खलस्य भयम् । खला हि गुणमपि दोषपक्षे निक्षिपन्ति स्वभावत एवेति प्रसिद्धम् । वंशे कुयोषितां व्यभिचारादिदोषदुष्टानां स्त्रीणाँ भयम् । माने म्लानेर्विनाशस्य भयम् । मानं हि प्रायेण न चिरस्थायि । जये रिपुभयम् । जयो हि रिपौ सति न निश्चितः । काये शरीरे कृतान्ताद् यमाद् भयम् । यमो हि प्राप्ते काले न कमपि त्यजति । तदेवं भवे जगत्यस्मिन् सर्वमेव वस्तु भयाक्रान्तमेव । अहो इत्यव्ययं जगतो भयाक्रान्तत्वेन खेदव्यञ्जकम् । अभयं पुनरेकमेव वैराग्यमतो विवेकी पुरुषस्तदेवाश्रयेदिति तात्पर्यम् ॥

अस्मिन् पद्ये सकलानां वस्तूनां भयाक्रान्तत्वेन हेयत्वं निर्भयतया वैराग्यमात्रस्योपादेयत्वं च प्रतिपादयन् कविरौचित्येन शान्तरसमुपपादयतीत्याह—अत्रेति । गद्यबन्धो व्याख्यातप्रायः ॥

"इस संसार में यदि निर्भय कोई तत्त्व है तो एकमात्र वैराग्य ही, अन्य सब कुछ तो भयाक्रान्त ही हैं, क्योंकि भोग करने पर रोग का, सुख मिलने पर उसके अन्त का, धन रहने पर अग्नि एवं राजकोप आदि से उसके अपहरण का, नौकरी करने पर मालिक का, गुण होने पर दुष्टों द्वारा उसकी अन्यथाव्याख्या का, कुलीन होने पर भी व्यभिचारिणी आदि स्त्रियों का, मान प्राप्त होने पर भी भविष्य में उसके विघटित होने का, जय के सन्दर्भ में शत्रु का और शरीर के बारे में यमराज (मृत्यु) का भय तो बना ही रहता है ॥"

इस पद्य में कविने आपाततः जनप्रिय भोग, सुख एवं धन आदि के भयाक्रान्त होने से उन्हें हेय कह कर सब प्रकार के भयों का शमन करने वाले वैराग्य को ही उपादेय कहा है। इससे शान्त रस के अवतरण (अभिव्यक्ति) के लिए कवि ने मार्ग प्रशस्त कर दिया है। अतः यहाँ शान्तरसौचित्य है ॥"

यथा वा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

कुसुमशयनं पाषाणो वा प्रियं भवनं वनं
प्रतनु मसृणस्पर्शं वासस्त्वगप्यथ तारवी ।
सरसमशनं कुल्माषो वा धनानि तृणानि वा
शमसुखसुधापानक्षैब्ये समं हि महात्मनाम् ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र सकलविकल्पतल्परहिताभेदावभाससमानात्मतत्त्वविश्रान्तिजनितसर्वसाम्यसमुल्लसितशमसुखपीयूषपानोदितनित्यानन्दाघूर्णमानमानसानां प्रियाप्रियसुखदुःखादिषु महतां सदृशी प्रतिपत्तिरिति जीवन्मुक्तिसमुचितमहितम् ॥

अस्यैवोदाहरणान्तरमाह स्वकीयमुनिमतमीमांसातः—**यथेत्यादिना ।**

कुसुमशयनमिति । शमः शान्तिरेव सुधा तत्पानेन क्षैव्य उन्मादे सति । यदा केचन विवेकिनः शमसुधारसास्वादनेन परित्यक्तविषयसंसर्गा भवन्ति तदेति भावः । एतेनैषां जीवन्मुक्तत्वं सूचितं भवति । महात्मनां सर्वमेव समम्, न क्वापि रागो वा द्वेषो वा जायते तेषाम् । तथाहि तेषां कुसुमशयनं कुसुममयी कोमलपुष्पमयी शय्या वा भवेत् पाषाणः शिलाखण्डं वा न कोपि विशेषः । एवमेव प्रियं भवनम्वा स्यान्निवासाय वनं वा, तेषामविशेष एव । प्रतनु सूक्ष्मसूत्रमयं मसृणस्पर्शं कोमलस्पर्शं वासो वस्त्रं वा भवेत् परिधानम्, तारवी तरुसम्बन्धिनी त्वग् वल्कलं वा, सरसं स्वाद्वशनं भोजनं वा स्यात् कुल्माषो नीरसो वा पदार्थो भोज्यं स्यात् , धनानि प्रचुराणि महार्घाणि वा स्युस्तृणानि निःसाराणि तृणादीनि वा स्याद्दद्याद्वा तेभ्यः कोपि, तेषान्तु निर्विशेषतैव भवति । न चापाततः प्रिये तेऽनुरक्ता न वाऽप्रिये प्रद्विष्टा भवन्ति । यद्यपि जीवन्मुक्तानां न वास्तवं शयनभोजनादिं तत्रानुरागाद्यभावात् ; **स चक्षुरचक्षुरिव** इत्यादिश्रुतेश्च तथापि शरीरयात्रार्थं यत्तेषामाचरणं तदृष्टचेदं वर्णनम्वोध्यम् ॥

उपपादयत्यौचित्यमत्र—**अत्रेति ।** सकलानां विकल्पानां भेदज्ञानानां तल्पेन शय्ययाऽऽश्रयेण रहितो योऽभेदावभासोऽद्वैतबोधस्तत्समानन्तदभिन्नं यदात्मतत्त्वं सच्चिदानन्दरूपं तत्र या विश्रान्तिः प्रतिष्ठा तज्जनितं यत्सर्वसाम्यं सर्वैकत्वम् । अद्वयात्मसाक्षात्कारेण **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** इति स्थितौ सर्वत्रैकत्वमेव निरस्तसमस्तप्रपञ्चमाभातीति वेदान्तसिद्धान्तः । तेन सर्वैकत्वेन समुल्लसितं यच्छमसुखं शमप्रयुक्तं सुखं तदेव पीयूषममृतं तस्य पानेनोदितो यो नित्यानन्दस्तेनाऽघूर्णमानं स्थिरं मानसं येषाम् महताम् । अत्र **घूर्णमानम्** इत्यसङ्गतः पाठः । तथाविधानां जीवन्मुक्तत्वेनात्मतत्त्वबोधान्महतां पुरुषाणां प्रियाप्रिययोः सुखदुःखयोरादिपदान्मानापमानादिद्वन्द्वयोः सदृशी प्रतिपत्तिर्वर्णि-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेति शान्तरसौचित्यमत्र स्पष्टमेव। द्वन्द्वसहिष्णुता चैतेषां श्रुतिस्मृतिसिद्धैव। तथा च श्रुतिः- **अशरीरं वावसन्तं प्रियाप्रिये न स्पृशतः** इति। स्मृतिश्च—

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ॥ इत्याद्या।

अत्र विवरणवाक्ये बह्वपार्थं प्रजल्पितं ग्रन्थकृता। अधिकं सुधीभिर्विवेचनीयम् ॥

शान्तरसौचित्य का दूसरा उदाहरण मेरी मुनिमतमीमांसा का यह पद्य है—

"शमजन्यसुखस्वरूप सुधा के पान से मुग्ध (विषयसम्पर्कशून्य) महात्माओं (जीवन्मुक्त पुरुषों) के लिए सब कुछ समान ही हो जाता। उन्हे शयनार्थ चाहे पुष्पमयी शय्या मिले या पाषाणखण्ड, परिधान के रूप में चाहे बारीक एवं कोमल वस्त्र मिले या वल्कल, खाने के लिए कोई स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ मिले या स्वादहीन पदार्थ, कोई धन दे या तृण, उनके लिए कोई अन्तर नही पड़ता ॥"

इस पद्य में यह कहा गया है कि जीवन्मुक्त महापुरुषों को आत्मसाक्षात्कार स्वरूप नित्यानन्दानुभूति होने से सब कुछ आत्मस्वरूप ही दिखाई पड़ता। फलतः उन्हें प्रिय-अप्रिय, सुख-दुख आदि में कोई भेद नही प्रतीत होता। इससे स्पष्ट है कि यहाँ जो शान्त रस का वर्णन किया गया है वह अत्यन्त उचित है[1] ॥

नतु यथा श्रीमदुत्पलराजस्य—

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा
मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्ति दिवसाः
क्वचित्पुण्यारण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः ॥

अत्र जीवन्मुक्तोचितं प्रियाप्रियरागद्वेषोपशमलक्षणमोक्षक्षमं सर्वसाम्यमहिहारसुहृदरिसमदृष्टिरूपमभिदधता क्वचित्पुण्यारण्ये यदभिहितं तद्विकल्पप्रतिपादमभेदवासनाविरुद्धमनुचितमवभासते। धाराधिरूढसर्वसाम्यविगलितभेदाभिमानग्रन्थेर्हि सर्वत्र सर्वं शिवमयं पश्यतस्तपोवने नगरावस्करकूटे च विमलात्मलाभतृप्ततया समानदृशः क्वचित्पुण्यारण्यादिवचनमनुचितोच्चारणमेव ॥ १६ ॥

---

१. इसमे ग्रन्थकार के अनावश्यक वाग्जाल का शब्दशः अनुवाद न कर केवल भावानुवाद किया गया है। शब्दार्थ के लिए संस्कृत टीका द्रष्टव्य है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शान्तरसौचित्यं प्रतिपादयति—**न त्विति** ।

अह्राविति । अहौ सर्पे, हारे माल्ये, बलवति प्रबले रिपौ शत्रौ, सुहृदि मित्रे, मणौ, लोष्टे मृत्खण्डे, कुसुमशयने, दृषदि शिलायाम्, तृणे घासादौ, स्त्रैणे स्त्रीणां समूहे वा समदृशः समानख्यातेर्मम क्वचित् पुण्यैरण्ये 'शिव शिव शिव' इति प्रलपतो जपतो दिवसा यान्ति व्यतियन्ति । इष्टाशंसनमिदं कस्यचिज्जीवन्मुक्तस्य ॥ अत्र **यान्ति** इत्येव पाठः, जीवन्मुक्तेन विद्यमानायाः स्वावस्थायाः परामर्शात् । **यान्तु** इति पाठस्त्वयुक्त एव; तादृशदिवसगमने रतेः प्रतीयमानत्वेन तत्प्रधानभावध्वनित्वापत्तेः ॥

अत्र पद्ये पुण्यारण्ये शिवशिवेति जपतो मम दिवसा यान्तीति कथनेन पुण्यापुण्यारण्ययोर्भेदबोधसद्भावसूचनमभेदवासनाप्रतिकूलं प्रतिपादयन् कविर्विरक्ते पुरुषे जीवन्मुक्तत्वं प्रतिषेधन्निव प्रतीयमानोऽनुचितमेव शान्तरसं प्रतिपादितवानित्याशयेनाह—**अत्रेति** । धाराधिरूढेत्यादिवाक्यं पूर्ववाक्यस्यैव विवरणम् । धाराधिरूढम् निरवच्छिन्नं प्रवहमानं यत्सर्वसाम्यं तेन विगलिताभिमानग्रन्थिर्यस्य तस्य । नगरावस्करो नगरस्थो विष्ठा तदालयो वा तत्रत्यः । शेषं स्पष्टम् ॥

"चाहे सर्प हो या माला, प्रबल शत्रु हो या मित्र, मणि हो या ढेला, पुष्पमयी शय्या हो या पाषाणशिला, घास हो या स्त्रियों की मण्डली, मेरे लिए कोई अन्तर नहीं पड़ता। मेरी एक मात्र अभिलाषा यही है कि मेरे दिन किसी पुण्य वन (तपोवन) में 'शिव शिव' का जप करते हुए बीत जाँय ॥"

इस पद्य में एक ओर तो प्रिय वस्तु में अनुराग और अप्रिय से विद्वेष का जिसमें अन्त हो जाता है उस मोक्ष के प्रसाधक जो सर्प-माला एवम् शत्रु-मित्र आदि में समत्वबुद्धि है उसका वर्णन किया गया है किन्तु दूसरी ओर यह भी कहा गया है कि 'मेरे दिन किसी पुण्यवन में···बीत जाँय।' इससे पुण्यवन तथा अन्य स्थान के बीच भेदबोध स्पष्ट है। यह अभेदभावना का विरोधी होने से अनुचित है। निरन्तर प्रवहमान समत्वबोध से भेद-भ्रम के दूर हो जाने से जिसे सर्वत्र शिव ही शिव दिखाई पड़ता हो—जो समत्वबोधसम्पन्न पुरुष सर्वत्र, चाहे वह तपोवन हो या गाँव का पाखाना, विशुद्ध आत्मतत्त्व का ही अवलोकन कर अलौकिक आनन्द में निमग्न हो उसके विषय में 'मेरे दिन किसी पुण्य वन में······' ऐसा भेदप्रतिपादक वर्णन अत्यन्त अनुचित है॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथा मधुरतिक्ताद्या रसाः कुशलयोजिताः ।
विचित्रास्वादतां यान्ति शृङ्गाराद्यास्तथा मिथः ॥ १७ ॥
तेषां परस्पराश्लेषात्कुर्यादौचित्यरक्षणम् ।
अनौचित्येन संस्पृष्टः कस्येष्टो रससङ्करः ॥ १८ ॥

यथा रसाः कटुकमधुराम्ललवणाद्याः कुशलसूदेन वेसवारपानादिषु योजिता विचित्रास्वादतामुपयान्ति तथैव परस्परमविरुद्धाः शृङ्गारादय इति तेषामन्योन्यमङ्गभावयोजनायामौचित्यस्य जीवितसर्वस्वभूतस्य रक्षां कुर्यात् । अनौचित्यरजसा रससंयोगः स्पृष्टो न कस्यचिदभिमत इत्यर्थः ॥

एतावता प्रबन्धेन शुद्धरसौचित्यं प्रतिपाद्य युग्मकेन रससङ्करौचित्यं प्रसङ्गात्प्रतिपादयन्नाह—यथेति ।

यथा मधुरतिक्ताद्या रसा मिथोन्योन्यं कुशलैर्योजिताः कुशलं योजिता वा मिश्रिताः प्रपाणकादौ विचित्रास्वाद-विषया भवन्ति लोके तथैव शृङ्गाराद्या रसा अपि काव्ये मिथो योजिताः सन्तो विचित्रास्वादविषया भवन्ति सचेतसाम् ॥

तेषामिति । तेषां शृङ्गारादिरसानां परस्पराश्लेषादन्योन्यसम्मिश्रणात् कविरौचित्यसंरक्षणं कुर्यात् । अनौचित्येन संस्पृष्टस्तु रससङ्करः कस्य सचेतस इष्टः स्यात् ? न कस्यापीति भावः । अत्र परस्पराश्लेषे कुर्याद्... इति पाठः श्रेयान् ॥ १७-१८ ॥

कारिके स्वयमेव विवृणोति—रसा इति । कुशलसूदेन निपुणेन पाचकेन । वेशवार उपस्करो व्यञ्जनसम्बन्धी हिङ्ग्वादिः 'मसाला' इति लोके प्रसिद्धः । विशेषस्त्वत्रोक्तः—विंशतिः पलानि हरिद्रायाः, दश पलानि शुद्धजीरकस्य, सार्धद्वयपलानि मेथिकायाः । एतच्चतुष्टयं भर्जितमेव । त्रीणि पलानि मरिचस्य, अर्धपलं रामठस्य । एतत्सर्वमेकत्र संयोज्य निर्मित उपस्करो (मसाला) वेशवार इति । तत्रेतरत्र च पानादिषु पेयादिविषयेषु 'पना' इत्यादिषु योजिता मिश्रिताः कटुकाद्याः षड् रसाः विचित्रास्वादयुक्ता भवन्ति तथैव काव्ये परस्परमविरुद्धाः शृङ्गारादयो रसाः । एतेषामङ्गाङ्गिभावेन योजनायामौचित्यस्य कवी रक्षां कुर्यात् । अनौचित्यस्य रजसा लेशमात्रेणापि सन्निवेशो न कस्यचिदभिमतः सहृदयस्य ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिस प्रकार मसाले तथा पेय आदि पदार्थों में मधुर-तिक्त आदि छः रसों से युक्त तत्त्वों का कुशलतापूर्वक संयोजन खाद्य पदार्थ को अत्यधिक स्वादिष्ट बना देता है उसी प्रकार शृङ्गारादि नौ रसों का काव्य में निपुण समावेश काव्य को अत्यन्त मनोहारी बना देता है। अतः कवि को चाहिए कि वह अपने काव्य में शृङ्गारादि रसों में से किसी या किन्ही को अङ्ग एवं किसी एक को अङ्गी रस के रूप में समाविष्ट करते समय औचित्य का पालन करे, क्योंकि उक्त रसों के सन्निवेश में थोड़ा भी अनौचित्य किसी सहृदय को अच्छा नहीं लगता ॥ १७-१८ ॥

जिस तरह मसाले तथा पेय पदार्थों में कुशल पाचक द्वारा कटु आदि रसों से युक्त तत्त्वों का उचित मात्रा में सन्निवेश किए जाने पर खाद्य पदार्थ बहुत स्वादिष्ट हो जाते हैं उसी तरह काव्य में कवि द्वारा शृङ्गारादि रसों का कुशलतापूर्वक सन्निवेश किए जाने पर काव्य भी सहृदयों के लिए बहुत ही आह्लादक हो जाता है। अनेक रसोंका एक काव्य में समावेश करने पर उन रसों में अङ्गाङ्गिभाव होगा ही। अतः कवि को चाहिए कि इन रसों में अङ्गाङ्गिभाव की स्थापना करते समय औचित्य का पूर्ण ध्यान रखे, क्योंकि यही तो काव्य की आत्मा है। यदि इसमें थोड़ा भी अनौचित्य हो जाता तो तद्युक्त काव्य सहृदयाবर्जक नहीं हो पाता ॥

रससङ्करौचित्ये शान्तशृङ्गारयोरङ्गाङ्गिभावो यथा भगवतो महर्षेर्व्यासस्य—

सत्यं मनोरमा रामाः सत्यं रम्या विभूतयः।
किन्तु मत्ताङ्गनापाङ्गभङ्गिलोलं हि जीवितम् ॥

अत्र भगवता जन्तुहिताभिनिविष्टेन मोक्षक्षमोपदेशोऽङ्गिनः शान्तरसस्य रागिजनानिष्टत्वात्सकलजनमनःप्रह्लादने वालगुडजिह्विकया शृङ्गारेऽङ्गभावमुपनीते पर्यन्ते शान्तस्यैव लोलं जीवितमित्यनित्यताप्रतिपादनपरिनिर्वाहेण परमौचित्यमुच्चैः कृतम् ॥

रससङ्करौचित्यमुदाहरति—रससङ्करेति।

तत्र पूर्वं शान्तशृङ्गारयोरङ्गाङ्गिभावौचित्यमुदाहरति—रससङ्करेति। [sic]

सत्यमिति। रामाः कामिन्यो मनोरमा इति सत्यम्। एवमेव विभूतय ऐश्वर्याण्यपि विविधानि रम्याणीत्यपि सत्यमेव। किन्तु मनुष्याणां जीवनमेव यदा मत्ताया यौवनोन्मादयुक्ताया अङ्गनाया अपाङ्गस्य भङ्गवत्कटाक्षवल्लोलं चञ्चलं विनश्वरमस्थायि तदा कामिन्यादीनां कियत्कालपर्यन्तमुपभोगः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्भवेदिति विनिश्चित्य विवेकिभिरात्मचिन्तन्तमेव क्रियते तस्यात्मनो निरतिशयानन्दरूपत्वेनानन्तत्वात् । अत्र **भङ्गलोलम्** इति पाठः श्रेयान् ॥

अत्राङ्गाङ्गिभावस्यौचित्यमुपपादयति—**अत्रेति** । जन्तुहितान्यभिनिविष्टेन बद्धादेरण भगवता व्यासदेवेन प्रथमतो रागिजनानुकूलतया पूर्वार्द्धे शृङ्गारवर्णनं कृतं येनात्र तेषां रागिणां झटित्याकर्षणं स्यात् । ततश्च यथा गुडं भक्षयित्वा शिशोः कर्णच्छेदनं तत्संस्कारार्थं क्रियते तथैव रागिणामुपकारायोत्तरार्धे जीवनं क्षणिकं वर्णयता शान्तरसः प्रतिपादितः । प्रथमत एव शान्तरसवर्णने तु रागिप्रतिकूलत्वात्तस्य नोपदेशम्प्रति रागिण आकृष्टाः स्युः । अतश्चात्र शृङ्गारस्याङ्गत्वेन शान्तस्य चाङ्गित्वेन प्रतिपादनं नितान्तमुचितम् इति सन्दर्भार्थः ॥

अत्रेदं विवेचनीयम्—सामान्यतः शृङ्गारशान्तयोरङ्गाङ्गिभावो न घटते, उभयोर्विरुद्धत्वात् । परन्तु प्रकृते विरुद्धयोरप्यनयोरङ्गाङ्गिभाव उक्तो ग्रन्थकृता । अत्र हेतुश्चानेन विनेयानामुन्मुखीकरणमेवेति वर्णितम् । इदमेव मतं ध्वनिकारस्यापि । तथा च तेनोक्तम्—

> विनेयानुन्मुखीकर्तुं काव्यशोभार्थमेव वा ।
> तद्विरुद्धरसस्पर्शस्तदङ्गानां न दुष्यति ॥ इति ।

अस्यायमाशयः—शृङ्गारो हि संसारिणां नियमेनानुभवविषय इति सर्वरसानां कमनीयतमः । अत एव च केचन शृङ्गारमात्रमेव रसमामनन्ति । तथा चोक्तम्—

> शृङ्गारवीरकरुणाद्भुतरौद्रहास्य-
> वीभत्सवत्सलभयानकशान्तनाम्नः ।
> आम्नासिषुर्दशरसान् सुधियो वयन्तु
> शृङ्गारमेव रसनाद्रसमामनामः ॥ इति ।

तथा च शृङ्गारेणोन्मुखीकृता विनेयाः सुखं विनयोपदेशं गृह्णीयुरितिबुद्ध्या महर्षिणा प्रथमतोऽत्र पूर्वार्द्धे शृङ्गारस्यालम्वनविभावो **रामा** इत्यनेनोद्दीपनविभावश्च **विभूतय** इत्यनेन वर्णितः । उत्तरार्धे च शान्तरसस्यालम्वनविभावो जीवनलौल्यम् (= जीवनानित्यत्वम्) इति वर्णितम् । अत्र शृङ्गारस्यालम्बनोद्दीपनविभावौ शान्तरसविरुद्धावपि तात्पर्यविषयीभूतत्वाच्छान्तस्य

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तद्विभावं पुष्णीत एव, विनेयोन्मुखीकरणार्थमेतयोर्गुडजिह्विकान्यायेनोपनिबन्धात् । यदप्युत्तरार्धे मत्ताङ्गनापाङ्गभङ्गस्य शृङ्गारानुकूलस्योपमानतयोपादानं तदपि शान्तविभावेऽतिशयबोधकतया तस्यैवोपकारि । एवं विनेयानुग्रहार्थत्वेनानयोरविरोधः ॥

काव्यशोभाकरत्वेनाप्यविरोधोऽनयोरत्र बोध्यः । तथा हि—सकलमनोभिरामस्य शृङ्गारस्य काव्ये समावेशस्तच्छोभातिशयपोषकः । शोभातिशयश्चात्रोपमादिरलङ्कारो लोकोत्तरचमत्कारो वा । यथा हि शरीरेऽभिरामाणामङ्गानां समावेशे तत्र शोभातिशयो जायते तथैव काव्येऽपीति ॥

अत्रेदं चिन्तनीयम्—स्वातन्त्र्येणाभिरामस्याङ्गस्य हस्तपादादेरविरुद्धस्य शरीरे समावेशेन तस्य शोभातिशयो जायते । प्रकृते तु शृङ्गारस्य स्वातन्त्र्येणाभिरामत्वेपि शान्तविरुद्धतया शान्तेन सहाङ्गतया समावेशे कथं काव्यशरीरे शोभातिशयः ? **सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्** इतिरीत्या समावेशोपि नेष्टं साधयितुमलम्, शैवलस्य सरसिजाविरुद्धत्वात् । उभयनिष्ठं परस्परविरुद्धं रूपद्वयमादाय शैवलसरसिजयोर्विरोधोपि दुर्घट एव, रूपद्वयस्य सामानाधिकरण्ये सत्येव विरोधात् । येपि नव्याः—

> **लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः ।**
> **श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ॥**

इत्यादिशास्त्रानुरोधेन समानावच्छेदेनैव सामानाधिकरण्येपि रूपद्वयस्य विरोधमिच्छन्ति तन्मतेनाप्यत्र नाञ्जसा निर्वाहः कर्तुं शक्यः, काव्यशरीरेऽधिकरणतावच्छेदकविभाजने क्लेशातिशयात् । तथापि पूर्वार्द्धत्वादिकं कथञ्चित्तत्त्वेनोरीकृत्य प्रकृते समाधेयमित्यलं प्रपञ्चेन ॥

प्रकाशकृतस्तु शान्तशृङ्गारयोर्विरुद्धत्वेन नैरन्तर्याभावात् प्रकृते न विनेयोन्मुखीकरणं समावेशप्रसाधकम्, नवा काव्यशोभातिशयः, चित्रकाव्यादावलङ्कारमात्रेणैव तथात्वे प्रसिद्धे प्रकृतेपि मत्ताङ्गनापाङ्गभङ्गेत्यनुप्रासमात्रेण तत्प्रयोजनोपपत्तेरिति मन्वानाः पूर्वार्द्धे शृङ्गारस्य बाध्यत्वेनैवोपादानविषयत्वममन्यन्त । मत्ताङ्गनेत्यादेस्तु जीवितास्थैर्यातिशयप्रतिपादनार्थमुपमानतयोपादानम् ततः शृङ्गारानुकूलानुभावाद्यप्रतीत्या न शृङ्गारप्रत्यायकत्वमपितु

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवने लौल्यातिशयप्रतिपादकतया शान्तपोषकत्वमेवेत्यपि तेषां मतम् । तथा चाहुः—

सञ्चार्यादेर्विरुद्धस्य बाध्यत्वोक्तिर्गुणावहा ॥ इति ।

यथा च प्रतिनायकपराभवादिवर्णनं नायकस्योत्कर्षसूचकन्तथैवात्रापि विप्रतीपश्रृङ्गारस्य बाध्यत्वेनोपस्थापनं शान्तरसस्योत्कर्षाधायकम् । बाध्यत्वं चात्रार्थगम्यमेव । यद्वा सत्यमित्यर्धाङ्गीकारार्थकस्यान्ततो निषेध एव पर्यवसानाच्छ्रौत एवात्र बाधो बोध्यः ॥

रससङ्करौचित्य के सन्दर्भ में श्रृङ्गार एवं शान्त रसों के अङ्गाङ्गिभाव का उदाहरण महर्षि व्यास का यह पद्य है—

"कामिनियाँ आकर्षक होती हैं यह सत्य है, और यह भी सत्य है कि विभूतियाँ (ऐश्वर्य) बहुत ही रमणीय होतीं। किन्तु जब जीवन ही यौवनोन्मत्त रमणियों के कटाक्ष के समान चञ्चल (अस्थिर) है तो फिर कामिनी आदि के पीछे पड़ना व्यर्थ है। इसे छोड़कर मनुष्य को आत्मचिन्तन ही करना चाहिए, तभी वास्तविक आनन्द सम्भव है ॥"

इस पद्य में लोकोपकार की भावना से द्रवित भगवान् व्यास ने मोक्षानुकूल उपदेश के लिए प्रधानीभूत शान्त रस का तो पहले वर्णन नहीं किया है। इसका कारण यही है कि यह रस रागी व्यक्तियों के अनुकूल न होने से उन्हें प्रथमतः आकृष्ट करने में समर्थ नहीं है। अतः जैसे कान छेदने के पूर्व बच्चों को गुड़ खिलाया जाता है उसी प्रकार रागासक्त व्यक्तियों को उपभोग से विमुख तथा अध्यात्ममार्ग के प्रति उन्मुख करने के लिए महर्षि ने पहले तो श्रृङ्गार का और पीछे शान्त रस का प्रतिपादन किया है। इस प्रकार प्रकृत पद्य में अङ्ग और अङ्गी के रूप में क्रमशः श्रृङ्गार एवं शान्तरस का उपनिबन्ध कर इन्होंने परम औचित्य का प्रकाशन किया है ॥

वीभत्सश्रृङ्गारयोरङ्गाङ्गिभावो यथा मम बौद्धावदानकल्पलतायाम्—

क्षीवस्येवाचलस्य द्रुतहृतहृदया जम्बुकी कण्ठसक्ता
रक्ताभिव्यक्तकामा क्रमति नखमुखोल्लेखमासूत्रयन्ती ।
आस्वाद्यास्वाद्य यूनः क्षणमधरदलं दत्तदन्तव्रणाङ्कं
लग्नानङ्गक्रियायामियमतिरभसोत्कर्षमाविष्करोति ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र श्लेषोपमया तुल्यकक्षाधिरूढयोरपि परस्परविरुद्धयोरर्थयोर्वीभत्सश्रृङ्गाराङ्गाङ्गिभावयोजनायां जम्बुकी तरुणशवस्य क्षीवस्येव निश्चलस्थितेः सहसैव हृतहृदयपद्माकृष्टचित्ता वा, कण्ठे लग्ना शोणिते भृशमभिव्यक्तस्पृहा रक्ताऽभिव्यक्तकामा वा नखोल्लेखमासूत्रयन्ती दत्तदन्तव्रणमधरमास्वाद्यास्वाद्याङ्गच्छेदक्रियायामनङ्गभोगक्रियायां वा, लग्ना गात्राणामूर्ध्वंगतं कर्षणं रतिकौशलोत्कर्षं वा प्रकाशयतीति समानयोर्वीभत्सश्रृङ्गारयोः कामिनीपदपरित्यागेन केवलं जम्बुक्याः कर्तृत्वेन वीभत्सस्यैव प्राधान्ये श्रृङ्गारेऽङ्गतामुपगते वक्तुर्बोधिसत्त्वस्यान्तर्गतगाढवैराग्यवासनाधिवासितचेतसः कुत्सार्हजुगुप्सया नितम्बिनीरतिविडम्बनमौचित्यरुचिरतामादधाति। यद्यप्यत्र महावाक्ये शान्तस्यैव प्राधान्यं तथाप्युदाहरणश्लोकवाक्ये वीभत्सस्यैव ॥

वीभत्सश्रृङ्गारयोरङ्गाङ्गिभावमुपदर्शयति—वीभत्सेति।

क्षीवस्येति। मृतयुवकमांसादिभक्षणपराया जम्बुक्या वर्णनमिदं बीभत्सरसाभिव्यञ्जकम्। अत्र च श्लेषमूलोपमया वीभत्सश्रृङ्गारयोरुभयोरपि प्रतीतिः, तत्र च जम्बुक्याः स्पष्टं निर्देशात् कामिन्याश्च तथाऽभावाद्वीभत्सोऽङ्गी श्रृङ्गारश्चाङ्गमिति विवेकः ॥

क्षीवस्येवोन्मत्तस्येवाचलस्य मृतस्येति बीभत्सपक्षे, कामोद्रेकेणैकस्थानस्थितस्येति श्रृङ्गारपक्षे—यूनो भक्षणाय द्रुतहृतहृदया द्रुतं भक्षणाय हृतं शरीरान्निःसारितं हृदयं ययेति प्रथमपक्षे, द्रुतमुपभोगाय हृतमाकृष्टं हृदयं यया यस्या वेति द्वितीयपक्षे; कण्ठसक्ता कण्ठे सक्ता भक्षणायेति प्रथमपक्षे, आलिङ्गनायेति च द्वितीये; रक्ताभिव्यक्तकामा रक्ते शोणितेऽभिव्यक्तः कामो ययेति प्रथमे, रक्ताऽनुरक्ताऽभिव्यक्तकामा चेति द्वितीये; नखमुखोल्लेखम् शरीरे नखेन मुखेन चोल्लेखं विक्षतमासूत्रयन्ती रचयन्ती भक्षणकाल इति प्रथमे, रतिकाले नखमुखैर्नखाग्रभागैरुल्लेखं विक्षतं (नखक्षतम् इति भावः) रचयन्तीति द्वितीये; इयं जम्बुकी श्रृगाली कमतीच्छति तस्यैवाचलस्य यून इति कर्मणोपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठी। यद्वा युवानमिति कर्माध्याहृत्यार्थोपपादनं कार्यम्। पुनश्चेयं दत्तदन्तव्रणाङ्कं कृतदन्तक्षतं यूनोऽधरदलमास्वाद्यास्वाद्य। जम्बुकी स्वदन्तप्रहारक्षतमधरमास्वाद्य भक्षयित्वा कामिनी च रतिकालिकदन्तक्षतयुक्तमधरं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

-यूनः प्रतिक्षणमास्वाद्य परिचुम्ब्येति विशेषः। प्रतिक्षणं भूयोभूय आस्वादनेन कामातिरेको व्यज्यते। अनङ्गक्रियायाम् सर्वाङ्गभक्षणेन यूनोऽङ्गराहित्यकर्मणि लग्ना जम्बुकी कामिनी चानङ्गक्रियायां रतौ लग्नेति विशेषः। एवंविधेयं जम्बुकी अतिरभसोत्कर्षं हर्षातिशयेनोप्कर्षं शरीरोल्लुञ्चनम्, कामिनी च हर्षा-विशेयनोत्कर्षं कौशलं रतिकर्मण्याविष्करोति ॥

उपपादनप्रकारमाह—**अत्रेत्यादिना**। श्लेषोपमया श्लेषमूलकोपमालङ्कारेण। वस्तुतस्तु विशेषणमात्रस्यात्र श्लिष्टत्वात्समासोक्त्येति वक्तुमुचितम्। अत्र रसद्वयसङ्करे सत्यपि बीभत्सस्य प्राधान्यमुपपादयति—**समानयोरिति**। विडम्बनत्वमुपहासो निन्देति यावत्। एतच्च जम्बुक्युपमानतयाभिप्रेतत्वात् कामिन्या उपपद्यते। उपमानस्य ह्युपमेयातिशायित्वं प्रसिद्धम्। तथा च यदा जम्बुक्यपमेयभूतैवं जुगुप्सिता तदा तदुपमानभूता कामिनी ततोप्यधिकतरं जुगुप्सितेति लभ्यत इत्याशयः। अस्य चौचित्यं वक्तृवैशिष्ट्यापेक्षमित्यभिप्रायेणैव वक्तुर्बोधिसत्त्वस्य विशेणणतयोपात्तं गाढवैराग्यवासनेत्यादि। महावाक्ये काव्ये। शेषं स्पष्टार्थम् ॥

बीभत्स तथा शृङ्गार के अङ्गाङ्गिभावरूप सङ्कर का उदाहरण मेरी अवदान-कल्पलता का निम्नोद्धृत पद्य है—

"यह सियारनी उन्मत्त व्यक्ति के समान अचल (मृत) युवक (के शव) को इतना चाह रही है कि उसके हृदय को शीघ्र हीं बाहर निकाल कर खा चुकी है, उसके रक्त पीने की उत्कट कामना से उसके गले में चिपक गई है और उसके समस्त शरीर को अपने नख एवं मुख अथवा नख के अग्रभाग से खरोच रही है। साथ ही, अपने दातों के प्रहार से क्षत-विक्षत उस युवक के अधरौष्ठ को वारम्वार स्वादपूर्वक खा रही है। इस प्रकार उसके शरीर के सब अङ्गों को ध्वस्त करने में जुटी हुई यह सियारनी अपने हर्षातिरेक को प्रकट कर रही है॥"

इस पद्य में श्लेपमूलक उपमा द्वारा जम्बुकी के साथ-साथ उपमानभूत कामिनी की भी प्रतीति हो रही है, क्योंकि उन्मत्त व्यक्ति के समान अचल, अर्थात् स्थिर, युवक द्वारा कामिनी भी अपने हृदय के शीघ्र आकृष्ट हो जाने से उसमें अनुरक्त हो जाती है एवं प्रकट कामवासना से अभिभूत होकर (रक्ता+अभि-व्यक्तकामा) युवक के गले को अपने बाहुपाश में बान्ध लेती है तथा प्रेमातिरेक से उस युवक के शरीर पर अपने नखक्षतचिह्न उत्पन्न करती हुई (नखमुखोल्लेखमा-सूत्रयन्ती) उससे सम्भोग करना चाहती है। साथ ही, अपने दन्तक्षत से विशिष्ट

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रस युवक के अधरोष्ठ को प्रतिक्षण वारम्वार चूमती हुई रतिक्रिया मे इस प्रकार लीन हो जाती है जिससे उसका हर्षातिरेकपूर्ण रतिकौशल प्रकट होता है। यद्यपि ये दोनों अर्थ परस्पर-विरुद्ध हैं तथापि शब्दस्वारस्यजन्यबोधविषय होने से दोनों हीं समान स्तर के हैं। इससे स्पष्ट है कि इस पद्य में समान रूप से वीभत्स प्रधान—अङ्गी है और शृङ्गार अप्रधान—अङ्ग। यतः इसका वक्ता बोधिसत्त्व है, जिसका चित्त प्रगाढ़ वैराग्यवासना से परिपूर्ण है, अतः जम्बुकी की अतिनिन्दित उपर्युक्त शवभक्षणक्रिया तथा कामिनी की रतिक्रिया के बीच यह उपमा, जो रतिक्रिया को अतिनिन्दित सिद्ध करती है, वक्ता के स्वरूप के अनुरूप होने से अत्यन्त आकर्षक है॥

इस प्रसङ्ग में यह भी ज्ञातव्य है कि अवदानकल्पलता में शान्त रस के प्रधान होने पर भी प्रकृत पद्य में पूर्वोक्त युक्ति द्वारा वीभत्स ही प्रधान रस है॥

वीरकरुणयोर्यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

गाण्डीस्रुवमार्जनप्रणयिनः स्नातस्य वाष्पाम्बुभि-
श्चण्डं खाण्डवपावकादपि परं शोकानलं विभ्रतः।
जिष्णोर्नूतनयौवनोदयदिनच्छिन्नाभिमन्योश्चिरं
हा वत्सेति बभूव सैन्धववधारब्धाभिचारे जपः॥

अत्र त्रिगर्तसंग्रामगतस्य गाण्डीवधन्वनः शत्रुभिर्नवयौवनोदयसमयनिहततनयस्य कार्मुकस्रुवमुन्मार्जयतः प्रसरदश्रुस्नातस्य शोकाग्निमुद्वहतश्चिरं हा पुत्रेति जयद्रथवधारब्धाभिचारे जपो बभूवेति यदुपन्यस्तं तेनारिक्षये दीक्षासमुचितव्रतवर्णनया शोकाग्नेश्चण्डत्वेन खाण्डवपदोदीरणेन वीररसस्याङ्गिनः सहसैवागन्तुके करुणरसे प्रज्वलिते सैन्धववधारब्धाभिचाराभिधानेन पर्यन्ते शौर्यनिर्वाहेण परममौचित्यमुज्जृम्भते॥

सम्प्रति वीरकरुणयोः सङ्कर औचित्यमुदाहरति—वीरेति।

गाण्डीवेति। गाण्डीव एव स्रुवस्तस्य मार्जने प्रक्षालने प्रणयिन आसक्तस्य वाष्पाम्बुभिः शोकाश्रुजलैः स्नातस्य खाण्डवाग्नेरपि परमुद्दीप्ततरं शोकानलं विभ्रतो नूतनयौवनोदयदिने यौवनारम्भ एव छिन्नो हतोऽभिमन्युर्यस्य तस्य जिष्णोर्जयशीलस्यार्जुनस्य 'हा वत्स !' इति विलापः सैन्धवस्य सिन्धुदेशाधिपतेर्जयद्रथस्य वध एवारब्धोऽभिचारो मारणानुष्ठानन्तत्र जपो बभूव॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र वीरकरुणसङ्करौचित्यमुपपादयति—अत्रेति। त्रिगर्तैर्जालन्धराभिजनैः सह संग्रामे गतस्य निरतस्य गाण्डीवधन्वनोऽर्जुनस्य। **अरिक्षये दीक्षा समुचित** इत्यत्र **अरिक्षयदीक्षासमुचितेति** समस्तपाठो युक्ततरः। खाण्डवदाहः कृतोर्जुनेनैवेति तत्पदप्रयोगेण तस्य वीररसाभिव्यक्तिर्जायते। आदौ पर्यवसाने च वीरोद्बोधादत्र मध्येऽभिव्यक्तस्य करुणस्य साङ्कर्यमुचितमित्याशयोन्त्यर्णनस्य ॥

वीर तथा करुण रसों के सङ्कर का उदाहरण मेरी मुनिमतमीमांसा का यह पद्य है—

"गाण्डीवस्वरूप स्रुव के मार्जन (=प्रक्षालन) में आसक्त, पुत्रशोकजन्य अश्रुप्रवाह से स्नान करते हुए, तथा खाण्डवानल से भी उद्दीप्ततर शोकानल को धारण करने वाले शत्रुजयशील अर्जुन के मुख से युवावस्था में प्रवेश करने वाले अपने पुत्र अभिमन्यु के वध से जो 'हा वत्स !' हा वत्स !' यह विलाप निकला वही सिन्धुदेशाधिपति जयद्रथ के वधस्वरूप मारणकर्म के लिए उपयुक्त मन्त्र-जप सिद्ध हुआ ॥"

इस पद्य के प्रारम्भ मे निर्दिष्ट गाण्डीव एवं खाण्डव आदि पदों से वीररस का उद्बोध होता है जिसका कविने 'सिन्धुदेशाधिपति जयद्रथ के वधस्वरूप मारण कर्म के लिए उपयुक्त मन्त्र-जप सिद्ध हुआ' इस कथन से अन्त तक निर्वाह किया है। यही प्रधान रस भी है इस वर्णन में। बीच में विलाप का निर्देश करने से करुणरसोद्बोध होता तो अवश्य है किन्तु आद्यन्त निर्व्यूढ वीररस की अपेक्षा यह गौण है। अतः इस पद्य में उपलब्ध करुण एवं वीर रसों का सङ्कर नितान्त उचित एवं रोचक है ॥

शान्तशृङ्गारकरुणवीभत्सानां यथा मम तत्रैव—

तीक्ष्णान्तस्त्रीकटाक्षक्षतहृदयतया व्यक्तसंसक्तरक्ताः
क्रोधाधिक्रूररोगव्रणगणगणनातीततीव्रव्यथार्ताः ।
स्नेहक्लेदातिलग्नैः कृमिभिरिव सुतैः स्वाङ्गजैर्भक्ष्यमाणाः
संसारक्लेशशय्यानिपतिततनवः पश्य सीदन्ति मन्दाः ॥

अत्र मुख्यस्याङ्गिनः शान्तरसस्यैवोद्दीपने कारणीभूतास्तीक्ष्णान्तस्त्रीकटाक्षक्षतहृदयव्यथार्त्तस्नेहक्लेदातिलग्नकृमितुल्यतनयादिपदोपादानेन शृङ्गारकरुणवीभत्साः शान्तमुखप्रेक्षिणः संलीनतया स्तिमितवृत्तयो भृत्या इव परमौचित्यं दर्शयन्ति ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इदानीं शान्तादीनां सङ्करमुदाहरति—**शान्तेत्यादि** ।

तीक्ष्णान्तेति । तीक्ष्णोन्तो येषां तैः स्त्रीणां कटाक्षैः । अन्तशब्दोत्र परिणामार्थकः, विरक्तानां कृते स्त्रीकटाक्षैरुजद्वेकस्यैव फलस्योत्पादादित्याशयः । अन्तशब्दोऽग्रभागार्थकोपि वर्त्तत इति शृङ्गारावबोधोप्येतेन घटत एव । तथाविधैश्च कटाक्षैर्हृदयस्य क्षतत्वेन व्यक्तं संसक्तमव्यवधानेन प्रवहद् रक्तं येषां ते । क्षतात्स्थानात् शरीरस्य रक्तमविरलं प्रवहतीति प्रसिद्धमेव । क्रोधादय एव क्रूरा रोगास्तैर्जातस्य व्रणगणस्य या गणनातीताऽप्रमेया तीव्रा व्यथा तयाऽऽर्त्ता दुःखिताः । स्नेह एव क्लेदः पङ्कस्तेनातिलग्नैः स्वाङ्गजैः सुतैः पुत्रादिभिः कृमिसदृशैर्भक्ष्यमाणाः । संसारस्य त्रिविधः क्लेश एव शय्या तत्र निपतितास्तनवः शरीराणि च येषां ते मन्दा अल्पप्रज्ञा जगदासक्ताः सीदन्ति खिद्यन्त इति पश्य । अत्र वाक्यार्थः कर्म, एकवाक्यता च **'पश्य मृगो धावति'** इतिवदुपपादनीया । एतेन च जगतः क्लेशातिशयजनकत्वेन तत उपशम एव वरमिति व्यज्यते । अत एव चात्र शान्तस्याङ्गित्वमुपपन्नं भवति ॥

अत्र कथं शान्तप्रसङ्गेपि शब्दसामर्थ्याद् उपात्तानां शृङ्गारादीनां शान्ताङ्गत्वमित्युपपादयति—**अत्रेत्यादिना** । तीक्ष्णान्तस्त्रीकटाक्षक्षतहृदयेत्यनेन शृङ्गारस्य, व्यथार्त्तेत्यनेन करुणस्य, स्नेहक्लेदेत्यादिना च बीभत्सस्य प्रतिपत्तिरिति विवेकः । यद्वा श्लेषवशात् प्रथमपादेन शृङ्गारस्य, द्वितीयेन करुणस्य तृतीयेन च बीभत्सस्येति बोध्यम् । संलीनतया शान्तप्रभावाभिभूतस्वप्रभावतया । स्तिमिताऽवरुद्धा स्वतन्त्रा वृत्तिर्व्यापारो येषां ते शृङ्गारादयः । अत्र भृत्या इत्युपमानतयोपात्तम् । यथा भृत्याः स्वामिप्रभावाभिभूतप्रभावतयाऽवरुद्धस्वतन्त्रव्यापाराः सन्तः स्वामिमुखप्रेक्षिणो भवन्ति तथैव प्रकृतेऽपि शृङ्गारादयः शान्तमुखप्रेक्षिणो विद्यन्ते ॥

अत्र परस्परविरुद्धानामपि समावेशो विनेयानुग्रहार्थं काव्यशोभार्थं चेति ध्वनिकृन्मतं बाध्यत्वेनैव गुणाधानार्थमुपादानमिति प्रकाशकृन्मतं च पूर्वमेवोपात्तमस्माभिः ॥

एतावता प्रबन्धेन रससङ्करौचित्यन्निरूपितम् । अत्र द्विविधा व्यवस्था—केचन रसानां वेद्यान्तरस्पर्शशून्यानामन्यै रसान्तरैः सह परस्परमुपकार्योपकारकभावमनाद्रियमाणा न रससङ्करमभ्युपगच्छन्ति वास्तवम् । सङ्करे हि रसानां

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मास्वादसहोदरत्वव्याघातापत्तेः । एतेषां मते तु भूयोंशव्यङ्ग्यस्य रसस्य व्यापकत्वेन प्रकर्षातिशयादङ्गित्वम्, न्यूनांशव्यङ्ग्यस्य च व्याप्यस्य तदभावादङ्गत्वमित्यौपचारिक एवास्ति तयोरङ्गाङ्गिभावः सङ्करः । अयं च वास्तवो भावानां स्थायिनाम्भवत्यत्र मते, स चोपचर्यते रसेष्वपि । यद्वा मतेस्मिन् रससङ्करशब्दे रसपदस्य भावार्थकत्वमेव मन्तव्यम् ॥

अपरे पुना रसानामङ्गाङ्गिभावमभ्युपगच्छन्त्येव । एतेषां मते यत्र रसानां समूहस्तत्र यद्रसास्वादे प्रकर्षोऽनुभूयमानः स रसः स्थायी प्रधानभूतः, अन्ये तु रसा अपकृष्टास्वादाः सञ्चारिणोङ्गभूता भवन्ति । प्रकर्षश्चास्वादे तस्यैव य आधिकारिकवस्तुव्यापकतया कविना सनिर्बन्धमुपनिबध्यमानः, प्रासङ्गिकवस्तुव्यापकानाञ्चास्वादेऽपकर्षः । अयमेवाङ्गरसः कैश्चन खण्डरस इत्यपिव्यवह्रियते । अधिकमन्यतोऽवसेयम् ॥

शान्त रस के साथ श्रृङ्गार, करुण एवं वीभत्स रसों के अङ्गाङ्गिभाव (=सङ्कर) का भी उदाहरण मेरी ही मुनिमतमीमांसा का यह पद्य है—

"देख, ये मूर्ख संसाररूपी क्लेशों की शय्या पर सोये हुए किस प्रकार दुःखी हैं। चुँकि इनका हृदय स्त्रियों के उत्कट फल देने वाले कटाक्षों से आहत होते इस लिए उससे रक्त की अविरल धारा प्रकट रूप में वहती रहती है। ये क्रोध-लोभादिस्वरूप भयङ्कर रोगों से उत्पन्न व्रणों की असीम उत्कट वेदना से पीड़ित होते हुए अन्त में स्नेहरूपी पंक से चिपके कीटों के समान अपने ही पुत्रादि द्वारा खाकर नष्ट भी कर दिए जाते। अतः इन सब से अलग रहना ही श्रेयस्कर है॥"

इसमे प्रधान रस तो शान्त हीं है। किन्तु प्रथमपाद से श्लेष द्वारा उपात्त अर्थ के अनुसार[1] श्रृङ्गार का, द्वितीयपाद से करुण का एवं तृतीयपाद से वीभत्स का भी अस्पष्ट बोध होता ही है। फिर भी शान्त के प्रभाव में अपने प्रभाव के तिरोभूत हो जाने से ये स्वतन्त्र रूप में अपने-अपने व्यापार को उसी प्रकार सम्पन्न नहीं कर पाते जिस प्रकार अपने स्वामी के प्रभाव में अपने प्रभाव के अभिभूत हो जाने से सेवक स्वतन्त्र व्यापार नहीं कर पाते। इस तरह प्रधानभूत शान्त रस के मुखापेक्षी श्रृङ्गारादि रस यहाँ तो शान्त रस के हीं परिपोषक हैं॥

१. इसके अनुसार प्रथमपाद का अर्थ यह होगा—कामिनियों के नुकीले (हृदयवेधी) कटाक्षों से हृदय के आविद्ध हो जाने से ये मन्द अर्थात् कामासक्त पुरुष उन कामिनियों के प्रति हीं प्रगाढ़ अनुराग (रक्तं रागः) प्रकट करते।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रससङ्करस्यानौचित्यमुद्भावयितुमाह। शृङ्गारशान्तयोर्यथाऽमरुकस्य—

गन्तव्यं यदि नाम निश्चितमहो गन्तासि केयं त्वरा
द्वित्राण्येव पदानि तिष्ठतु भवान् पश्यामि यावन्मुखम्।
संसारे घटिकाप्रणालविगलद्वारा समे जीविते
को जानाति पुनस्त्वया सह मम स्याद्वा न वा सङ्गमः॥

अत्र प्रकरणवर्तिनः शृङ्गाररसस्य पश्यामि यावन्मुखमित्यकुण्ठोत्कण्ठासमुज्जृम्भमाणस्य स्वभावविरोधिनि शान्तेऽङ्गभावमुपनीते विस्तीर्णतरानित्यतावर्णनया वैराग्येण रतेर्न्यग्भावमापादयन्त्या प्रधानरससम्बन्धेनाधिकमनौचित्यमुत्साहितम्। निःसारसंसाराचारुताश्रवणेन हि कठिनक्रियाक्रूरचेतसामप्युत्साहभङ्गादङ्गान्यलसीभवन्ति, किमुत कुसुमसुकुमारशृङ्गाररसकोमलमनसां विलासवताम्। प्रान्ते च शान्तपरिपोषनिर्वाहेण रागवैरस्यमेव पर्यवस्यति॥

तदुक्तमानन्दवर्धनेन—

विरोधी वाऽविरोधी वा रसोऽङ्गिनि रसान्तरे।
परिपोषं न नेतव्यस्तेन स्यादविरोधिता॥

तदेवात्र वैपरीत्येनावलोक्यते॥

सम्प्रति तदनौचित्यमुदाहरति—**रससङ्करस्येति**।

गन्तव्यमिति। यदि नाम निश्चितमेव त्वया गन्तव्यं तर्हि गंस्यत एव। अथवा यदि नाम त्वं गन्ताऽसि तर्हि निश्चितमेव त्वया गन्तव्यमित्यनयापि रीत्या व्याख्यातुं शक्यते। परन्त्वत्रेयं त्वरा शीघ्रता का? इयं शीघ्रता त्वया न कर्तव्येति भावः। अहो इति खेदे। द्वित्राणि द्वे वा त्रीणि वा पदानि पदप्रक्षेपोपलक्षितक्षणानि भवानत्र तिष्ठतु यावदहं भवन्मुखं पश्यामि द्रक्ष्यामि। **यावत्पुरानिपातयोः** इति भविष्यति लट्। अत्र भवत्पदस्याक्रोशातिशयसूचकतया प्रक्रमभङ्गो न दोषाय। मुखदर्शनस्यावश्यकत्वे हेतुमुपन्यस्यति—**संसार इत्यादिना**। घटिका काल-ज्ञानाय कृतं सच्छिद्रं जलपूर्णं यन्त्रम् प्रायेण ताम्रनिर्मितत्वात्ताम्रघटीति नाम्ना प्रसिद्धम्, तत्र यत् प्रणालम् जलनिस्सरणच्छिद्रम् तेन विगलता निस्सरता वारा जलेन समे जीवितेऽस्मिन् प्रतिक्षणं क्षीयमाणेऽनिश्चितावधाविति तात्पर्यम्। एतादृशेऽस्मिन् सांसारिके

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवने त्वया सह मम पुनः सङ्गमो भवेन्नवेति को जानाति ? न कोपि । अत्र घटिका क्षणान्येव प्रणालानीत्येवंरूपेण कृतम्व्याख्यानमपव्याख्यानम् ॥

अनौचित्यमुपपादयन्नाह—**अत्रेति**। प्रकरणवृत्तित्वं शृङ्गारस्याङ्गित्वप्रसाधकम्। अकुण्ठा कुण्ठारहिता निरपवादा योत्कण्ठा तया समुज्जृम्भमाणस्योत्कर्षमाप्नुवतः शृङ्गारस्य शान्तो रसोऽङ्गभावं प्रापितोऽङ्गतया वर्णितः कविना। तत्र च शान्तस्य स्वभावत एव शृङ्गारविरोधितया शान्तप्रसंगे या विस्तीर्णतरायाः समस्तजगद्विषयकत्वेन व्यापकीभूतायाः अनित्यतायाः वर्णना तया वैराग्येण साधनेन रतिः शृङ्गारस्थायिभावात्मिका न्यग्भावं तिरोभावमापादितेति प्रधानरसस्य शान्तेनाङ्गतयोपन्यस्तेनापकर्षजननादत्र महदनौचित्यं प्रदर्शितम्। अत्र हेतुमाह—**निस्सारेत्यादिना**। निस्सारस्य संसारस्याचारुतायाः श्रवणेन यदा कठिनाभिः क्रियाभिः क्रूराणि चेतांसि येषान्तेषामप्युत्साहभङ्ग इति तदङ्गान्यप्यलसीभवन्ति अनलसान्यलसानि सम्पद्यन्ते तदा कैव कथा तेषां विलासवतां रसिकानां येषां कुसुममिव सुकुमारेण शृङ्गाररसेन मनांसि कोमलानि ! स्वभावविरुद्धोपि शान्तो भवेन्नाम कथञ्चिच्छृङ्गारानुपरोधी यदि तस्य पर्यन्तपरिपोषो न कृतो भवेत्। न च पुनरेवमत्र वस्तुगतिः, तृतीयचतुर्थचरणयोः शान्तस्यैव परिपोषात्। तथा च सर्वथैवानौचित्यमस्य सङ्करस्येत्याह—**प्रान्त इति**। उक्तार्थं प्रमाणतयोपन्यस्यति—**तदुक्तमिति**।

विरोधीति। अत्र **अविरोधी विरोधी वा**... इत्येवं पाठः श्रेयान्, इष्टान्वाख्यानस्य प्रथममीप्सितत्वात्। कारिकार्थस्तु—रसान्तरेऽङ्गिनि शृङ्गारादौ यदि नामाङ्गत्वेन तदविरोधी[1] हास्यादिर्विरोधी वा शान्तादिर्निवेश्यते कविना तर्हि प्रधानरसतिरस्काराभावाय तत्राविरोधिनो रसस्याङ्गभूतस्याङ्गिप्राधान्योपमर्दकः परिपोषो न कर्त्तव्यः। अङ्गिरसानुपमर्दकस्तु तस्य परिपोषः कर्त्तव्य एवेत्यपि बोध्यम् ॥

अयमेको विधिरङ्गरसपरिपोषाधिक्यपरिहारस्य। द्वितीयश्चाङ्गरसोपकारिणां व्यभिचारिभावानामङ्गिरसपरिपन्थिनां लेशमात्रेण समावेशो न बाहुल्येन, बाहुल्येन समावेशे तु न क्षिप्रमेवाङ्गिरसव्यभिचारिणामनुसन्धानम् येनाङ्गिरसास्वादप्रकर्षापचयाभावः स्यादिति। तृतीयश्चाङ्गरसस्य परिपोषं

१. हास्यस्य शृङ्गाराविरोधित्वमेतयोर्वध्यघातकभावाभावान्न तु सहावस्थानसम्भवात्।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नीयमानस्य पुनः पुनः प्रत्यवेक्षणम् । एवमन्येऽपि प्रकाराः प्रधानरसाविरुद्धाङ्गरसपरिपोषपरिहारस्य यथासम्भवमुन्नेयाः । विरोधिनोप्यङ्गरसस्याङ्गिरसविरोधपरिहारायाङ्गिरसापेक्षया परिपोषाधिक्याभावो यत्नेन कविनोपपाद्योऽवश्यम् । रसत्वापादनाय चाङ्गरसस्य स्वगतः कश्चित्परिपोषः कर्त्तव्य एवेति प्रागेवोक्तमित्यन्यत्र विस्तरः ॥

एतावताऽऽनन्दवर्धनोक्त्या स्वाम्युपगमं समर्थयन्नुपसंहरति प्रकृतमर्थम्—**तदेवेति** । अत्रोदाहृतपद्ये । **वैपरीत्येन** = अङ्गरसस्य शान्तस्य यः स्वगतः परिपोषस्तद्विपर्ययेण प्रधानीभूतशृङ्गारापेक्षयाप्यधिकपरिपुष्टत्वेन । **अवलोक्यत इति** । तथा च स्पष्टमेवानौचित्यमस्य सङ्करस्येति प्रतिफलति ॥

अत्रेदमालोचनीयम्—प्रकृतपद्योत्तरार्धे शान्तरसस्थायिभावभूतो निर्वेदोऽभिप्रेतः कवेर्नवेति । वयं तु मन्यामहे नैवेति । निर्वेदो हि तत्त्वज्ञानापदीर्ष्यादैन्यादिजन्मा बहुविधः । तत्र न सर्वो निर्वेदः शान्तस्थायी भवितुमर्हति, दण्डमुपभुञ्जानस्य चौरादेर्निर्वेदस्य तथात्वाभावात् । अतस्तत्त्वज्ञानजन्मैव सः स्थायी शान्तरसस्येति स्वीकर्त्तव्यमेव । तथा च कथं नामासह्यविरहव्यथाजन्मनः प्रकृतनिर्वेदस्य शान्तस्थायिभावत्वं येनात्र शान्तरससङ्करः शङ्क्येतापि सहृदयैरिति नावगच्छामः । अतोयं निर्वेदः शृङ्गारस्यैव सञ्चारिभावत्वेन कविनोपनिबद्ध इति प्रकृतमनौचित्यचिन्तनं ग्रन्थकृतश्चिन्त्यमेव । प्रकृतपद्यनिबद्धस्यार्थस्यैवम्विधायामवस्थायां स्वाभाविकत्वस्य सकलसहृदयानुभवविषयत्वादिदमनौचित्यवर्णनं नूनमस्य दुर्हृदयत्वमेव प्रकटयति ॥

प्रकृतस्य निर्वेदस्य शृङ्गारसञ्चारित्वमितोप्यवसीयते यन्नायिका स्वपतेर्मुखं पश्यति पद्योत्तरार्धार्थकथनान्तरमेव; पूर्वन्तु मुखदर्शनप्रार्थनामात्रं कृतम्, न मुखदर्शनम्, उत्तरार्धे मुखदर्शनम्, उत्तरार्धे मुखदर्शनार्थप्रार्थितक्षणिकावस्थानहेतोः प्रतिपादनात् । इतरथा हि त्वरया गन्तुर्नायकस्य क्षणमपि तत्रावस्थानाभावेन मुखदर्शनासम्भवात् । एतच्चातिविस्मयकरम् प्रतीयते यत् सर्वत्रैव रत्यादिश्रवणे कविरयं रसपरिपाकं मन्वानोऽकाण्ड एवौचित्यानौचित्यविवेकं प्रदर्शयतीति । न हि रत्यादिसामान्यं शृङ्गारादीनां रसानां स्थायिभावोपि तु तद्विशेष एव प्रकर्षसम्पन्नः । तथा च स्पष्टैवापातरम्यता तत्र तत्रात्र ग्रन्थे दृश्यते । स्पष्टीकृता चास्माभिरपि क्वचित् ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अब रससङ्कर में अनौचित्य का प्रतिपादन किया जा रहा है। इस प्रसङ्ग में श्रृङ्गार एवं शान्तरसों के सङ्कर (=अङ्गाङ्गिभाव) का अनौचित्य अमरुक कवि के निम्नलिखित पद्य में है—

"अगर तुझे जाना ही है तो जरूर जाना ! पर इसमें इतनी जल्दबाजी क्यों ? कम से कम कुछ क्षणों के लिए भी तो रुक जा ताकि मैं एक वार और तेरा मुँह देख लूँ ! इस दुनिया में यह जिन्दगी तो ताम्रघटी के सुराख से प्रतिपल बहने वाले पानी की तरह (प्रतिपल क्षीण होने वाला) है। इस लिए कौन जानता कि तेरे साथ मेरा फिर कभी मिलन होगा या नही !"

इस पद्य में 'ताकि मैं एक वार और तेरा मुँह देख लूँ' इस कथन से प्रकट असीम उत्कण्ठा से श्रृङ्गाररस की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति हो रही है। यही प्रधान रस है, क्योंकि प्रकरण इसीका है। इसके अङ्ग के रूप में कवि ने शान्त रस का (उत्तरार्ध में) उपनिवन्ध कर दिया है। इस में समस्त संसार की भङ्गुरता का वर्णन है। यह भङ्गुरता वैराग्य का उद्भावन करती हुई श्रृङ्गार के स्थायिभाव रति को इतना हीन बना देती कि श्रृङ्गार में कोई आकर्षण रह नही जाता। अतः यह रससङ्कर प्रधानरसविरोधी होने से अनुचित है। असार संसार की अप्रियता (हीनता) को जान कर क्रूर हृदय वाला भी उत्साहहीन होकर आलसी हो जाता, फिर जिसका हृदय फूलों की तरह कोमल श्रृङ्गार रस के प्रभाव से सरल है उसके विषय में तो कुछ कहना ही नहीं। इस प्रकार श्रृङ्गार के स्वभावतः विरोधी शान्तरस का अन्त तक परिपोषण किए जाने के कारण श्रृङ्गार की चारुता नष्ट हो गई है॥

इसीलिए आनन्दवर्धन ने कहा है—

प्रधान रस के अङ्ग रूप में यदि उसके अविरोधी अथवा विरोधी रस का कवि उद्भावन करना चाहे तो उसे कम से कम इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि अङ्गरस का परिपोषण प्रधान रस के परिपोषण से अधिक न हो। अधिक परिपोषण न होने पर अङ्ग और अङ्गी रसों का विरोध रसास्वादन में प्रतिवन्धक नहीं होता॥

किन्तु प्रकृत उदाहरण में अविरोधोपपादनार्थं अपेक्षित सीमित परिपोषण के विपरीत अङ्गरस—शान्त का अधिक परिपोषण कर दिया गया है। अतः इस रससङ्कर में अनौचित्य है॥

परिपोषविपरीते स्वभावविरोधिन्यपि प्रधानानुपरोध एव। यथा राजशेखरस्य—

माणं मुंचध देह वल्लहजणे दिट्ठिं तरंगुत्तरं
तारुण्णं दिअहाइं पञ्च दह वा पीणत्थणत्थंभणं।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इत्थं कोइलिमंजुसिंजिणमिसाद् देवस्स पंचेसुणो
दिण्णा चित्तमहूसवेण सहसा आणव्व सव्वंकसा ॥

अत्र 'मानं मुञ्चत दत्त वल्लभजने दृष्टिं तरंगितां तारुण्यं दिनानि पञ्च दश वा पीनस्तनस्तम्भनमित्थं कोकिलमधुरध्वनिव्याजेन देवस्य पञ्चेषोश्चैत्रमहोत्सवेनाज्ञेव सर्वंकषा दत्ता' इति वाक्ये मुख्यः शृङ्गाररसः प्रारम्भपर्यन्तव्याप्तिशाली कतिपयदिवसस्थायि यौवनमित्यनित्यतारूपशान्तविन्दुना मध्यत्रुडितेनैव विरसतां न नीतः, विरुद्धस्य परिपोषाभावात्। विरुद्धवर्णनोदितेन ह्यनौचित्येन स्थायी कुञ्जर इव श्वभ्रपातितः पुनरुत्थातुं नोत्सहत इत्यलं विस्तरेण। अनया दिशा रससङ्करे भेदप्रपञ्चौचित्यं विपश्चिद्भिः स्वयं विचार्यम् ॥ १८ ॥

यत्र तु स्वभावतो विरुद्धस्याप्यङ्गरसस्य प्रधानपरिपोषावधिकाधिकपरिपोषः कविना न निर्व्यूढस्तत्र नानौचित्यमित्याह—**परिपोषविपरीत इत्यादिना** ॥

एतदुदाहरति—**यथेति**।

माणमिति। अस्य संस्कृतच्छाया यथा—

मानं मुञ्चत दत्त वल्लभजने दृष्टिं तरङ्गोत्तरां
तारुण्यं दिवसानि पञ्च दश वा पीनस्तनस्तम्भनम्।
इत्थं कोकिलमञ्जुशिञ्जितमिषाद्देवस्य पञ्चेषो-
र्दत्ता चैत्रमहोत्सवेन सहसाज्ञेव सर्वङ्कषा ॥ इति।

हे मानिन्यः ? मानं कृत्रिमरोषं मुञ्चत त्यजत। वल्लभजने प्रियतमे तरङ्गोत्तरां तरङ्गादप्युत्तरामुत्कृष्टाम्, तरङ्गस्य चञ्चलत्वेन चञ्चलतरामित्याशयः, दृष्टिं दत्त। यस्मात् कारणाद् युवाकर्षकाणां पीनस्तनानां स्तम्भनमवरोधकं यौवनोत्कर्षसूचकस्तनपीनत्वप्रतिबन्धकमिदं युष्माकं तारुण्यं पञ्च दश वा दिनानि स्थायि, नितरामस्थिरमिति भावः। यद्वा युष्माकं मानस्य कारणमिदं तारुण्यं पञ्च दश वा दिनानि यावदेव युष्माकं पीनानां स्तनानां स्तम्भनमवरोधकं स्यात्। ततः परं न युवा कोप्याकृष्टो भवेदिति जीवनं वृथैव सम्पद्येतेति हेतोरस्मिन्नवसरेऽनुकूले जीवनसुखान्मा विमुखा भूतेत्यर्थः। इत्थं चैत्रमहोत्सवेन वसन्तमहोत्सवेन कोकिलानां मञ्जुशिञ्जितस्य मनोहारि-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कलकलस्य मिषाच्छलाद्देवस्य पञ्चेषोः कामस्य सर्वं कषतीति सर्वङ्कषा सर्वपतनकारिण्याज्ञा सहसा ताभ्यो दत्तेवेत्युत्प्रेक्षा। कामाज्ञायाः सर्वपतनकारित्वं सर्वस्य तद्वशीभूतत्वात् ॥

अत्रारम्भादन्तं यावदुद्बुद्धस्य शृङ्गारस्याङ्गिनोऽङ्गभूतः शान्तो रसो यौवनास्थैर्यातिशयप्रतिपन्नो लेशमात्रेण भासमानोपि न प्रधानस्य शृङ्गारस्य बाधकः पर्यन्तपरिपोषाभावादित्याह—**अत्रेत्यादिना**। **मध्यत्रुडितेनेति**। त्रुड सम्वरणे इति तौदादिकाद् धातोः क्तप्रत्यये रूपम्। अतो मध्यसम्वृतेनेत्यर्थः। मध्यपतितत्वादव्यक्तप्रायेणेति तात्पर्यम्। **विरुद्धस्येति**। शृङ्गारविरुद्धस्य शान्तस्येत्यर्थः। **परिपोषाभावादिति**। अन्तं यावदिति शेषः। श्वभ्रपातितो गर्ते निपातितः ॥

किन्तु यदि अङ्गरस अङ्गीरस का स्वभावतः विरुद्ध होकर भी अन्त तक परिपोषित नहीं होता तो वह प्रधान रस के आस्वादन में बाधक नही होता। इसका उदाहरण राजशेखर का यह पद्य है—

"अरी मानिनियो ! मान छोड़ो, अपनी-अपनी चपल दृष्टि अपने-अपने प्रियतम की ओर डालो, तुह्मारे स्तनों की मादकता को सुरक्षित रखने वाला यह यौवन दश-पाँच दिनों का ही मेहमान है—इस प्रकार कोयल की मधुर कूक के बहाने वसन्तोत्सव मानो उन मानिनियों के समक्ष कामदेव की अलङ्घनीय आज्ञा को ही सहसा प्रकट कर रहा था ॥"

उपर्युक्त वर्णन मे आदि से अन्त तक श्रृङ्गार रस ही व्याप्त है। यद्यपि बीच में 'तुह्मारे···यह यौवन दश-पाँच दिनो का ही मेहमान है' इस कथन द्वारा शान्त रस की एक झलक मिलती तथापि वह श्रृङ्गार रस के आस्वादन में कोई बाधक नही होता, क्योंकि अन्त तक उसका परिपोषण न किए जाने के कारण वह श्रृङ्गार के गर्भ में हीं छिपा रह जाता है ॥

विरुद्ध रस के वर्णन से उत्पन्न अनौचित्य द्वारा जब स्थायी रस (अङ्गी रस) दबा दिया जाता है तब वह उसी प्रकार सहृदयों के हृदय में आस्वादार्थ उपस्थित होने में असमर्थ हो जाता है जिस प्रकार गढ्ढे में गिरा हुआ गजराज ॥

रससङ्करों के औचित्य तथा अनौचित्य का उपर्युक्त विवरण दिग्दर्शन मात्र है। इसके अन्यान्य भेदों के औचित्यानौचित्य का विचार तो मनीषियों को स्वयं करना चाहिए ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रसौचित्यविचारानन्तरमुद्देशानुसारक्रमेण क्रमोपगतं क्रियापदौचित्यं दर्शयितुमाह—

सगुणत्वं सुवृत्तत्वं साधुता च विराजते।
काव्यस्य सुजनस्येव यद्यौचित्यवती क्रिया॥ १९॥

काव्यस्य माधुर्यादिगुणवत्ता वसन्ततिलकादिसुवृत्तता परिपूर्णलक्षणसाधुता च विराजते, यद्यौचित्ययुक्तं क्रियापदं भवति। सुजनस्येवेति तत्तुल्यत्वं स्पष्टार्थमेव॥

सम्प्रति क्रियापदौचित्यनिरूपणस्य पातनिकामाह—**रसौचित्येत्यादि**। क्रमोपगतं क्रमप्राप्तम्। **क्रमेण क्रमोपगतम्** इत्यत्रैकः क्रमशव्दोपार्थक एव।

सगुणत्वमिति। यथा सज्जनस्य सगुणत्वं दयादाक्षिण्यादिगुणयुक्तत्वं सुवृत्तत्वं सदाचारित्वं साधुता सज्जनता च तर्ह्येव विराजते यदि तस्य क्रियौचित्यवती भवति तथैव काव्यस्यापि सगुणत्वं माधुर्यादिगुणयुक्तत्वं सुवृत्तत्वम् अर्थानुरूपच्छन्दोयुक्तत्वं साधुता व्याकरणादिसंस्कारयुक्तत्वं च सदपि तर्ह्येव विराजते यदि तत्रोचितं क्रियापदं भवतीति पद्यार्थः॥ १९॥

काव्यस्येत्यादिगद्यवन्धः स्फुटार्थः॥

इस प्रकार रसौचित्य का विचार करने के वाद औचित्यविपयों के क्रम में क्रियापदौचित्य का स्थान होने से उसी का निरूपण किया जा रहा है—

जिस तरह सज्जन की दया-दाक्षिण्यादिगुणयुक्तता, सदाचारवत्ता एवं सज्जनता तभी सुशोभित होती जब उनका आचरण उचित (मर्यादित) होता है उसी तरह काव्य की भी मधुर्यादिगुणवत्ता, वसन्ततिलकादिछन्दोवद्धता एवं व्याकरणादिसंस्कारयुक्तता तभी सुशोभित होती जब इसमे उचित क्रियापद प्रयुक्त होता है॥ १९॥

उपर्युक्त रीति से सज्जन एवं काव्य में (अभङ्गश्लेपमूलक) सादृश्य स्पष्ट है॥

क्रियापदौचित्यं यथा मम नीतिलतायाम्—

यः प्रख्यातजवः सदास्थितिविधौ सप्ताब्धिसन्ध्यार्चने
दोर्दर्पेण निनाय दुन्दुभिवपुर्यः कालकङ्कालताम्।
यः पातालमसृङ्मयं प्रविदधे निष्पिष्य मायाविनं
सुग्रीवाग्र्यविभूतिलुण्ठनपटुर्वाली स किं स्मर्यते॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत सप्ताब्धिसन्ध्यार्चनप्रख्यातजवो महिषरूपदुन्दुभिदानवोन्माथी मायाविदानवनिष्पेषोद्भूतशोणितपूरितपातालतलः स वाली किं स्मर्यत इति क्रियापदेन शुकसारणाभ्यां रावणस्य दुर्नयाभिनिवेशिनस्तद्विरामाय हितोपदेशेन भवान्वसनकोणनियमिततनुः कक्षायां निक्षिप्त इत्युचितयुक्तियुक्तं भवति ॥

क्रियापदौचित्योदाहरणमाह—क्रियेत्यादि ।

य इति । यो वाली सप्तस्वब्धिषु समुद्रेषु सन्ध्याया अर्चने वन्दने सतामास्थितिराचारस्तस्य विधौ सम्पादने, सन्ध्यावन्दनस्वरूपे सदाचारकर्मणीति तात्पर्यम्, प्रख्यातो जवः शैघ्र्यं यस्य तथाविधः । पूर्वापरसन्ध्ययोः प्रतिनियताल्पकालसम्पाद्यत्वात्तस्मिन्नल्पकाले सप्तसमुद्रपर्यन्तगमनवर्णनेनान्ततोऽस्य शौर्यातिशयः सूच्यते । यश्च स्वदोर्दर्पेण भुजबलाभिमानेन दुन्दुभेस्तन्नामकस्य राक्षसस्य महिषस्वरूपधारिणो वपुः कालकङ्कालतां कालो यमस्तदुपलक्षणभूतां कङ्कालतामस्थिपञ्जरत्वं निनाय प्रापयत् । यद्वा कालो यमो महिषवाहनत्वेन प्रसिद्धः । दुन्दुभिश्च महिषरूपी वालिना तद्रूपाच्च्यावित इति कालाय यमाय कङ्कालरूपतां तद्वपुः प्रापयद्वाली, न तं महिषरूपेण स्थातुमन्वमन्यतेत्यर्थः कार्यः ॥

अत्र दुन्दुभिवपुर्योऽकालकङ्कालताम् इति पाठः स्पष्टतरः प्रतीयते । अकालेऽसमय एव कङ्कालतां निनायेति पाठेऽस्मिन् वाक्यार्थः । यश्च मायाविनं तन्नामकं दानवं निष्पिष्य निघृष्य निपीड्य निःस्सारितेन तद्रक्तपूरेण पातालमसृङ्मयं रक्तपूर्णं प्रविदधे । सुग्रीवस्याग्र्या प्रधाना या विभूतिः सम्पत्तिर्दारादिरूपा, कैमुतिकन्यायेनेतरविभूतेरपि संग्रहात्समग्रैव विभूतिः पर्यवस्यति, तस्या लुण्ठनेऽपहरणे पटुः स (वाली) किन्त्वया न स्मर्यते ?

अत्र स्मर्यत इति क्रियापदं कुमार्गगामिनं रावणं वालिकर्तृकवसनकोणनिबन्धनपूर्वककक्षनिक्षेपक्रियाकर्मत्वं स्मारयद्धितोपदेशप्रदमित्यौचित्यसम्पन्नमित्याशयवानाह—अत्रेत्यादि । शुकसारणौ रावणानुचरविशेषौ । निक्षिप्त इतीत्यतः परं प्रतिपाद्यमिति पूरणीयम् । शेषं स्पष्टम् ॥

क्रियापद के औचित्य का उदाहरण मेरी नीतिलता के इस पद्य में है—

"सन्ध्यावन्दनस्वरूप सदाचार के अनुष्ठानार्थं सात समुद्रों तक जाने से जिसका (गमन-) वेग विश्वविख्यात है, जिसने अपने प्रचण्ड बाहुबल से

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महिषरूपधारी दुन्दुभि नामक दानव के शरीर को यमराज के प्रतीकभूत कङ्काल के रूप के बदल दिया था, जिसने मायावी नामक दानव के शरीर को निचोड़ कर पाताल लोक को रक्तरञ्जित कर दिया था और जिसने सुग्रीव की समस्त सम्पत्ति को हड़प लिया था क्या तुम उस वाली का स्मरण कर रहे हो ?''

शुक एवं सारण नामक दो अनुचर अपने कुमार्गप्रवृत्त स्वामी रावण को वाली द्वारा कपड़े में लपेट कर काँख में दबाने की घटना का स्मरण दिलाकर सन्मार्ग में प्रवृत्त कराना चाहते । इस उद्देश्य की पूर्ति में उपयुक्त होने से उक्त पद्य का 'स्मर्यते' यह क्रियापद अत्यन्त समुचित है ॥

न तु यथा श्रीप्रवरसेनस्य—

सग्गं अपारिजाअं कोत्थुहलच्छिरहिअं महुमहस्स उरं ।
सुमिरामि महणपुरओ अमुद्धअन्दं हरअडापब्भारं ॥

अत्र जाम्ववताऽभिधीयमाने 'स्वर्गमपारिजातं कौस्तुभलक्ष्मीभ्यां विरहितं मधुमथनस्योरः स्मराम्यमृतमथनपुरतोऽप्यवालचन्द्रं हरजटाप्राग्भारम्' इति प्रगुणगुणाख्यानप्रसङ्गे क्रियापदेन जराजर्जरशरीरत्वमात्रमेव प्रतिपादितम्, न तु पौरुषोत्कर्षविशेषातिशयः कश्चिदुचितः संसूचितः ॥ १९ ॥

प्रसङ्गात् क्रियापदानौचित्यमुदाहरति—न त्विति ।

सग्गमिति । अस्य संस्कृतच्छाया यथा—

स्वर्गमपारिजातं कौस्तुभलक्ष्मीरहितं मधुमथनस्योरः ।
स्मरामि मथनपुरतोऽमुग्धचन्द्रं हरजटाप्राग्भारम् ॥ इति ।

आत्मगुणान् वर्णयतो जाम्ववत इयमुक्तिः । समुद्रमथनात् पूर्वं या स्थितिः स्वर्गादिस्तां स्मरन्नाह—स्वर्गमित्यादि । अहं मथनात् समुद्र-मथनात् पुरतः पूर्वम् अपारिजातं पारिजातरहितं स्वर्गम्; मधुमथनस्य विष्णोः कौस्तुभेन मणिना लक्ष्म्या च रहितमुरो हृदयम्. कौस्तुभो मणिर्हृदयस्य वाह्यप्रदेशे लक्ष्मी च प्रियतमा तदन्तरिति विशेषः, हरस्य जटायाः प्राग्भारमग्रभागममुग्धचन्द्रं बालचन्द्ररहितं स्मरामि । मुग्धो बालः । एतेनातिपूर्वकालिकवृत्तान्तज्ञत्ववर्णनेनास्य जाम्बवतोऽतिवृद्धत्वं सूचितम् ॥

अत्रात्मगुणवर्णनप्रसङ्गे जाम्बवतोतिवृद्धत्वमात्रं सूचितम्, न कोपि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुणोत्कर्षः, तावन्मात्रेण गुणोत्कर्षाप्रतीतेः। अतोत्र स्मरामीति क्रियापदं न प्रसङ्गानुरूपमित्यनुचितमेवेत्याह—अत्रेत्यादिना। गद्यबन्धः स्फुटार्थः॥

किन्तु प्रवरसेन के निम्नोद्धृत पद्य में प्रयुक्त 'स्मरामि' यह क्रियापद उचित नहीं है—

"मुझे समुद्रमथन से पूर्व पारिजात पुष्प से रहित स्वर्ग का, कौस्तुभ मणि एवं लक्ष्मी से रहित हृदय वाले मधुसूदन (विष्णु) का और शिव के चन्द्रकलारहित जटाजूट का तो स्मरण है॥"

यहाँ प्रकरण तो है जाम्बवान् के गुणों के वर्णन का। किन्तु उपर्युक्त स्मरणक्रिया द्वारा उसके अतिवृद्धत्व मात्र की प्रतीति हो रही है, किसी गुणविशेष की नहीं। अतः यह क्रियापद प्रसङ्ग के अनुरूप न होने से कोई औचित्य नहीं रखता॥

कारकौचित्यं दर्शयितुमाह—

सान्वयं शोभते वाक्यमुचितैरेव कारकैः।
कुलाभरणमैश्वर्यमौदार्यचरितैरिव ॥ २० ॥

उचितैरेव कारकैः सदन्वयवद्वाक्यं विराजते सद्वंशभूषितमैश्वर्यं सच्चरितैरिव॥

सम्प्रति क्रमप्राप्तं कारकपदौचित्यं प्रदर्शयति—कारकेति।

सान्वयमिति। यया कुलस्याभरणं कुलं वाऽऽभरणं यस्य तथाविधमैश्वर्यमौदार्याचरणैरेव शोभते तथैवोचितैरेव कारकैः सान्वयमन्वितं वाक्यं काव्यरूपं प्रकृतत्वात् शोभते॥ २०॥

अब कारकौचित्य का प्रतिपादन किया जा रहा है—

जिस प्रकार कुलीनता से विभूषित ऐश्वर्य उदारतापूर्ण सदाचरण से ही सुशोभित होता उसी प्रकार काव्य भी उचित कारक पद से विशिष्ट होने पर ही सुशोभित होता॥ २०॥

कर्तृपदौचित्यं यथा भट्टबाणस्य—

स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्॥

अत्र शत्रुस्त्रियो व्रतं चरन्तीति वक्तव्ये स्तनयुगं बाष्पसलिलस्नातं शोकाग्निसमीपवर्ति विमुक्तभोजनं विगतमुक्ताहारं च सद् व्रतं चरतीत्युक्ते कर्तृपदमौचित्यमुपचितं जनयति॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्र कर्तुः प्रधानतया तदौचित्यं प्रथममुदाहरति—**कर्तृपदौचित्यमिति। स्तनयुगमिति।** कादम्बर्यां शूद्रकविषये शुकोक्तिरियमार्या। हे राजन्! भवतो रिपुस्त्रीणां स्तनयुगमश्रुभिर्भवता तत्पतीनां संग्रामे निहतत्वात्तद्वियोगजन्यनयनाम्बुभिः स्नातम्। स्नातमित्यनेनाविरलत्वमश्रुप्रवाहस्य द्योत्यते, इतरथा स्नानासम्भवात्। हृदये प्रज्वलितस्य पतिविनाशजन्यशोकस्वरूपाग्नेः समीपतरवर्त्ति, हृदये शोकाग्निर्ज्वलति तदुपरि च स्तनद्वयावस्थानमिति तत्समीपतरवर्तित्वं स्फुटमेव स्तनयुगस्य; विगतो मुक्तानां हारो यस्मात्तथाविधं च सद् व्रतं चरतीव। विधवानामाभूषणादिधारणस्य वर्जितत्वान्मुक्ताहाररहितत्वं स्पष्टमेव। यद्यपि हारो धार्यते कण्ठे तथापि तद्यष्टीनां स्तनद्वयोपरिलुण्ठनात्स्तनद्वयस्यापि विमुक्ताहारत्वमुपपन्नम्। मुक्ताहारस्य च स्तनद्वयोपरि लुण्ठनमप्यनिवार्यमेव, अत एवास्य नामैवोरःसूत्रिकेति प्रसिद्धम्। तथा चामरः—**अथोरःसूत्रिका मौक्तिकैः कृता इति।** यथा कश्चिद् व्रती स्नात्वाऽग्नेः समीपे वर्त्तमान आहारं भोजनं विमुच्य स्वव्रतमाचरति तथैव भवतो रिपुस्त्रीणां स्तनयुगमपीति प्रकृते व्रताचरणत्वोत्प्रेक्षा संगच्छते। रिपुस्त्रीणामिति बहुवचनेनाशेषरिपुसंहारकत्वं राज्ञः सूच्यते॥

अत्र व्रताचरणकर्तृत्वेन रिपुस्त्रीरनुपादाय तत्स्तनद्वयस्य यदुपादानं तेनाह्लादातिशयजननात् प्रकृतं कर्तृपदमौचित्यविभूषितमिति प्रतिपादयति—**अत्रेति॥**

कर्तृवाचक पद के औचित्य का उदाहरण बाण भट्ट के निम्नलिखित पद्य में उपलब्ध है—

"हे राजन्! आपके शत्रुओं की स्त्रियों के दोनों स्तन (आप द्वारा शत्रुओं की हत्या कर दिए जाने के कारण) वियोगाश्रुप्रवाह से स्नान कर तथा मुक्ताहार को छोड़कर हृदयवर्त्ती शोकाग्नि के समीप मानो व्रत कर रहे हैं॥"

इस पद्य में 'शत्रु की स्त्रियाँ व्रत कर रही हैं' यह न कह कर 'उनके दोनो स्तन······व्रत कर रहें हैं' यह कहा गया है, अर्थात् शत्रु की स्त्रियों को नहीं अपि तु उनके दोनों स्तनों को व्रताचरण का कर्त्ता कहा गया है। इससे वर्णन में वैचित्र्य आ जाने से स्तनद्वयस्वरूप कर्तृपद का औचित्य स्पष्ट है॥

न तु यथा परिमलस्य—

आहारं न करोति नाम्बु पिबति स्त्रैणं न संसेवते
शेते यत्सिकतासु मुक्तविषयश्चण्डातपं सेवते।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्वत्पादाब्जरजःप्रसादकणिकालोभोन्मुखस्तन्मरौ
मन्ये मालवसिंह ! गुर्जरपतिस्तीव्रं तपस्तप्यते ॥

अत्र गुर्जरपतिर्विद्रुतो मरुगहनं प्रविष्टः परित्यक्ताहारादिसमस्तविषयश्चण्डातपोपसेवी तपश्चरतीति यदुक्तं तत्कर्तृपदस्य विशेषाभिप्रायोचितं न किञ्चिदुपलक्ष्यते। शत्रुत्रासतरलतया मरुकान्तारावसन्नः सकलविषयसुखभोगपरिभ्रष्टः किमन्यत्कुरुताम् ? स्तनयुगवत्कर्तृपदस्य चमत्कारोचितं न किंचिदभिहितम् ॥

प्रसङ्गात् कर्तृपदानौचित्यमुदाहरति—न त्विति ।

आहारमिति । गुर्जराधिपतिपराजयानन्तरं मालवाधिपतेः प्रशंसेयम् । मालवसिंह ! यदयं गुर्जरदेशाधिपो विजितसर्वस्वः सन्नाहारं भोजनं न करोति; न चाम्बु जलं पिबति, अनुपलब्धेस्तत्र मरुप्रदेशे; यच्च स्त्रैणं स्त्रीणां समूहं न संसेवते, निर्धनत्वेन पराजयकालापहरणादिना च तासामननुगमनात्; यच्च सिकतासु शेते, धनापहारेण शय्याद्यभावात् ; यच्च मुक्तविषयस्त्यक्तभोगसाधनः, यच्च गृहाद्यभावेन चण्डमुग्रं सूर्यस्यातपं सेवते चण्डातपे निवसति तदहं मन्ये यदसौ त्वत्पादाब्जरजःस्वरूपप्रसादकणिकाया लोभेनोन्मुखः सन् मरुप्रदेशे तीव्रमुग्रं तपस्तप्यते करोति ॥ अत्र मुक्तविषय इति विशेषणं हेतुगर्भमाश्रित्य विषयशब्दं च देशार्थकमाश्रित्य त्वत्पराजिततया स्वदेशान्निर्वासितत्वादाहारादिकं यतो न करोत्यतस्तीव्रं तपस्तप्यत इत्येवमपि व्याख्यान्तरं कर्तुं शक्यम् ॥

अत्र गुर्जरपतिरिति कर्तृपदं न विशेषमभिदधातीति हेतोरनौचित्यमस्योपपादयति—अत्रेत्यादिना । शत्रुत्रासेन तरलश्चञ्चलस्तत्तया । मरुकान्तारस्यान्तरा मध्ये निवासेनावसन्नः खिन्नः ॥

एतच्चानौचित्योपवर्णनं चिन्त्यम्, गुर्जरपतिशब्दस्य साभिप्रायत्वात् । एतेन हि तस्याधिपतित्ववर्णनेन पराक्रमशालित्वसूचनात्तद्विजयिनो मालवेशस्य पराक्रमातिशयद्योतनात् । अधिकं विज्ञैर्विवेचनीयम् ॥

किन्तु परिमल कवि के निम्ननिर्दिष्ट पद्य में कर्तृपद का औचित्य नहीं है—

"हे मालवाधीश्वर ? आपसे पराजित होकर गुर्जर देश के अधिपति न भोजन करते न पानी पीते न स्त्रियों के सम्पर्क में आते, बालू पर सोते, उपभोगों से

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूर रहते तथा सूर्य की प्रचण्ड किरण का सेवन करते (क्योंकि उनके पास अब कुछ रह ही नही गया है)। इससे तो मुझे यही लगता कि आपके चरणाम्बुज के परागस्वरूपी प्रसाद का एक कणमात्र पाने की लोलुपता से मरुभूमि में रहकर वे कठोर तप कर रहे हैं ॥"

इसमें तप करने वाले गुर्जराधीश्वर (कर्त्ता के रूप में निदिष्ट) हैं। गुर्जरपति शब्द से, बाण के पूर्वोद्धृत पद्य में प्रयुक्त कर्तृ पद—'स्तनयुग' शब्द के विपरीत, कोई चमत्काराधान नही होता। जब वे पराजित होने से सभी भोगों से विरहित होकर मरुप्रदेश में दुःखमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं तो फिर उनके लिए तप से अतिरिक्त और क्या करना सम्भव है ? इस प्रकार चमत्काराधायक न होने से यह कर्तृपद अनुचित है ॥

कर्मपदौचित्यं यथा मम लावण्यवत्याम्—

सदा सक्तं शैत्यं विमलजलधारापरिचितं
घनोल्लासः क्ष्माभृत्पृथुकटकपाती वहति यः।
विधत्ते शौर्यश्रीश्रवणनवनीलोत्पलरुचिः
स चित्रं शत्रूणां ज्वलदनलतापं भवदसिः ॥

अत्र निश्चलममलजलधारागतं शैक्ष्ण्यं शीतलत्वं च घनोल्लासो निविडोत्साहः पर्जन्यतुल्योदयश्च क्ष्माभृतां सानुसैन्यनिपाती वहति स शौर्यश्रीश्रवणनवनीलोत्पलतुल्यस्त्वत्खड्गश्चित्रं शत्रूणां संतापं करोतीति यदुक्तं तत्कर्मभूतस्य तापस्य शिशिरतरसामग्रीजन्मनः परं वैचित्र्यं रुचिरमौचित्यमासूत्रितम् ॥

सम्प्रति कर्मपदौचित्यमुदाहरति—कर्मेति।

सदेति। यो भवतोऽसिः खड्गो विमलजलाधारासम्पर्केण परिचितमधिगतमसक्तमप्रतिहतं शैत्यं शितस्य तीक्ष्णस्य भावं तीक्ष्णत्वं सदा वहति बिभर्ति। खड्गं निशितमप्रतिहतरूपेण विधातुं लौहकारस्तं सन्तप्य जले निमज्जयतीति लोके प्रसिद्धम्। नदश्च विमलजलधारया परिचितं सम्बद्धमसक्तं शैत्यं शीतलत्वं सदा बिभर्त्ति। भवतोऽसिर्घनो निविडः प्रकृष्ट उल्लास उद्यमो यस्य तथा, नदश्च घनेन मेघेन घनवद्वा उल्लासो विकासो यस्य तथा वर्त्तते। घनागमे हि नदसम्वर्धनं प्रसिद्धमेव। एवमेवासिः क्ष्माभृतां राज्ञां पृथौ महति कटके सैन्ये पतितुं शीलं यस्य तथाविधः। नदश्चापि क्ष्माभृतां

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर्वतानां पृथोर्महतः कटकात् सानोः पाती प्रवहणशीलः। किञ्च शौर्यश्रियः श्रवणे कर्णे नवस्य सद्योविकसितस्य नीलोत्पलस्य रुचिः कान्तिरिव कान्तिर्यस्य तथाविधोयमसिर्नदतुल्यः सन्नपि शत्रूणां ज्वलदनलतापं विधत्त इति चित्रमद्भुतम्। नदेन नीलोत्पलवता तुल्यस्यास्य भवदसेः शैत्यापादकत्वमुचितम्, परन्त्वस्य तापापादकत्वमिति महदाश्चर्यमिति भावः॥

अत्र तापजनकत्वमेव चमत्कारकारीति तापस्य कर्मण औचित्यं स्पष्टमित्याह—अत्रेत्यादिना॥

कर्मपदौचित्य का उदाहरण मेरी लावण्यवती के इस पद्य में है—

"हे राजन्? आप का यह खड्ग तो नद के समान है, क्योंकि नद भी निर्मल जलधारा के सम्पर्क के कारण 'असक्त शैत्य' अप्रतिहत—अत्यन्त शीतलता को धारण करता है और यह खड्ग भी (पानी चढ़ाने के समय) निर्मल जलधारा के सम्पर्क में आने के कारण 'असक्त शैत्य'—अप्रतिहत तीक्ष्णता धारण करने वाला है; नद भी 'घनोल्लास', 'घन' वर्षा ऋतु में बढ़ने वाला है और यह खड्ग भी 'घन', अर्थात् प्रचण्ड 'उल्लास'—उद्यम—उत्थान वाला है—शत्रु के ऊपर यह बहुत ही प्रचण्ड होकर उठता है; नद भी 'क्ष्माभृत्' पर्वत के 'पृथु' विशाल 'कटक' शिखर से 'पाती' निकलने वाला है और यह खड्ग भी 'क्ष्माभृत्' शत्रु-राजाओं के 'पृथु' विशाल 'कटक' सैन्य के ऊपर 'पाती' गिरने वाला है। इसी तरह नद भी नीलकमल से शोभित होता और यह खड्ग भी क्रूरता-रूपी श्री के कानों मे नवीन नीलकमल की छटा जैसी छटा से सम्पन्न है। अतः इसे शीतलतापादक होना चाहिए था। किन्तु आश्चर्य है कि यह तो शत्रुओं में प्रज्वलित अग्नि के समान सन्ताप उत्पन्न कर रहा है॥"

इस पद्यमे जो आश्चर्य का वर्णन किया गया है उसकी उपपत्ति केवल इसी लिए होती है कि नद के समान होने पर भी खड्ग द्वारा शीतलता के बजाय ताप का उत्पादन किया जा रहा है। इससे स्पष्ट है कि इस पद्य मे विधान-क्रिया के कर्मकारक के रूप मे ताप का निर्देश अत्यन्त उचित है॥

न तु यथा ममैवावसरसारे—

भग्नाहितश्वसितवातविबोध्यमानः
　　काष्ठाश्रयेण सहसैव विवृद्धिमाप्तः।
तापं तनोति निहतारिविलासिनीनां
　　वह्निद्युतिर्भुवननाथ! भवत्प्रतापः॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र विद्रुतारिनिःश्वसितानिलप्रबोध्यमानः काष्ठाश्रयेण दिक्चक्रपूरणेन प्रौढतां प्राप्तः पावकतुल्यस्त्वत्प्रतापः शत्रुकान्तानां तापमात्रं तनोतीति तत्समुचितमाश्चर्यं न किंचित् ॥

अत्रैव प्रसङ्गात् कर्मपदानौचित्यमुदाहरति—न त्विति।

भग्नाहितेति। हे भुवननाथ! भग्नानामहितानां रिपूणां निश्वसितवातेन विबोध्यमानः प्रज्वाल्यमानः, काष्ठानां दिशां (श्लेषेणेन्धनानां च) समाश्रयेण च विवृद्धिमाप्तः सम्वर्धितोत एव वह्निद्युतिरिव द्युतिर्यस्य तथाविधो भवत्प्रतापो निहतानामरीणां विलासिनीनामङ्गनानां तापं तनोति ॥

अत्र प्रतापस्य वह्निद्युतित्ववर्णनेन तेन तापजननवर्णने न किमपि वैचित्र्यमित्यतोत्र तापमिति कर्मपदं नोचितमित्युपपादयति—अत्रेत्यादिना ॥

किन्तु मेरे ही अवसरसार के निम्ननिर्दिष्ट पद्य मे प्रयुक्त 'तापम्' यह कर्मपद उचित नही है—

"हे राजन्? आपका प्रताप, जो मारे गए शत्रुओं के दीर्घ एवं उष्ण निःश्वास के पवन से प्रज्वलित होने एवं काष्ठाश्रित (काष्ठा=दिशा, मे फैल जाने तथा सभङ्गश्लेषद्वारा काष्ठ=इन्धन के आश्रित) होने के कारण अग्निसदृश है, आप द्वारा निहत शत्रुओं की अङ्गनाओं के सन्ताप को बढ़ा रहा है॥"

इस पद्य में राजा के प्रचण्ड प्रताप को शत्रु की अङ्गनाओं के ताप का सम्पादक कहा गया है। किन्तु जब प्रताप को अग्नितुल्य कह दिया गया है तब उसके द्वारा ताप-सम्पादन के वर्णन में कोई विलक्षणता नहीं रह जाती। अतः इस पद्य में प्रयुक्त ताप-स्वरूप कर्म कारक में कोई औचित्य नही है॥

करणौचित्यं यथा गौडकुम्भकारस्य—

लाङ्गूलेन गभस्तिमान् वलयितः प्रोतः शशी मौलिना
व्याधूता जलदाः सटाभिरुडवो दंष्ट्राभिरुत्तम्भिताः।
प्रोत्तीर्णो जलधिर्दृशैव हरिणा स्वैरट्टहासोर्मिभि-
र्लङ्केशस्य च लङ्घितो दिशि दिशि प्राज्यः प्रतापानलः॥

अत्र हरिणा हनुमता जलनिधितरणे तरणिर्लाङ्गूलेन वलयितः किरीटप्रान्तेन शशी प्रोतः सटाभिर्मेघा व्याधूतास्तारा दंष्ट्राभिरायासितास्तीर्णोऽब्धिर्दृष्ट्यैवाट्टहासतरङ्गैर्लङ्केशस्य विस्तीर्णः प्रतापाग्निः शमित इति बहुभिः करणपदैरुत्साहाधिवासितैर्विस्मयशिखरारोहणसोपा-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नैरिव रघुपतिप्रभावारम्भविजयध्वजायमानस्य पवनसूनोरौचित्याति-शयः प्रकाशितः ॥

अधुना क्रमप्राप्तं करणकारकौचित्यं निदर्शयति—**करणेति** ।

लाङ्गूलेनेति । हरिणा वानरेण हनूमता गभस्तिमान् सूर्यो लाङ्गूलेन पुच्छेन वलयितो वेष्टितः, शशी चन्द्रश्च मौलिना प्रोतो व्याप्तः, जलदा मेघाश्च सटाभिः स्कन्धस्थितैर्लोमभिर्व्याधूता विक्षिप्ताः, उडवस्तारका दंष्ट्राभिरुत्तम्भिता निस्तेजसः कृताः, जलधिः समुद्रश्च दृशैव प्रोत्तीर्णो लङ्घितः, लङ्केशस्य रावणस्य च दिशि दिशि प्राज्यो विस्तीर्णः समृद्धः प्रतापानलः स्वैरट्टहासस्योर्मिभिस्तरङ्गैर्लङ्घितः शमितः । सायंकालिकं प्रस्थानवर्णनम् ॥

अत्र लाङ्गूलादीनां करणानामौचित्यमुपपादयति—**अत्रेत्यादिना** । रघुपतेः प्रभावस्यारम्भे विजयध्वज इवाचरतो हनूमतो विस्मयस्य शिखरमारोढुं सोपानभूतैरिव लाङ्गूलादिभिरनेकैः करणैः सूर्यादिवलयनादिसाधनीभूतैः प्रतिपादित औचित्यातिशयः ॥

कारण-कारक के औचित्य के उदाहरण गौड़ कुम्भकार के इस पद्य में उपलब्ध हैं—

"हनूमान् ने सूर्य को अपने पुच्छ से वेष्टित कर लिया, चन्द्रमा को अपने मस्तक से व्याप्त कर लिया, बादलों को अपने केसरों से तोड़-फोड़ दिया, तारों को अपने दांतों की छटा से निस्तेज बना दिया, समुद्र को तो दृष्टि-मात्र से ही लांघ गए और रावण के सब दिशाओं में व्याप्त प्रतापानल को भी अपने अट्टहास की तरङ्गों से हीं शान्त कर दिया ॥"

इस पद्य में यह वर्णन किया गया है कि हनूमान् ने जब सीता के अन्वेषणार्थ प्रस्थान किया तो उन्होंने अपने पुच्छ आदि से सूर्य आदि को भी ढक लिया । इसमें रामचन्द्र के प्रताप-प्रदर्शन के प्रारम्भ में विजयध्वज के समान पवनसुत हनूमान् के जो उत्साहसूचक पुच्छ आदि साधन निर्दिष्ट हैं उनसे सहृदय को अत्यन्त विस्मय होता है । अतः इन करणों का औचित्य स्पष्ट है ॥

न तु यथा बाणस्य—

> जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो
> विभित्सया यः क्षणलब्धलक्ष्यया ।
> दृशैव कोपारुणया रिपोरुरः
> स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्रपाटलम् ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र भगवतो नृसिंहस्य कोपरक्तया दृष्ट्यैव क्षणलब्धलक्ष्यया हिरण्यकशिपोर्वक्षः स्वयं भयाद्भिन्नमिवेति युदुक्तं तन्महोत्साहपराक्रमस्य प्रतिनायकस्य रिपोः प्रधाननायकप्रतापोद्दीपनोपकरणीभूताधिकधैर्यस्य स्वयं विह्वलतया हृदयस्फुटनमित्युपचितमनौचित्यं 'दृशैव' इति करणपदस्य शिरसि विश्रान्तम् ॥

सम्प्रति प्रसङ्गात् करणपदानौचित्यमुदाहरति--**न त्विति** ।

जयतीति । स उपेन्द्रो नृसिंहो जयति सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते यो रिपुवक्षोविभित्सया भेदितुं विदारयितुमिच्छा विभित्सा तया दूरतो दूरादेव क्षण लब्धं लक्ष्यं हिरण्यकशिपुवक्षो यया तया कोपेनारुणया दृष्ट्यैव न तु नखोद्भेदनेन रिपोर्हिरण्यकशिपोः पाटलं भयान्नृसिंहस्यैव स्वयमेव भिन्नमिव वक्षोऽस्रपाटलं रक्तवत्पाटलं चकार । नखादिना विदीर्णमप्युरो रक्तपाटलं भवति; अत्र तु कोपारुणाया दृशः पातेन विदीर्णं तत् पाटलमभूदिति तात्पर्यम् ॥

यद्वा स नृसिंहः कोपारुणया दृशैव दूरान्निक्षिप्तया रिपोरुरस्तथा रक्तपाटलं चकार येन तद्भयात् स्वयं भिन्नमिवादृश्यतेत्येव व्याख्या विधेया ॥

अत्रानौचित्यं दृशेति करणस्योपपादयति—**अत्रेत्यादिना** । एष चात्र सन्दर्भार्थः—प्रतिनायकस्य बलवत्त्वादिवर्णनं तज्जयिनो नायकस्य पराक्रमातिशयं सूचयतीति प्रसिद्धम् । प्रकृतेपि नायकस्य नृसिंहस्य भगवतः पराक्रमातिशयस्तदैव सूच्येत यदा प्रतिनायकस्य बलवत्त्वादि वर्णितं स्यात् । न चैवं कविना कृतम् । तेन हि दृशैव हिरण्यकशिपुवक्षसो भिन्नत्वमुत्प्रेक्षमाणेन प्रतिनायकस्य तथा निर्बलत्वं प्रतिपादितं येन तद्विजयेपि नृसिंहस्य पराक्रमातिशयो न प्रतीयत एव । अतो वक्षोविदारकत्वेन दृशः करणतयोपादानमनुचितमिति ॥

वयन्त्वत्र मन्यामहे–अस्थान एवायं प्रलापः । न ह्यत्र दृश उपादानं वक्षोभेदकत्वेन कविना कृतम् येन तद्वक्षसोऽबलत्वम्प्रतीयमानं प्रतिनायकाबलत्वसूचनमुखेन नायकपराक्रमातिशयप्रतिपादनासमर्थं स्यात् । दृशस्त्वत्रास्रपाटलीकरण एव करणत्वम्, पाटलीभूतं च तत्स्वयमेव विदीर्णमिवेत्युत्प्रेक्षेति सर्वमपीहोक्तमनुचितमेव ग्रन्थकृतः । अत एव स्वयमित्यपि संगच्छते ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किन्तु महाकवि बाण भट्ट के निम्ननिर्दिष्ट पद्य में करण का उचित प्रयोग नहीं किया गया है—

"वे भगवान् नृसिंह सर्वोत्कृष्ट (सर्वश्रेष्ठ) हैं जिन्होंने (शत्रु के वक्षःस्थल को) विदीर्ण करने की इच्छा से क्षणभर के लिए हीं अपने लक्ष्य (शत्रु-वक्षःस्थल) से सन्निकृष्ट अपनी कोपरक्त दृष्टि से ही हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को रक्त के समान लाल बना दिया मानो वह उनके भय से अपने आप विदीर्ण हो गया हो ॥"

इस वर्णन मे बहुत अनौचित्य है, क्योंकि हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को दृष्टिपात मात्र से विदीर्ण कह दिया गया है। इससे हिरण्यकशिपु की अत्यन्त दुर्बलता प्रकट होती है जो अन्ततः नायक भगवान् नृसिंह के पराक्रमातिशय का प्रतिबन्धक है। नायक का पराक्रमातिशय तो तभी व्यक्त हो पाता यदि प्रतिनायक को अत्यन्त प्रबल बताया जाता, क्योंकि बलवान् शत्रु को जीतने में हीं तो पौरुष की प्रतीति हो सकती है। किन्तु कवि ने ऐसा नहीं किया। अतः यह वर्णन अनुचित है। इस अनौचित्य का मूल यहां करण के रूप में उपात्त 'दृष्टि' (दृशा) ही है, क्योंकि इससे विदीर्ण हृदय की दुर्बलता स्पष्ट है। अतः अन्ततोगत्वा यह अनौचित्य दृष्टिस्वरूप करण में ही पर्यवसित हो जाता है ॥

सम्प्रदानौचित्यं यथा भट्टप्रभाकरस्य—

दिङ्मातङ्गघटाविभक्तचतुराघाटा मही साध्यते
सिद्धा सापि वदन्त एव हि वयं रोमाञ्चिताः पश्यत ।
विप्राय प्रतिपाद्यते किमपरं रामाय तस्मै नमो
यस्मादाविरभूत्कथाद्भुतमिदं यत्रैव चास्तं गतम् ॥

अत्र दिग्गजचतुरस्रा भूः साध्यते, सा च सिद्धा हेलयैवान्नमुष्टिरिवैकस्मै विप्रमात्राय प्रतिपाद्यत इति निरतिशयौदार्याश्चर्यचमत्काररुचिरौचित्यचर्वणया वयं रोमाञ्चिता इति पश्यत रोमाञ्चस्य प्रत्यक्षपरिदृश्यमानत्वात्, किमपरमपूर्वत्यागिने भार्गवाय तस्मै नम इति विप्रायेति सम्प्रदानपदगत एवोत्कर्षविशेषः प्रकाशते ॥

सम्प्रदानौचित्यं क्रमागतमुदाहरति—सम्प्रदानेति ।

दिङ्मातङ्गेति । दिङ्मातङ्गानां दिग्गजानां घटया समूहेन विभक्ताश्चत्वार आघाटाः सीमानो यस्यास्सा मही साध्यते वशीक्रियते, सिद्धा वशी-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृता च सा कस्मैचिद् विप्राय कश्यपाय सर्वथानुपकारिणे प्रतिपाद्यत इति वदन्त एवैतत्कथनसमकालमेव वयं रोमाञ्चिता भवाम इति पश्यत। अत्र वाक्यार्थः कर्म दृशिक्रियायाः। एवं यस्मात्परशुरामात् कथासम्बन्धयद्भुतमिदमाविरभूत् यत्रैव चेदमस्तं गतम् तथाविधानुपमदानशीलस्य परशुरामस्य विषये किमपरं महत्त्वख्यापकं वक्तव्यम्? न किञ्चिदपि। केवलन्तस्मै नमोऽस्माकमस्तु ॥

अत्र **साध्यते** इति **प्रतिपाद्यते** इति च वर्त्तमानकालप्रयोगस्थाने **साधिता** इति **प्रतिपादिता** इति च भूतप्रत्ययान्तः पाठः साधीयान्, अत एव चात्रान्ते **अभूत्** इति भूतकालप्रयोगोपि समुपपद्यते ॥

अत्र सम्प्रदानौचित्यं वर्त्ततेऽनुपकारिणो विप्रस्य तत्त्वेनोपन्यासात्। यच्च दानमनुपकारिणे दीयते तदेव सात्त्विकं दानम् उक्तं शास्त्रे। एतादृशसम्प्रदानमाहात्म्येनैव परशुरामस्योत्कर्षप्रतीतेः सम्प्रदानमत्रोचितमिति पद्यार्थप्रदर्शनपुरस्सरमाह—**अत्रेत्यारभ्य प्रकाशत इत्यन्तेन** ग्रन्थेन।

अत्र ग्रन्थकृदभिमततयास्माभिरपि विप्रायेत्यतःपरमनुपकारिण इत्यध्याहृत्य व्याख्यातम्। किन्त्वेवम्विधस्याध्याहारस्य क्लिष्टतया सम्प्रदानौचित्यस्योदाहरणान्तरं मृग्यम् ॥

सम्प्रदानौचित्य का उदाहरण प्रभाकर भट्ट के निम्नोद्धृत पद्य में उपलब्ध है—

"देखो, हम सब यह सुनते हीं रोमाञ्चित हो जाते कि भगवान् परशुराम जी ने दिग्गजों से सब तरफ से वेष्टित समस्त भूमण्डल को जीत लिया और जीत कर उसे एक अनुपकारी ब्राह्मण कश्यप को दान रूप में समर्पित कर दिया। जिन परशुराम में ऐसी आश्चर्ययुक्त कथा का आदि तथा अन्त हो गया उनके महत्त्व के बारे मे अधिक क्या कहा जाय? केवल उन्हें हमारा अभिवादन है ॥"

इस वर्णन मे परशुराम के परमोत्कर्ष की प्रतीति का कारण एकमात्र सम्प्रदान 'विप्र' है। अतः इसमे सम्प्रदानगत औचित्य है ॥

न तु यथा राजशेखरस्य—

पौलस्त्यः प्रणयेन याचत इति श्रुत्वा मनो मोदते
देयो नैष हरप्रसादपरशुस्तेनाधिकं ताम्यति।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तद्वाच्यः स दशाननो मम गिरा दत्ता द्विजेभ्यो मही
तुभ्यं ब्रूहि रसातलत्रिदिवयोर्निर्जित्य किं दीयताम् ॥

अत्र रावणदूतेन परशुं याचितो भार्गवो ब्रूते—नैष हरप्रसादलब्धः परशुर्दानयोग्यः। तत्तस्मादस्मद्वचसा स दशग्रीवो वाच्यः—पृथ्वी मया कश्यपाय प्रतिपादिता, तुभ्यं पातालत्रिदिवयोर्मध्यात्किं निर्जित्य दीयताम् इत्यनुचितं मुनेर्लोकहितप्रवृत्तस्य त्रैलोक्यकण्टकभूताय राक्षसाय भुवनप्रतिपादनम् ॥

प्रसङ्गात् सम्प्रदानानौचित्यमुदाहरति—न त्विति।

पौलस्त्य इति। परशुयाचनाय रावणेन प्रेषितं दूतम्प्रति भार्गवस्येदं वचनम्। पौलस्त्यो रावणः प्रणयेन प्रीत्या मत्तः परशुं याचत इति श्रुत्वा मनो मम मोदतेऽवश्यमेव परन्तु यतोयं परशुर्हरस्य शङ्करस्य प्रसादेन लब्धोतोयं न दानयोग्य इति हेतोर्याचनानन्तरमपि तमनर्पयतो मम मनोधिकं ताम्यति चेखिद्यते। अतो मम गिरा वचनेन दशाननो वाच्यः—'अयं परशुर्हरप्रसादलब्धत्वान्मही च कश्यपाय प्रदत्तत्वाद्दानायोग्यावेवेति द्वाभ्यामाभ्यामितरत् किमन्यद्रसातलस्थं स्वर्गस्थं वा वस्तु विजित्य तुभ्यं रावणाय परशुप्रतिनिधिरूपेण मया दीयतामिति ब्रूहि' इति ॥

अत्र तुभ्यं रावणायेति सम्प्रदानपदम्। रावणश्च सर्वलोककण्टक इति तस्मै लोकहितप्रवृत्तेन मुनिना भार्गवेण कस्यचिदपि वस्तुनो दानमनुचितम्। दानस्यानौचित्यं चापात्रसम्प्रदानकत्वमिह वर्तत एवेति भवत्यनौचित्यमन्ततः सम्प्रदानरावणनिष्ठमित्युपपादयति पद्यार्थविवरणपूर्वकम्—अत्रेत्यादिना ॥

किन्तु राजशेखर के निम्ननिर्दिष्ट पद्य मे 'तुभ्यम्' पद से रावण-स्वरूप सम्प्रदान का उपादान अनुचित है—

"रावण मुझसे प्रेमपूर्वक मेरा फरसा मांग रहा है—यह सुनकर मन प्रसन्न हो उठा है किन्तु मैंने इसे भगवान् शङ्कर से उनकी प्रसन्नता के प्रतीक रूप में प्राप्त किया है, अतः यह किसी को भी नहीं दिया जा सकता। इस प्रकार याचना के वाद भी न देने के लिए वाध्य होने से मेरा मन वहुत खिन्न हो रहा है। तुम रावण को मेरा यह सन्देश पहुंचा देना—'शङ्कर के प्रसाद के रूप मे प्राप्त यह फरसा तो मैं दे नहीं सकता, यह पृथिवी भी मैंने एक विप्र (कश्यप) को पहले ही दे दी है, अतः यह भी मैं तुझे नहीं दे सकता। इन दो के अतिरिक्त भूलोक अथवा

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोक की कौन सी वस्तु तुझे प्रिय है जिसे जीतकर में तुझे दे दूं—यह बता' ॥''

इस पद्य मे रावण सम्प्रदान है। वह समस्त ब्रह्माण्ड का कण्टक होने से दान देने के लिए पात्र नहीं है। ऐसी स्थिति मे सर्वलोकहितैषी भार्गव द्वारा उसे दान देने का उपक्रम निश्चित ही अनुचित है। यह अनौचित्य अन्ततः दान-क्रिया के सम्प्रदान कारक अपात्र रावण में ही पर्यवसित होता। अतः यहां रावण-स्वरूप सम्प्रदान कारक अनुचित है॥

अपादानौचित्यं यथा मालवरुद्रस्य—

एतस्माज्जलधेर्मितामुकणिकाः काश्चिद् गृहीत्वा ततः
पाथोदाः परिपूरयन्ति जगतीं रुद्धाम्बरा वारिभिः।
भ्राम्यन्मन्दरकूटकोटिघटनाभीतिभ्रमत्तारकां
प्राप्यैकां जलमानुषीं त्रिभुवने श्रीमानभूदच्युतः॥

अत्र यदुक्तमेतस्मान्महोदधेः परिमिताम्बुकणिकाः प्राप्य जलदा जगत्पूरयन्ति, तथा भ्रमन्मन्दरकूटकोटिसंघट्टत्रासतरलतारकामेकां जलमानुषीं श्रियं प्राप्य श्रीमानच्युतोऽभूदिति तेन सागरगतनिरतिशयोत्कर्षविशेषः प्रदर्शितः। तत्र एतस्माज्जलधेरित्येतपदमौचित्यस्य मूलभूमिः॥

सम्प्रति क्रमप्राप्तमपादानौचित्यं निदर्शयति—अपादानेति।

एतस्मादिति। ततोऽवर्णनीयमाहात्म्याद् एतस्मात्पुरोदृश्यमानाज्जलधेः सकाशान्मितस्य परिमितस्याम्बुनो जलस्य काश्चित् कणिका आदाय रुद्धाम्बरा रुद्धं व्याप्तमम्बरमाकाशं यैस्तथाविधाः सन्तः पाथोदा मेघा इमे वारिभिर्जगतीं वसुधां पूरयन्ति। अतश्च जलधिरयं प्रशस्य इति भावः। इतोप्ययं प्रशस्य इत्याह—**भ्राम्यदिति।** भ्राम्यतो घूर्णमानस्य समुद्रमथनकाले मन्दरस्याचलस्य कूटकोटेः शृङ्गाग्रभागस्य घटनया सम्पर्केण या भीतिस्तया भ्राम्यन्त्यौ चञ्चले तारके कनीनिके यस्यास्तामेकां जलस्थां मानुषीमङ्गनां लक्ष्मीरूपां प्राप्याच्युतो विष्णुरपि त्रिभुवने श्रीमान् श्रीसम्पन्नोऽभूत्॥

अत्र चतुर्थचरणे विधेयाविमर्शपरिहाराय **प्राप्यैकां जलमानुषीमपि हरिः श्रीमानिति प्रोच्यते** इति पठनीयम्॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र जलधिरपादानम् । प्रकृतवर्णनेन चास्य परमोत्कर्षो व्यज्यत इत्यपादानमत्रोचितमित्याह—**अत्रेत्यादिना** ॥

अपादानौचित्य का उदाहरण मालवरुद्र के इस पद्य में देखा जा सकता है—

"यह समुद्र इतना महान् है कि ये बादल इसी से थोड़े से जल-कण लेकर आकाश को अवरुद्ध करते हुए इस भूमण्डल को जलप्लावित कर देते। भगवान् विष्णु भी इसी से उत्पन्न एक अङ्गना लक्ष्मी, जिसकी आँखों की पुतलियां समुद्र मे घूमते मन्दराचल के शिखर की नोक के योग से चञ्चल हो रही है, को प्राप्त कर समस्त ब्रह्माण्ड मे 'श्रीमान्' कहलाने लगे ॥"

इस वर्णन मे सागर का परमोत्कर्ष इसका अपादान कारक के रूप मे निर्देश से ही व्यक्त होता। अतः इसमे अपादानौचित्य स्पष्ट है ॥

न तु यथा भट्टेन्दुराजस्य—

आदाय वारि परितः सरितां मुखेभ्यः
किं नाम साधितमनेन महार्णवेन ।
क्षारीकृतं च वडवादहने हुतं च
पातालमूलकुहरे विनिवेशितं च ॥

अत्र महार्णवव्यपदेशेनान्यायोपार्जितद्रविणदुर्व्ययकारिणः सत्संविभागविमुखस्य कस्यचिदुच्यते । सरितां मुखेभ्यः समन्तात्तोयमादायापात्रेभ्यः प्रतिपादितं दूषितम् । यत्त्वत्र सरिद्भ्यः समादायेति वक्तव्ये सरिन्मुखेभ्य इत्युक्तं तेन मुखशब्दस्य नैरर्थक्यादत्रानौचित्यमेव पर्यवस्यति ॥

प्रसङ्गादपादानानौचित्यमुदाहरति—**न त्विति** ।

आदायेति । अत्र द्वितीयचरणे काव्यप्रकाशादौ **किन्तावदर्जितमनेन दुरर्णवेन** इति, एवमेव **पातालमूल** इतिस्थाने **पातालकुक्षि** इति च पाठान्तरं दृश्यते । अत्र द्वितीयचरणे **किं नाम साधितम्** इति, **महार्णवेन** इत्यत्र च **दुरर्णवेन** इति, **पातालमूल** इत्यत्र च **पातालकुक्षि** इति पाठान् युक्तान् मन्यामहे । पद्यार्थस्तु—

अनेन महार्णवेन लवणसमुद्रेण परितः सर्वतः सरितां नदीनां मुखेभ्यः सङ्गमस्थानेभ्यो वारि जलमादाय किं साधितम् ? न किमप्युचितं प्रसा-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

घितमित्यर्थः। तथाहि—मधुरमपि सरितां जलं स्वदुष्प्रभावात् क्षारीकृतं लवणास्वादं विहितम्, वडवादहने वडवानले हुतम्, पातालं मूलं यस्य तस्मिन् कुहरे विले विनिवेशितं विनिक्षिप्तं चेति। एतैश्च जलस्यास्य लोकानुपयोगित्वमुक्तं भवति ॥

अत्र सादृश्यमात्रहेतुकाऽप्रस्तुतप्रसंशा, परेभ्यो धनमाहृत्यासद्व्ययं कुर्वतो दुरीश्वरस्य प्रकृतत्वादर्णवस्य चाप्रकृतस्य वर्णनादिति वोध्यम् ॥

अत्रानौचित्यमपादानस्य प्रतिपादयति—**अत्रेत्यादिना**। सत्संविभागोत्र सन् संविभागो दानमथवा सद्भ्यः सज्जनेभ्यः संविभागो दानमिति तस्माद् विमुखस्य दुर्व्ययकारिणो नृपाधमस्येति सम्बन्धः। अत्र च सरिद्भ्य इत्यस्यैव पर्याप्तत्वे मुखानामपादानत्वेनोपादानमपार्थकमित्यनौचित्यमिति ग्रन्थार्थः ॥

वयन्त्ववगच्छामः—सरितां सङ्गतानामेव जलस्य जलधिनाऽऽहरणादिदं सङ्गतमेवेति ॥

किन्तु भट्टेन्दुराज के निम्ननिर्दिष्ट पद्य मे प्रयुक्त अपादान कारक मे औचित्य नहीं है—

"इस दुष्ट महासमुद्र ने सब तरफ से अपने साथ मिली हुई नदियों के जल को आत्मसात् करके क्या किया? एक तो सब नदियों के मधुर जल को खारा बना दिया, दूसरे वड़वानल मे उसकी आहुति दे दी और तीसरे पाताल तक विस्तीर्ण विल में छिपा दिया!"

यह किसी अधम नृप का अप्रस्तुतप्रसंशामूलक वर्णन है जो लोगों से धन वसूल कर उसका दुरुपयोग करता है। इसमें नदियों को ही जलाहरण-क्रिया का अपादान कारक मान लेना पर्याप्त था। किन्तु कविने व्यर्थ ही नदियों के मुखों (सङ्गमों) को अपादान कारक का स्थान दे दिया है। अतः इसमे अनौचित्य विद्यमान है ॥

अधिकरणौचित्यं यथा कुन्तेश्वरदौत्ये कालिदासस्य—

इह निवसति मेरुः शेखरः क्ष्माधराणा-
मिह विनिहितभाराः सागराः सप्त चान्ये।
इदमहिपतिभोगस्तम्भविभ्राजमानं
धरणितलमिहैव स्थानमस्मद्विधानाम् ॥

अत्र महाराजदूतोऽपि सामन्तास्थाने स्वप्रभुसमुचितगौरवपूजार्हमासनमनासाद्य कार्यवशेन भूमावेवोपविष्टः प्रागल्भ्यगाम्भीर्येणैवं ब्रूते

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदस्मद्विधानां वसुधातल एव भुजगपतिभोगस्तम्भप्राग्भारनिष्कम्पे धरासने स्थानं युक्तं यस्मादिहैव मेरुरचलचक्रवर्ती समुपविष्टः सप्तसागरा अब्धयश्च, तत्तुल्यतैवास्माकमित्यौचित्यमधिकरणपदसम्बद्धमेव ॥

अधिकरणौचित्यमुदाहरति—**अधिकरणेति** ।

इहेति । विक्रमादित्यस्य दूतः कुन्तेश्वरसदसि समुचितस्थानमप्राप्य भूमावुपविशन्नाहेदम् । क्ष्माधराणां पर्वतानां शेखरो मूर्धन्यो मेरुरिहैव धरणितले निवसति, सप्त सागराः सिन्धवोन्ये च नदा इहैव धरणितले विनिहितभाराः कृताश्रयाः, इदमेव धरणितलमहिपतेः शेषनागस्य भोगः फणैव स्तम्भस्तत्र विभ्राजमानमस्ति । यत एवमुत्कृष्टमिदं धरणितलमेव सर्वेषामुत्कृष्टानामाश्रयोतोऽस्मद्विधानां महिमशालिनां स्थानमपीहैव धरणितले । विक्रमप्रेषितत्वेन दूतस्यापि तस्योन्नतासनाधिकारोऽवसेयः ॥

अत्र प्रथमपादे **क्ष्माधराणाम्** इत्यनुचितम्, क्ष्माधराणां क्ष्माश्रितत्वानुपपत्तेः । अतः तत्स्थाने **पर्वतानाम्** इति पठनीयम् ॥

औचित्यमुपपादयत्यत्र—**अत्रेत्यादिना** । सामन्तानामास्थाने सामन्तोपवेशनस्थाने सभामण्डपस्य आसन्द्यादौ । अत्र स्वाधिकरणभूतस्य धरणितलस्य मेर्वाद्याधारतया महिमातिशयख्यापनादिदमधिकरणमुचितमेवास्ते ॥

अधिकरण कारक के औचित्य का उदाहरण कालिदासकृत कुन्तेश्वरदौत्य काव्य के निम्नोद्धृत पद्य मे द्रष्टव्य है—

"इसी भूतल पर पर्वतों का राजा सुमेरु विद्यमान है, सात महासमुद्र तथा अन्यान्य नदी-नद इसी पर टिके हुए हैं, यही भूतल है जो सर्पराज शेषनाग के फणारूपी स्तम्भ पर विराजमान है । यतः यह भूतल इतना महत्त्वपूर्ण है अतः हमारे जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के लिए भी यही उचित स्थान है ॥"

महाराज विक्रमादित्य द्वारा प्रेपित होने के कारण उच्चासन प्राप्त करने योग्य दूतको जब कुन्तेश्वर की सभा मे उचित स्थान न मिला तब उसने साभिमान उक्त बात कही है। इसमें अपने को सुमेरुतुल्य महान् बतलाने वाले दूत के लिए भूतल का अधिकरण के रूप मे निर्देश उचित ही है ॥

न तु यथा परिमलस्य—

तत्र स्थितं स्थितिमताम्वर देव ! दैवाद्
भृत्येन ते चकितचित्तमियन्त्यहानि ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्कम्पिनि स्तनतटे हरिणेक्षणानां
हारान्प्रनर्तयति यत्र भवत्प्रतापः ॥

अत्र त्वद्भृत्येन मया तत्र तस्मिन्देशे स्थितं यत्र भवत्प्रतापः कम्पतरलस्तनतटे हरिणदृशां हारान्प्रनर्तयतीति यदुक्तं तेन शौर्य-शृङ्गारगुणोत्कर्षस्तुतौ सर्वदिग्गमनाविच्छिन्नप्रसरः प्रतापः परिमित्यं प्राप्तः । एकत्र परिच्छिन्ने देशे मया तत्र स्थितं यत्र त्वत्प्रतापस्तरुणी-स्तनतटेषु हारतरलनं करोत्यन्यदेशे चेति विलक्षणमुपलक्षणम् । सर्वगतश्चेत्प्रतापस्तत्सर्वत्रैव मया स्थितमिति वक्तव्ये तत्रेत्येकदेशा-भिधायि पदं नोपपद्यते, दस्युमात्रस्याप्येकदेशे जृम्भमाणप्रतापत्वात् । तदत्राधिकरणपदगतमनौचित्यमुपलभ्यते । तत्र तत्र मया स्थितं यत्र यत्र भवत्प्रताप इत्येव स्तुत्युचितं युक्तियुक्तं स्यात् ॥ २० ॥

प्रसङ्गादधिकरणानौचित्यमुदाहरति—न त्विति ।

तत्रेति । हे स्थितिमताम्वर ? मर्यादाशालिनां श्रेष्ठ देव ? ते तव भृत्येन मया चकितचित्तं यथा तथेति क्रियाविशेषणमेतत् । तत्र देशे रिपुप्रदेशे इयन्त्यहानि दिनानि दैवात् स्थितम् । अकर्मकधातुयोगेऽह्नां कर्मत्वाद् द्वितीया । यत्र भवत्प्रतापो हरिणेक्षणानां मृगलोचनानां रिपुस्त्रीणामुत्कम्पिनि भयात्कम्पनशीले स्तनतटे हारान् मौक्तिकमाल्यानि प्रनर्तयति तरलीकरोति । भवद्भयाद् रिपुस्त्रीणां हृदये तथा सन्त्रासो येन तासां स्तनतटस्योत्कम्पित-त्वात्तत्र हारास्तरला भवन्तीति तात्पर्यम् । अत्र **प्रवर्त्तयति** इति क्वाचित्कः पाठो न मनोरम इत्यस्माभिरुपेक्षितः ॥

अत्राधिकरणानौचित्यमुपपादयति—**अत्रेत्यादिना** । सर्वदिग्गमनेनावि-च्छिन्नः प्रसरो यस्य सः । अपरिमेय इत्यर्थः । राज्ञः प्रतापस्योत्कर्ष-स्तदैव प्रतीयेत यदायं सर्वदेशव्याप्तः स्यात् । नचैवं वर्णितमत्रापि तु सङ्कुचित एव प्रदेशे तदवस्थानं कथितं कविनेति परिच्छन्नदेशप्रतिपादक-मिदमधिकरणं नोचितं वर्णितमिति भावः । चौरादिप्रतापस्याप्येकदेश-व्यापनात्तथा सति राज्ञः प्रतापस्यापकर्ष एव सूच्येत । वस्तुतस्तु चौरादेः प्रतापस्यैवासम्भवाच्चिन्त्यमेतत् । न चैतदेकदेशवृत्तित्ववर्णनमुपलक्षणं देशा-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न्तरव्याप्तेरपीति वक्तुं युक्तम् , यत्र तत्रेत्यनेन प्रतापस्य देशविशेषावस्थित्यवधारणादुपलक्षणत्वासम्भवात् । एतदेवाह—**विलक्षणमुपलक्षणमिति** । विगतं लक्षणं यस्मात्तत् । उपलक्षणस्य हि लक्षणमवधारणातिरिक्तविषयकत्वम्, तच्च प्रकृते नास्तीत्याशयः । प्रतापोत्कर्षप्रतिपादकन्तु वर्णनं यथा भवेत्तथा प्रदर्शयति—**तत्र तत्रेत्यादिना** । वीप्सा व्याप्त्यर्था ॥

वस्तुतस्तु मित्रदेशे प्रतापावस्थानस्य सत्त्वेपि तेन प्रतापस्योत्कर्षाप्रतीतेः शत्रुदेशावस्थानेन च राज्ञो जयित्वप्रतिपत्तेः प्रतापोत्कर्षाभिव्यक्तिसम्भवान्नेदं युक्तं ग्रन्थकृतः ॥

किन्तु परिमल कवि के निम्नलिखित पद्य मे अधिकरणौचित्य नही है—

"हे मर्यादाशालियों मे श्रेष्ठ राजन् ? सौभाग्यवश आपका यह दूत विस्मित चित्त से इतने दिनों तक उसी देश मे रहा जिस देश में आपका प्रताप आपके द्वारा पराभूत शत्रुओं की मृगनयनियों के भय से कम्पमान स्तनतट पर मुक्ताहार को स्थिर नहीं रहने देता ॥"

राजा के शौर्य एवं श्रृङ्गार का उत्कर्ष प्रतिपादनीय है । किन्तु यह तभी सम्भव होता यदि राजा के प्रताप के सव दिशाओं में अप्रतिहत प्रसार का वर्णन किया गया होता । किन्तु कवि ने प्रताप को एक देश—शत्रुदेश मात्र मे अवस्थित कहकर उसे सीमित कर दिया है । इसमें प्रताप का उत्कर्ष की जगह अपकर्ष ही प्रतीत होता । इस एकदेशावस्थान को देशान्तरावस्थान का उपलक्षण मानकर प्रतापोत्कर्ष का प्रतिपादन मानना भी सम्भव नहीं, कारण जहां देशादि का अवधारण हो जाता है वहां उपलक्षण मानने का प्रश्न ही नही उठता । प्रकृत में तृतीय-चतुर्थ चरणों से प्रताप के अधिकरण देशविशेष का अवधारण स्पष्ट है । अतः उपलक्षणविधया भी इस वर्णन को प्रतापोत्कर्षके अनुरूप नही कहा जा सकता । एकदेशावस्थान मात्र से तो प्रताप का उत्कर्ष कथमपि सिद्ध नही होता, क्योंकि तब तो गुण्डों के प्रताप का भी उत्कर्ष मानना होगा, यतः वह भी किसी एक देश में तो रहता ही है ॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि यहां राजा के प्रताप के अधिकरणरूप में एक देश का निर्देश उचित नहीं है । हाँ, यदि 'जिस-जिस देश मे आपका प्रताप फैला हुआ है उन देशों में मैं इतने दिनों तक रहा' ऐसा कहा गया होता तो निश्चित हीं अधिकरणौचित्य होता, क्योंकि 'जिस-जिस' इस वीप्सा (द्विरुक्ति) से इसकी व्यापकता प्रकट हो जाती ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिङ्गौचित्यं दर्शयितुमाह—

उचितेनैव लिङ्गेन काव्यमायाति भव्यताम् ।
साम्राज्यसूचकेनेव शरीरं शुभलक्ष्मणा ॥ २१ ॥

प्रस्तुतार्थौचितेन लिङ्गेन काव्यं भव्यतामुपयाति राजलक्षणेनेव शरीरम् ॥

इदानीं क्रमप्राप्तं लिङ्गौचित्यं निरूपयति—लिङ्गौचित्यमिति ।

उचितेनेति । शुभलक्ष्मणा साम्राज्यसूचकेन करतलादौ चक्रादिना । शेषं स्पष्टम् ॥ २१ ॥

गद्यबन्धः स्फुटार्थः ॥

अब क्रमप्राप्त लिङ्गौचित्य का निरूपण किया जा रहा है—

जिस प्रकार साम्राज्यसूचक शुभ चिह्नों द्वारा शरीर सुशोभित होता उसी प्रकार प्रस्तुत अर्थ के अनुरूप लिङ्ग से हीं काव्य भी सुशोभित होता है ॥ २१ ॥

गद्यांश का अर्थ पूर्ववत् है ॥

यथा मम ललितरत्नमालायाम्—

निद्रां न स्पृशति त्यजत्यपि धृतिं धत्ते स्थितिं न क्वचिद्
दीर्घां वेत्ति कथां व्यथां न भजते सर्वात्मना निर्वृतिम् ।
तेनाराधयता गुणस्तवजपध्यानेन रत्नावलीं
निःसङ्गेन पराङ्गनापरिगतं नामापि नो सह्यते ॥

अत्र वत्सेश्वरस्य रत्नावलीविरहविधुरचेतसः स्मरावस्थासमुचितं विदूषकेण सुसङ्गतायै यदभिहितम्—निद्रां न स्पृशति, धृतिं त्यजति, स्थितिं न धत्ते, दीर्घां कथां व्यथामिव वेत्ति, निर्वृतिं न भजते, तां विना तेन तद्गुणजापिना तद्ध्याननिरतेन जनसङ्गत्यागिनाऽन्यासामङ्गनानां नामापि न सह्यते । तत्र स्थितिधृतिकथानिर्वृतीनां स्त्रीलिङ्गाभिधानेनाङ्गनात्वाध्यारोपेण परमौचित्यं प्रतिपादितम् ॥

तत्र प्रथमं स्त्रीलिङ्गौचित्यमुपदर्शयति—यथेति ।

निद्रामिति । रत्नावलीवियोगविधुरस्योदयनस्य वर्णनमिदम् । वियोगविधुर उदयनो निद्रां न स्पृशति । न स्पृशतीत्यनेनात्यन्ताभावो निद्रायाः सूच्यते ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धृतिं धैर्यं च त्यजति। क्वचिदपि स्थितिं न धत्ते। दीर्घां कथां च व्यथां व्ययाकरीं वेत्ति। न श्रोतुमिच्छति तथाविधां कथामिति भावः। एतच्च ग्रन्थकृदनुरोधेन व्याख्यातम्। वस्तुतस्तु दीर्घामित्यस्य व्यथाविशेषणत्वोपवर्णनमेवोचितम्। एवंविधः स सर्वात्मना सर्वथा निर्वृतिं शान्तिं न भजते। तदेवं समस्तानां स्त्रीत्वविशिष्टानां निद्रादीनां परित्यागेन प्रतीयते यद् रत्नावलीं तद्गुणानां स्तवेनोच्चारणेन तन्नाम्नो जपेन तद्ध्यानेन चाराधयता पूजयता निस्सङ्गेनेतरयुवतिजनसम्पर्कत्यागिना। त्यक्तविषयाभिलाषेणेत्यपव्याख्यानं ग्रन्थकृदनभिप्रेतत्वात्। तेनोदयनेन वाचकत्वेन पराङ्गनावाचकत्वेन परिगतं नामापि नो नहि सह्यते। रत्नावलीविरहे समस्तमेव जगत्तुच्छं मन्यमानेन वत्सेश्वरेणेतराङ्गनाया नामश्रवणमसह्यम्, तत्र तुच्छत्वबुद्ध्युदयादिति तात्पर्यम्॥

यथा चायं ग्रन्थकृदन्यदीयरचनास्वनौचित्यमनुसन्धत्ते तथानुसन्धाने त्वत्र पद्ये विविधमनौचित्यं दृश्यमानमपि विस्तरभयान्नास्माभिरुपस्थाप्यते॥

अत्र इतरस्त्रीसहनाशक्तस्योदयनस्य वर्णने स्त्रीत्वविशिष्टनिद्रादिपरित्यागकर्तृत्वं तस्मिन्नुच्यमानमत्यन्तमुचितम् इत्याशयवानाह—अत्रेत्यादिना॥

स्त्रीलिङ्ग के औचित्य का उदाहरण मेरी ललितरत्नमाला के इस पद्य में उपलब्ध है—

"रत्नावली के विरह से विह्वल उदयनको न तो थोड़ी निद्रा ही आती, न उनमे कुछ धृति (धैर्य) रह गई, न कहीं स्थिरता ही दिखाई देती, न उन्हें लम्बी कहानी अच्छी लगती और न किसी तरह की शान्ति हीं उन्हे मिल पाती। इससे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि रत्नावली के गुणों के स्तवन, उसके नाम के जप तथा उसके सौन्दर्यादि के चिन्तन में निमग्न राजा ने समस्त स्त्रियों से अपना सम्पर्क तोड़ लिया है जिससे किसी स्त्रीत्वविशिष्ट नाम का श्रवण तक उन्हें सह्य नही है॥"

इस पद्य मे रत्नावली के विरह से व्याकुल उदयन का अन्य स्त्रियों से दूर हो जाने का वर्णन अभिप्रेत है। इस लिए जिनसे वे दूर हो चुके हैं उनका निद्रा आदि स्त्रीत्वविशिष्ट शब्दों द्वारा निर्देश अत्यन्त उपयुक्त है॥

न तु यथा मम नीतिलतायाम्—

वरुणरणसमर्था स्वर्गभङ्गैः कृतार्था
यमनियमनशक्ता मारुतोन्माथसक्ता।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धनदनिधनसज्जा लज्जते मर्त्ययुद्धे
दहनदलनचण्डा मण्डली मद्भुजानाम् ॥

अत्र रावणः कपिनिकरामर्षविषमविकाराविष्कारोचितं ब्रूते—वरुणादिलोकपालविशालबलावलेपविप्लवकारिणी मर्त्यमात्रयुद्धे लज्जते प्रचण्डा मद्भुजमण्डलीति स्त्रीलिङ्गेन निर्देशस्त्रैलोक्यविजयोचितस्य प्रतापस्य कठोरतामपहरन्ननौचित्यं सूचयति ॥ २१ ॥

प्रसङ्गात् स्त्रीलिङ्गानौचित्यमपि प्रदर्शयति—न त्विति ।

वरुणेति । वरुणेन सह रणे समर्था, स्वर्गस्य भङ्गैर्विध्वंसनैः कृतार्था कृतकृत्या, इन्द्रपराजयशक्तेत्यर्थः; यमस्य नियमनेऽवरोधे शासने वा शक्ता, मारुतस्य वायोरुन्माथे मथने सक्ता लग्ना, धनदस्य कुवरेस्य निधने मृत्यौ निर्वीर्यत्वापादने सज्जा परायणा, दहनस्याग्नेर्दलने पराभवे च प्रचण्डा मम भुजानामियं मण्डली पंक्तिर्मर्त्येण रामेण मानवरूपिणा सह युद्धे लज्जते । रावणकृता स्वप्रचण्डप्रतापाभिव्यक्तिरत्र पद्ये कृता ॥

अत्रानौचित्यमुपपादयति—अत्रेत्यादिना । अत्र प्रतापस्योत्कर्षः प्रतिपिपादयिषितः । स च स्त्रीत्वविशिष्टैः पदैर्विहित इत्यनौचित्यम् । स्त्रियो हि कोमलाङ्ग्यः, न च तैरभिव्यक्तिः प्रतापस्य परपराभवैकशीलस्यातिकठोरस्येति भावोस्य सन्दर्भस्य ॥

किन्तु मेरी नीतिलता के निम्नदिर्दिष्ट पद्य में स्त्रीलिङ्ग का प्रयोग उचित नही है—

"वरुण के साथ युद्ध करने में समर्थ, स्वर्ग के विध्वंस से कृतकृत्य, यमराज को विवश करने में शक्त, वायु को विचलित कर देने में संलग्न, कुवेर को भी विवश कर देने में तत्पर एवं अग्नि को भी शान्त कर देने में प्रखर यह मेरी भुजमण्डली एक मनुष्य (राम) के साथ युद्ध करने मे लज्जित हो रही है ॥"

यहाँ रावण के प्रचण्ड प्रताप का प्रकाशन अभिप्रेत है । इसके लिए कोमल शरीरादि से सम्पन्न स्त्रीलिङ्ग से विशिष्ट 'मण्डली' तथा इसके 'समर्था' आदि विशेषणों का प्रयोग नितान्त अनुचित है ॥

वचनौचित्यं दर्शयितुमाह—

उचितैरेव वचनैः काव्यमायाति चारुताम् ।
अदैन्यधन्यमनसां वदनं विदुषामिव ॥ २२ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उचितैरेकवचनद्विवचनबहुवचनैः काव्यं चारुतामायाति अदैन्योदार-चेतसां विदुषामिव वदनमयाञ्चाचारुचिरौचित्यचारुभिर्वचोभिः ॥

इदानीं क्रमागतं वचनौचित्यं विवृणोति—वचनेति ।

उचितैरिति । यथा विदुषां वदनमदैन्येनायाञ्चया धन्यमुदारं समृद्धं यन्मनस्तेन चारुतामायाति । मनःप्रसादस्य मुखप्रसादद्वारेणाभिव्यक्तेरिति भावः । तथैव उचितैर्वचनैरेकत्वादिभिरेव काव्यं चारुतामायाति प्राप्नोति ॥ अत्र अदैन्यधन्यमनसाम् इति षष्ठयन्तः पाठोऽयुक्तः ॥

यद्वा यथाश्रुत एव पाठः । तथा चायमर्थः—यथाऽदैन्यधन्यमनसां विदुषा-माननमुचितैरवसराद्यनुरूपैरेव वचनैर्वचोभिश्चारुतामायाति तथा काव्यमप्यु-चितैर्वचनैरेकत्वादिभिरिति । अत्र पक्षे वचन-शब्दः श्लिष्टः ॥

पद्यं विवृणोति—उचितैरिति । अयाञ्चया याचनाऽभावेन चारु यच्चिरौ-चित्यं चिरकालिकमौचित्यन्तेन चारुभिर्मनोहारिभिर्वचोभिरिति ॥

अब वचनौचित्य का प्रतिपादन किया जा रहा है—

जिस प्रकार विद्वानों का मुख उत्साही अत एव उदार मन की प्रसन्नता का अभिव्यञ्जक होने पर ही सुशोभित होता उसी प्रकार काव्य भी उचित एकवच-नादि द्वारा ही सुशोभित होता ॥ २२ ॥

उचित एकवचनादि द्वारा काव्य उसी प्रकार आकर्षक होता है जिस प्रकार याचना न करने के कारण उदार मन वाले विद्वानों का मुख याचनाऽभावकृत सौन्दर्य से विशिष्ट चिरकालिक औचित्य से रमणीय वचनों से आकर्षक होता है ॥

यथा मम नीतिलतायाम्—

त्रैलोक्याक्रमणैर्वराहविजयैर्निःसंख्यरत्नाप्तिभिः
प्रख्यातः स्वरसस्वयंवरशतैर्युद्धाब्धिमध्ये श्रियः ।
साश्चर्यैर्बलिबन्धनैश्च बहुभिर्नित्यं हसत्युत्थितः
पौलस्त्यः सकृदुद्यमश्रमवशाद्वयासक्तनिद्रं हरिम् ॥

अत्र 'शुकसारणाभ्यां रघुपतेरग्रे दशग्रीवपराक्रमेऽभिधीयमाने यदुक्तं पौलस्त्यः शेषशायिनं हरिमेकवारोद्योगश्रमवशेन संसक्तालस्य-निद्रमनेकत्रैलोक्याक्रमणैर्वराहविजयिनां सुभटानां जयैरनेकरत्न-प्राप्तिभिः समरसमुद्रमध्ये बहुवारविहितैः श्रियः स्वयंवरशतैर्वलिनां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

च लोकपालानां वन्धनैः प्रख्यातः सोत्साहः सततं हसतीति वहुवचनैरेव हरिवैलक्षण्यलक्षणमुपचितमौचित्यमुदञ्चितम् ॥

वहुवचनौचित्यमुदाहरति—यथेति ।

त्रैलोक्येति । शुकसारणकृता रावणस्तुतिरियम् । त्रैलोक्यस्याक्रमणैर्बलाद्वशीकरणैः, वरान् आघ्नन्तीति वराहा वीरोत्तमास्तेषां विजयैः, निःसंख्यानामसंख्यानां रत्नानामुत्तमवस्तूनामाप्तिभिरधिगमैः, युद्धान्येवाब्धयः सागरास्तेषु श्रियां विजयश्रियां स्वरसत एव स्वयम्वराणां शतैरसंख्यस्वयम्वरणैः साश्चर्यैराश्चर्ययुक्तैर्वलिनां शूराणां वन्धनैश्च प्रख्यातः पौलस्त्यो रावणः सकृदेकवारम् त्रैलोक्यस्याक्रमणेन पदत्रेयण त्रैलोक्यस्य विमानेन वराहरूपेण भूमेः सृगुचादावुद्धरणे, एकस्यैव समुद्रमथनोद्‌गतस्य कौस्तुभमणेरवाप्तौ, समुद्रमथनादेवोद्‌भूताया लक्ष्म्याः स्वयम्वरणे, वलिनामकस्य दैत्यस्य वन्धने च य उद्यमस्तेन तथा परिश्रान्तो येत व्यासक्ता निद्रा सुषुप्तिर्यस्मिन् तं हरिं विष्णुं नित्यं सततमुपहसति ॥ अनेकवारं त्रैलोक्याक्रमणादिभिरप्यश्रान्तो रावणः, हरिस्तु सकृदाक्रमणादिनैव परिश्रान्त इति व्यतिरेकोत्र हरिहासकारणम् ॥

अत्र त्रैलोक्याक्रमणैरित्यादिवहुवचनेनैव व्यतिरेकस्य प्रतीयमानत्वेन बहुवचनस्यौचित्यं स्फुटमेवेति प्रतिपादयितुमाह—अत्रेत्यादि । गद्यवन्धो व्याख्यातपूर्व एव ॥

वहुवचन के औचित्य का उदाहरण मेरी नीतिलता के इस पद्य में उपलब्ध है—

"अनेक वार त्रैलोक्य पर आक्रमण करने, वड़े-वड़े वीरों (वराहों='वर+आ+ह') को जीतने, असंख्य रत्नों की प्राप्ति करने, युद्ध-सागरों मे विजयश्री का वारम्वार अनुरागपूर्वक स्वयम् वरण करने एवम् वलवान् पुरुषों को अनेक वार वन्धन में डालने (वश में करने) पर भी सर्वथा अश्रान्त रावण भगवान् विष्णु का खूव मजाक उड़ा रहा है, क्योंकि विष्णु तो एक ही वार त्रैलोक्य के पदक्रमण, वराह-रूप धारण कर पृथ्वी को जल से ऊपर उठाने, एकमात्र कौस्तुभ मणि को पाने, समुद्र-मथन से प्राप्त एक लक्ष्मी का स्वयम् वरण करने और वलिनामक दैत्य को एक हीं वार वान्धने में इतने परिश्रान्त हो गए कि उन्हें विवश होकर क्षीर-सागर में सो जाना पड़ा ॥"

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उक्त पद्य मे त्रैलोक्याक्रमण आदि शब्दों के बाद प्रयुक्त बहुवचन विभक्ति से हीं यह प्रतीत होता कि रावण अनेक बार इन कार्यों का सम्पादन करता हुआ भी नहीं थका जब कि विष्णु मात्र एक बार ही उक्त कार्य करने से इतने थक गए कि उन्हें गाढ़ निद्रा मे सो जाना पड़ा। अतः बहुवचन का औचित्य इस पद्य मे सुस्पष्ट है ॥

न तु यथा मातृगुप्तस्य—

नायं निशामुखसरोरुहराजहंसः
कीरीकपोलतलकान्ततनुः शशाङ्कः।
आभाति नाथ! तदिदं दिवि दुग्धसिन्धु-
डिण्डीरपिण्डपरिपाण्डु यशस्त्वदीयम् ॥

अत्र नायं शशी, त्वदीयं दुग्धाब्धिफेनपिण्डपाण्डुरं यश इति यदभिहितं तदविच्छिन्नप्रसराणां यशसां बहुवचनेन वर्णनायां समुचितायामेकवचनोपन्यासश्चन्द्रबिम्बाकारेण पिण्डमात्रपरिच्छिन्नतया सङ्कोचरूपमनौचित्यमुद्भावयति ॥

प्रसङ्गादेकवचनानौचित्यं प्रदर्शयति—न त्विति।

नायमिति। कस्यचिद्राज्ञः प्रसंशेयम्। हे नाथ? अयं दिवि दृश्यमानस्त्विषां पिण्डो निशामुखम् प्रदोष एवारुणत्वात्सरोरुहम् तत्र प्रसक्तो राजहंसस्तत्सदृशः, कीर्याः शुक्याः कपोलतलमिव कान्ता रमणीया तनुर्यस्य तथाविधश्च शशाङ्कश्चन्द्रो न, अपि तु त्वदीयमिदं दुग्धसिन्धोर्डिण्डीरस्य फेनस्य पिण्ड इव परिपाण्डु यश एव दिव्यन्तरीक्ष आभाति। अपह्नुतिरियम् ॥

अत्रैकवचनस्यानौचित्यमुपपादयति—अत्रेति। अविच्छिन्नोऽप्रतिहतः प्रसरो विस्तारो येषान्तेषां यशसां बहुवचनेन वर्णनमुचितमासीत्, परमत्र कविना प्रयुक्तमेकवचनमेवेत्यनौचित्यमिति ग्रन्थार्थः ॥

अत्रानौचित्योपवर्णनं ग्रन्थकृतश्चिन्त्यम्। किञ्च बहुवचनौचित्यवर्णनप्रसङ्गे तदनौचित्यवर्णनमुपेक्ष्यैकवचनानौचित्यप्रदर्शनमपि न चारु। परिच्छिन्नपिण्डरूपत्ववर्णनमपि यशसो नाशोभनम्, चन्द्रपिण्डप्रभायाः सर्वत्र प्रसृतत्वात्। न चाप्येवंविधमालोचनं कवित्वपक्षपातीत्यादि विवेचनीयं सहृदयैः। पिण्डरूपत्ववर्णनस्यैकवचनौचित्यानौचित्याभ्यामसम्बन्धाच्च ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किन्तु मातृगुप्त कवि के निम्ननिर्दिष्ट पद्य में एकवचन का प्रयोग अनुचित है—

"हे राजन् ? यह जो आकाश में चमकता तेजःपुञ्ज दीखता है वह प्रदोषरूपी कमल में आसक्त राजहंस-स्वरूप एवम् शुकी के कपोल के समान मनोहर आकार वाला चन्द्रमा नहीं अपि तु आपका ही क्षीरसमुद्र के फेन के समान धवल यश है।"

यहाँ कवि को राजा के अप्रतिहत रूप में फैले हुए यश का बहुवचन-विभक्ति-युक्त पदों द्वारा वर्णन करना चाहिए था। किन्तु कवि ने एकवचनान्त पदों का प्रयोग कर राजा के यश को चन्द्रमण्डल की तरह सङ्कुचित कर दिया है। अतः यहाँ एकवचन का प्रयोग अनुचित है॥

विशेषणौचित्यं दर्शयितुमाह—

विशेषणैः समुचितैर्विशेष्योऽर्थः प्रकाशते।
गुणाधिकैर्गुणोदारः सुहृद्भिरिव सज्जनः॥ २३॥

काव्ये विशेष्योऽर्थः समुचितैरेव विशेषणैः शोभां लभते, गुणोदारः साधुर्यथाऽभ्यधिकगुणैः सुहृद्भिः॥

सम्प्रति क्रमप्राप्तं विशेषणौचित्यं विवृणोति—विशेषणौचित्यमिति।

विशेषणैरिति। समुचितैरुत्कर्षाधायकैर्विशेषणैरेव विशेष्यभूतोऽर्थः प्रकाशते गुणाधिकैरुत्कृष्टगुणैः सुहृद्भिर्गुणैरुदारः सज्जन इव॥ २३॥

गद्यबन्धः स्फुटार्थः॥

अब विशेषणौचित्य का निरूपण किया जा रहा है—

जिस प्रकार उत्कृष्टगुणसम्पन्न मित्रों द्वारा गुणवान् सज्जन सुशोभित होता उसी प्रकार समुचित (उत्कर्षाधायक) विशेषणों से ही विशेष्यभूत काव्यार्थ सुशोभित होता॥ २३॥

गद्यांश का अर्थ पूर्ववत् है॥

यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

चैत्रे सूत्रितयौवनान्युपवनान्यामोदिनी पद्मिनी
ज्योत्स्नाप्रावरणानि रत्नवलभीहर्म्याणि रम्याः स्त्रियः।
सर्वं चारुतरं न कस्य दयितं यस्मिस्तु तद्भुज्यते
तन्मृन्निर्मितमामभाजनमिव क्षिप्रक्षयं जीवितम्॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र युधिष्ठिरस्यासादितमहाविभूतेर्मयनिर्मितमणिमयसभाभिमानिनो विभवप्रभावे वर्ण्यमाने सकलभावाभावस्वरूपभाववादोपदेशिनो महामुनेराशयविचारावसरे यदुक्तं कुसुमसमयसमुपचितयौवनान्युपवनानि मकरन्दामोदसुन्दरारविन्दिनी ज्योत्स्नापटप्रावृतानि रत्नवलभीहर्म्याणि रमणीया रमण्यश्चेति सर्वमेतच्चारुतरं सर्वस्याभिमतम्। किन्तु यस्मिन्भुज्यते तज्जीवितमामममृत्पात्रनिःसारं क्षिप्रक्षयमिति तद्विशेष्यपदोत्कर्षकारिविशेषणपदोदितसौन्दर्येण पर्यन्तनिःसारतानिर्वेदसंवादि स्फुरदौचित्यमातनोति ॥

विशेषणौचित्यमुदाहरति—यथेति।

चैत्र इति। यतश्चैत्रे वसन्ते उद्यानानि सूत्रितं समुपचितं यौवनं यत्र तथाविधानि, पद्मिनी चामोदिनी, रत्नमयी वलभी येषां तानि हर्म्याणि प्रासादतलानि च ज्योत्स्ना चन्द्रिकैव प्रावरणं येषां तथाविधानि, स्त्रियस्तरुण्यश्च रम्या रमणयोग्या भवन्ति। अत एतत्सर्वं वस्तुजातं तदानीं चारुतरं सत् कस्य न दयितं भवेत्? सर्वस्याप्येतत्सर्वं प्रियमेवेति भावः। किन्तु यस्मिन् जीविते सर्वमेतद् उपभुज्यते तज्जीवितमेव यदा मृन्निर्मितं यदामभाजनमपक्वघटशरावादिपात्रन्तद्वत् क्षिप्रं क्षयं यस्य तथाविधं भङ्गुरमस्ति तदा विवेकिभिरध्यात्मचिन्तनमेव कर्त्तव्यम्, न तु तत्रापाततो रम्ये लीलोद्यानादावासक्तिरिति तात्पर्यम् ॥

अत्र यद्वक्तव्यं तदुक्तं **सत्यं मनोरमा रामाः** इत्यादि पद्यविवरणावसर एवेति नेह पुनरुच्यते ॥

अत्र पद्ये वर्णनीयानामुद्यानादीनां सूत्रितयौवनादिविशेषणानि यच्च जीवितस्य क्षिप्रक्षयमिति विशेषणं तत्सर्वं स्व-स्वविशेष्यभूतोद्यानादिपदार्थानां वर्ण्यमानोत्कर्षादिप्रतिपादनसमर्थमित्यौचित्यसम्पन्नमित्याह—**अत्रेत्यादिना**। मयेन तन्नामकेन दानवेन निर्मिता या मणिमयी सभा तदाधिपत्यमूलकोऽभिमानोऽस्यास्तीति मयनिर्मितमणिमयसभाभिमानी, तस्य युधिष्ठिरस्य। सकलानां भावानां सांसारिककार्यजातानामभावेनोपलक्षितं स्वरूपं यस्य तथाविधस्य भावस्यात्मनः सम्बन्धी यो वादः सिद्धान्तः तस्योपदेष्टुः यद्वा प्रपञ्चाभावस्यात्मनिष्ठस्य तद्रूपतया जगदभावस्वरूप एव भाव आत्मा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तस्य वाद इति व्याख्याऽपि कर्तुं शक्यते, अभावस्यात्र मतेऽधिकरणस्वरूपत्वाभ्युपगमात् । विशेष्यपदस्योत्कर्षं कर्तुं शीलं येषां विशेषणपदानां तैरुदितेन सौन्दर्येण चमत्कारेण कारणेन पर्यन्तेऽन्ते जीवितनिस्सारतामूलकेन निर्वेदेन वैराग्येण सम्वदतीति **पर्यन्त···सम्वादि**। तथाविधं स्फुरत्प्रकाशमानं यदौचित्यन्तदातनोति प्रकृतं कविवचनम् । अत्र च जीवितविशेषणमात्रौचित्यप्रतिपादनपरोयं ग्रन्थ इति प्रतीयते । तथाप्युपलक्षणतयोद्यानादिविशेषणगतौचित्याभिप्रायकत्वमप्यस्य प्रतिपत्तव्यम् ॥

विशेषणौचित्य का उदाहरण मेरी मुनिमतमीमांसा के इस पद्य में द्रष्टव्य है—

"वसन्त ऋतु मे उद्यान प्रौढ़ यौवन से परिपूर्ण होने, कमलिनी सुगन्धित होने, मणिमय वलभी (छज्जा) वाली अट्टालिकाएँ चन्द्रिका से आच्छादित होने और युवतियाँ रमणयोग्य होने से बहुत ही आकर्षक होती हैं। अतः ये किसके प्रिय नही होतीं ? किन्तु जिस जीवन में इनका उपभोग किया जाता वह जीवन हीं कच्चे घड़े के समान क्षणभङ्गुर है। अतः इनमे आसक्त न होकर विवेकशील पुरुप को आत्मचिन्तन हीं करना चाहिए ॥"

इस पद्य में मय-नामक दानव द्वारा निर्मित मणिमय सभाभवन के आधिपत्य के अभिमान से युक्त परमैश्वर्यसम्पन्न महाराज युधिष्ठिर की सम्पन्नता के प्रभाव के वर्णन के प्रसङ्ग मे समस्तप्रपञ्चशून्य अद्वैत ब्रह्म के सिद्धान्त के उपदेशक महामुनि का हार्दिक विचार प्रस्तुत किया गया है। इसमे जीवन का यह विशेपण कि वह 'क्षणभङ्गुर' है, विशेष्यभूत असार जीवन के प्रति वैराग्यभाव के उत्पादन मे अत्यन्त उपयुक्त होने से औचित्यसम्पन्न है ॥

न तु यथा भट्टलट्टनस्य—

ग्रीष्मं द्विषन्तु जलदागममर्थयन्तां
ते सङ्कटप्रकृतयो विकटास्तटाकाः ।
अब्धेस्तु मुग्धशफरीचटुलाचलेन्द्र-
निष्कम्पकुक्षिपयसो द्वयमप्यचिन्त्यम् ॥

अत्र ग्रीष्मं द्विषन्तु मेघागमं सङ्कटस्वभावा विकटा विस्तीर्णाश्च तटाकाः प्रार्थयन्ताम्, महाब्धेस्तु बालशफरीलोलाचलेन्द्रनिश्चलकुक्षिपयसो ग्रीष्मघनागमावप्यगणनीयाविति यदुक्तम् तत्र तटाकविशेषणयोः सङ्कटविकटपदयोः परस्परविरुद्धार्थयोरनौचित्यं स्पष्टमवभासते,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सङ्कटस्वभावस्य हि विकटत्वं विस्तीर्णत्वं नोपपद्यते। अथ स्वभावे सङ्कटत्वमाकारे विकटत्वम्, तदपि तटाकस्य निश्चेतनस्य स्वभावाभावादनुपपन्नमेव ॥ २३ ॥

प्रसङ्गाद्विशेषणानौचित्यं निदर्शयति—न त्विति।

ग्रीष्ममिति। सङ्कटा सङ्कुचिता प्रकृतिर्येषां ते विकटा विस्तीर्णास्तटाका जलशोषकत्वाद् ग्रीष्मर्तुं द्विषन्तु ग्रीष्मर्त्तवे द्वेषं कुर्वन्तु, जलदानां मेघानामागमनं (तदुपलक्षितं वर्षर्तुमिति यावत्) च जलवर्धकत्वादर्थयन्तां कामयन्ताम्। परन्तु मुग्धा बाला (अप्रौढा) या शफरी मत्स्यस्त्री तद्वच्चटुलश्चञ्चलो योऽचलेन्द्रो मन्थाचलस्तेनापि निष्कम्पमचलं कुक्षिस्थमाभ्यन्तरं पयो जलं यस्य तथाविधस्याब्धेः सागरस्य कृते ग्रीष्मसमागमो वर्षर्तुसमागमश्चेति द्वयमप्यचिन्त्यन् चिन्ताऽविषयम्। सागरस्य हि गम्भीरापरिमेयप्रवाहस्य ग्रीष्मवर्षयोर्निर्विशेषत्वमेवेति भावः ॥

अत्र सङ्कटशब्दस्य सङ्कुचितार्थत्वं विकटशब्दस्य च विस्तृतार्थत्वं मन्यमानेन ग्रन्थकृता परस्परविरुद्धयोः सङ्कुचितत्वविस्तृतत्वयोरेकत्र तडागेषु समावेशोऽनुचित इत्युक्तं पूर्वम्। परस्ताच्च प्रकृतेः स्वभावस्य सङ्कुचितत्वमाकारस्य च विस्तृतत्वमित्यनया रीत्यापि निर्वाहाभाव उक्तः, तडागानामचेतनानां निःस्वभावत्वेन तत्र सङ्कुचितत्ववर्णनानुपपत्तेर्हेतोः। तत्र भावमात्रस्य सस्वभावतयानौचित्यवर्णनमेतदनुचितमेवेति प्रतीमः। किञ्च प्रकृते तडागेषु चेतनत्वारोपः कवेरभिमत एव, कथमन्यथा तेषां द्वेषादिकर्तृत्वं घटेत। आरोपश्चैवंविधः सुपरिचित एव कवीनामिति ग्रन्थोक्तं न समञ्जसम्। गद्यवन्धस्तु व्याख्यातप्राय एव ॥

किन्तु लट्टन भट्ट के निम्ननिर्दिष्ट पद्य मे विशेषण का औचित्य नही है—

"सङ्कुचित स्वभाव वाले वे बड़े-बड़े तालाव भले ही ग्रीष्म ऋतु से विद्वेष और वर्षा ऋतु से प्रेम करें, क्योंकि ग्रीष्म, ऋतु उनका शोषक है जब कि वर्षा ऋतु पोषक। किन्तु जिसका अथाह जल छोटी मछली के समान चञ्चल मन्थाचल से भी कम्पित न हो सका उस सागर के लिए तो चाहे ग्रीष्म ऋतु हो या वर्षा ऋतु, कोई अन्तर नही पड़ता ॥"

इस पद्य मे एक ही तडाग के लिए परस्पर-विरुद्धार्थक 'सङ्कट' (सङ्कुचित) एवं 'विकट' (विस्तृत) विशेषणों का प्रयोग कवि ने किया है। यह अनुचित

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। तडागों के स्वभाव में सङ्कोच और आकार में विस्तार मान कर भी दोनो विशेषणों का विरोध दूर नही किया जा सकता, क्योंकि अचेतन तडागों के स्वभाव-रहित होने से उनके स्वभाव मे सङ्कोच का कथन असम्भव है॥

उपसर्गौचित्यं दर्शयितुमाह—

योग्योपसर्गसंसर्गैर्निर्गलगुणोचिता ।
सूक्तिर्विवर्धते सम्पत्सन्मार्गगमनैरिव ॥ २४ ॥

उचितैः प्रादिभिरुपसर्गैः सूक्तिरुन्नतिमासादयति विभूतिरिव सन्मार्गगमनैः ॥

क्रमागतमुपसर्गौचित्यं निरूपयति—उपसर्गेति ।

योग्येति । यथा सन्मार्गगमनैः सम्पद्विवर्धते तथैव निरर्गलैर्दोषसम्पर्कशून्यैर्गुणैरुचिता कविसूक्तिरपि योग्यानां प्रकृतार्थाभिव्यक्तिसमर्थानां प्रपरादीनामुपसर्गाणां संसर्गैर्योगैर्विवर्धतेऽतिशयेन शोभते ॥

गद्यवन्धः स्पष्ट एव ॥

अब उपसर्गौचित्य का निरूपण किया जा रहा है—

जिस प्रकार सन्मार्ग के अनुसरण से सम्पत्ति बढ़ती है उसी प्रकार दोषलेश-शून्य गुणों से सम्पन्न कविसूक्ति भी प्रकृत अर्थ के अभिव्यञ्जन में समर्थ प्र, परा आदि उपसर्गों के योग से बढ़ती, अर्थात् अतिशय चमत्कारी होती है॥

गद्यांश का अर्थ पूर्ववत् है॥

यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

आचारं भजते त्यजत्यपि मदं वैराग्यमालम्बते
कर्तुं वाञ्छति सङ्गभङ्गगलितोत्तुङ्गाभिमानं तपः ।
दैवन्यस्तविपर्ययैः सुखशिखाभ्रष्टः प्रणष्टो जनः
प्रायस्तापविलीनलोहसदृशीमायाति कर्मण्यताम् ॥

अत्र दुर्योधनस्य घोषयात्रायां गन्धर्वबन्धपराभवभग्नाभिमानस्य प्राज्यसाम्राज्यमुत्सृज्य तपःप्रयत्नाभिनिविष्टस्य दुर्ग्रहे वर्ण्यमाने यदुक्तम्—सर्वो जनः सुखभ्रष्टः प्रणष्टविभवः सदाचारं भजते, मदं त्यजति, वैराग्यमाश्रयति, सङ्गभङ्गेन विगलितोत्तुङ्गाभिमानं तपः कर्तुं वाञ्छति, प्रायो बाहुल्येन तापविगलितलोहपिण्डसदृशीं कर्मण्यता-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मायातीति तत्रोत्पूर्वतया सोपसर्गस्य तुङ्गशब्दस्य स्वभावोन्नतिर्द्विगुणतामुपयाता दुर्मदाभिमानार्थौचित्यमुच्चैः करोति ॥

उदाहरति—यथेति ।

आचारमिति । गन्धर्वाभिभूतस्य दुर्योधनस्य दुरवस्था वर्णिताऽत्र । दैवेन दौर्भाग्येण न्यस्तैरुपस्थापितैर्विपर्ययैर्दुरवस्थाभिः सुखस्य शिखायाः काष्ठाया भ्रष्टोऽत एव प्रणष्टो दीनो जन आचारं सदाचारं भजतेऽनुतिष्ठति, मदमहङ्कारं त्यजति, वैराग्यमालम्बते समाश्रयति, सङ्गस्यासक्तेर्भङ्गेन विनाशेन गलित उत्तुङ्ग उत्कटोभिमानो यथा स्यात्तथा तपः कर्तुं वाञ्छति च । प्रायो बाहुल्येन तापेन विगलितं यल्लोहं तेन सदृशीं कर्मण्यतां कार्यक्षमतामायाति प्राप्नोति । एतच्च वृत्त्यनुरोधेन व्याख्यातम् । वस्तुतस्त्विदं पद्यमित्थं व्याख्येयम्—अयं दुर्योधनः प्रकृतत्वाद् गन्धर्वाभिभूतः सन् आचारं भजते, मदं च त्यजति, वैराग्यश्चालम्बते, अथ च तपः सङ्गभङ्गगलितोत्तुङ्गाभिमानं कर्तुं वाञ्छति । अत्रार्थान्तरन्यासः सामान्येनायम्—प्रायेण दैवन्यस्तविपर्ययैः सुखशिखाभ्रष्टोत एव प्रणष्टो जनः तापविलीनलोहसदृशीं कर्त्तव्यतामायाति । उभयत्राप्यर्थे सङ्गभङ्गगलितोत्तुङ्गाभिमानमिति क्रियाविशेषणमेव ॥

सुखात्परिभ्रष्टो दुःखमापन्नः पुरुषः स्वसंरक्षणार्थमुचितमाचरणं तपश्चरणं वा करोतीति तात्पर्यम् । यद्वा काकूक्तिरियम् । उत्तुङ्गाभिमानिनो दुर्योधनस्य गन्धर्वकृतपराभवेनाभिमानभङ्गे सदाचारादिसेवनं तापातिशयादेवेति । एवं चार्थान्तरन्यासोपि साधु समर्थितो भवति ॥

अत्र च पद्येऽभिमानस्य विशेषणतयोपात्तमुत्तुङ्गत्वम् । तत्र चोदित्युपसर्गेणोत्कटातिशयत्वमभिमानस्य द्योतितं येन तथाभिमानिनोऽस्य पराभवावश्यम्भावः समर्थित इत्याशयवानाह—अत्रेत्यादि । घोषयात्रायाम् । वने पाण्डवदशाजिज्ञासुर्दुर्योधन आभीरपल्लीं प्राप्तो गन्धर्वैर्बद्धः । ततश्च भीमादिप्रतिषिद्धोपि युधिष्ठिरः सानुजस्तं मोचयामासेति भारतीया कथाऽत्रानुसन्धेया । सोपसर्गस्येति हेतुगर्भं विशेषणम् । तथा च यतस्तुङ्गशब्दः सोपसर्गोतोस्य यः स्वभावः स्वार्थप्रतिपादकत्वं तन्निष्ठोन्नतिर्द्विगुणीभूता सती (उत्तुङ्गशब्दः स्वार्थरूपेणात्युत्कटत्वमभिमानस्य प्रतिपादयन्निति तात्पर्यार्थः) दुर्मदस्य पुंसो योभिमानरूपोर्थः प्रतिपिपादयिषितस्तस्यौचित्यं तादृशाभिमानस्य नियतपराभवानुकूलत्वमुच्चैः करोत्युद्घाटयति ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसका उदाहरण मेरी ही मुनिमतमीमांसा के निम्ननिर्दिष्ट पद्य में उपलब्ध है—

"गन्धर्वों द्वारा बान्ध दिए जाने के कारण अत्यन्त सन्तप्त यह दुर्योधन अब सदाचारों का पालन करने लगा है, मद छोड़ चुका है, विरक्त हो चुका है तथा विषयसम्पर्क के अभाव में अत्युत्कट अभिमान के चूर हो जाने के कारण तप करना चाहता है। साधारणतः यह देखा जाता है कि जब मनुष्य दौर्भाग्य के प्रभाव से उत्तम सुख से वञ्चित होकर दीन हो जाता तो वह तपे हुए लोहे के समान मुड़ने लगता है॥"

इस पद्य में घोप-यात्रा के समय गन्धर्वों द्वारा बान्ध दिए जाने के कारण अपने मद के चूर-चूर हो जाने से सन्तप्त दुर्योधन की दुरवस्था का वर्णन किया गया है जिसमें वह अपने विशाल साम्राज्य को छोड़ कर तपस्या करने की बात सोच रहा है। यहां दुष्टों के अत्युत्कट अभिमान के अभीष्ट प्रकाशन में समर्थ होने के कारण उत्कटार्थक तुङ्ग शब्द के साथ अतिशयप्रतिपादक 'उत्' उपसर्ग का प्रयोग अत्यन्त उचित है॥

न तु यथा कुमारदासस्य—

अयि विजहीहि दृढोपगूहनं
त्यज नवसङ्गमभीरु ! वल्लभम्।
अरुणकरोद्गम एष वर्तते
वरतनु ! सम्प्रवदन्ति कुक्कुटाः॥

अत्राभिनवानङ्गसङ्गमगाढालिङ्गननिश्चलाङ्गच्छन्नाङ्गनाप्रबोधने सख्या यदुक्तं मुञ्च वल्लभम्, प्रभातसंध्यायामरुणकिरणोद्गमो वर्तते, कुक्कुटाश्च सम्प्रवदन्तीति, तच्च सम्प्रोपसर्गशून्य(क्रिययेष्टार्थ-प्रतिपत्त्या सम्प्रोपसर्गाभ्यां) शब्दापूरणमात्रेण निरर्थकत्वादनुचित-मेव॥ २४॥

प्रसङ्गादुपसर्गानौचित्यमुदाहरति—न त्विति।

अयीति। काञ्चिन्नवोढां प्रियतमालिङ्गितामुद्बोधयन्त्याः कस्याश्चनोक्ति-रियम्। अयि नवसङ्गमेन भीरु ? नवोढा हि लोकलज्जया प्रत्यूष एव पतिं परित्यजति यावन्नेतरे जाग्रति। यद्वा नवसङ्गमे भीरु ? इति सप्तमीतत्पुरुष एव मन्यताम्। अत्र चार्थे न किमपि वैशिष्ट्यम् इति स्पष्टमेव। दृढमुपगूह-नम् आलिङ्गनम् विजहीहि परित्यज। वल्लभं प्रियतमञ्च त्यज॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्रार्थे हेतुरुच्यते—**अरुणेत्यादिना**। हे वरतनु ? एष प्रस्तुतोरुणस्य करस्य रक्तिम्न उद्गम उदयो वर्त्तते। अरुणोदयः सञ्जात इत्यर्थः। कुक्कुटाश्च सम्प्रवदन्ति। प्रत्यूष एव कुक्कुटानां रवः श्रूयते॥

अत्र सम्प्रवदन्तीति पदे सम्प्रोपसर्गयोरानर्थक्येनोपसर्गानौचित्यमिति प्रतिपादयति—**अत्रेत्यादिना**। आपूरणं भार ईषदकिञ्चित्करं पूरणं पूर्त्तिर्वा। तथा च सम्प्रोपसर्गद्वयशून्यस्य वदन्तीति शब्दस्याभिप्रेतार्थप्रतिपादनसमर्थस्या-किञ्चित्करपूर्त्तिमात्रेण निमित्तेन सम्प्रेत्युपसर्गद्वयं निरर्थकत्वादनुचितमेवेति॥

किन्तु कुमारदास के निम्ननिर्दिष्ट पद्य में उपसर्गों का औचित्य नही है—

"अरी नवीनसङ्गम से डरने वाली सखी ? अपने इस गाढ़ आलिङ्गन को छोड़ तथा अपने प्रियतम से दूर हट। देख, अरुणोदय हो चुका है, और मुर्गे भी बाँग दे रहे हैं॥"

इसमें नवयौवन के कारण अपने प्रियतम के प्रगाढ़ आलिङ्गन मे आवद्ध होकर उसके वक्षःस्थल से चिपकी हुई मुग्ध नवोढ़ा के सखी द्वारा जगाए जाने का वर्णन किया गया है। यहाँ 'वदन्ति' इस निरुपसर्गक पद से ही अभीष्टार्थ का प्रतिपादन हो जाने उसके साथ जोड़े गए 'सम्' और 'प्र' ये दोनो हीं उपसर्ग निरर्थक हैं। अतः यहाँ इनका प्रयोग अनुचित है॥

निपातौचित्यं दर्शयितुमाह—

उचितस्थानविन्यस्तैर्निपातैरर्थसङ्गतिः।
उपादेयैर्भवत्येव सचिवैरिव निश्चला॥ २५॥

उपादेयैश्चादिभिर्निपातैरुचितपदविनिवेशितैः काव्यार्थस्य सङ्गतिर-सन्दिग्धा सत्सहायैरिव भवति॥

सम्प्रति निपातौचित्यं निरूपयति—**निपातेति**।

उचितेति। उचितस्थाने विन्यस्तैः प्रयुक्तैरत एवोपादेयैर्निपातैश्चादिभिः काव्यार्थस्य सङ्गतिस्तथैव निश्चला सुदृढा भवति यथोचितस्थाननियुक्तैरत एवो-पादेयैः संग्रहणीयैरमात्यैरर्थस्य धनस्य सङ्गतिरुन्नतिर्निश्चला सुदृढा भवति॥२५॥

वृत्तिः स्पष्टैव॥

उचित स्थान में प्रयुक्त अत एव उपादेय 'च' आदि निपातों से काव्यार्थ की सङ्गति उसी प्रकार सुदृढ हो जाती है जिस प्रकार उचित स्थान (कार्य) में नियुक्त उपादेय सचिवों द्वारा धन की उन्नति सुदृढ होती है॥ २५॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

सर्वे स्वर्गसुखार्थिनः क्रतुशतैः प्राज्यैर्यजन्ते जडा-
स्तेषां नाकपुरे प्रयाति विपुलः कालः क्षणार्धं च तत् ।
क्षीणे पुण्यधने स्थितिर्न तु यथा वेश्यागृहे कामिनां
तस्मान्मोक्षसुखं समाश्रयत भोः ! सत्यं च नित्यं च यत् ॥

अत्र स्वर्गसुखस्य वेश्याभोगवदवसानविरसचपलतायां प्रतिपादितायां निश्चलमोक्षसुखस्य निःसन्देहनिश्चिता प्रतिपत्तिर्निपातपदोपबृंहिता वाक्यार्थौचित्यं जनयति ॥

उदाहरति— यथेति ।

सर्वे इति । ये सर्वे जडाः स्वर्गसुखार्थिनः सन्तः प्राज्यैः प्रचुरैः क्रतूनां शतैर्यजन्ते विविधान् देवान् तेषां नाकपुरे स्वर्गे यो विपुलो महान् कालः प्रयाति व्यत्येति तत् क्षणार्धम् क्षणार्धकल्पमेव । यतस्तेषां पुण्यस्वरूपे धने क्षीणे सति वेश्यागृहे धने क्षीणे कामुकस्येव न तत्र स्थितिः । अतो हेतोर्भो मूढाः ? मोक्षसुखमेव यूयं समाश्रयत प्रार्थयत यत् सत्यं सत्स्वरूपं नित्यं च ॥

उपपादयति—अत्रेति । अवसानेऽन्ते विरसता च चपलता चेति द्वन्द्व एकवद्भावः । तस्यां प्रतिपादितायाम् । निपातपदाभ्यां चकाराभ्यामुपबृंहिता प्रतिपत्तिः प्रतीतिः । निस्सन्देहनिश्चितेत्यत्रैकं पदमपार्थकम् ॥

निपात के औचित्य का उदाहरण मेरी मुनिमतमीमांसा के इस पद्य में है—

"जो जड़ लोग स्वर्गीय सुख की कामना से तरह-तरह के ज्योतिष्टोमादि याग करते वे चिरकाल तक स्वर्ग में अवश्य रहते, किन्तु उनका वह काल क्षणार्धतुल्य है, क्योंकि वे पुण्यरूपी धन के नष्ट हो जाने पर वहाँ उसी तरह नहीं रह पाते जिसतरह धन समाप्त हो जाने पर कोई वेश्या के घर नहीं टिक पाता । अतः मूढ़ो ! सत्य एवं नित्य जो मोक्षसुख है उसी की कामना करो ॥"

इस पद्य में स्वर्गीय सुख की वेश्या के उपभोग के समान अन्त में कटुता एवं क्षणिकता के प्रतिपादन से समर्थित शाश्वत मोक्षसुख की दोनों 'च' निपातों से परिपुष्ट निश्चित प्रतिपत्ति काव्यार्थ में औचित्याधायक हो जाती है ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न तु यथा श्रीचक्रस्य—

देवो जानाति सर्वं यदपि च तदपि च ब्रूमहे नीतिनिष्ठं
साद्धं सन्धाय जालन्धरधरणिभुजा निर्वृतो वान्धवेन।
म्लेच्छानुच्छिन्धि भिन्धि प्रतिदिनमयशो रुन्धि विश्वं यशोभिः
सोदन्वन्मेखलायां परिकलय करं किञ्च विश्वम्भरायाम्॥

अत्र क्षितिपतिस्तुतिप्रस्तावे 'देवो जानाति सर्वं यदपि च तदपि' इति यदुक्तं तत्र पूर्वापरयोरसम्बद्धत्वेन निरर्थक एव निरुपयोगश्चकारः प्रततोत्सवबहुजनभोजनपङ्क्तावपरिज्ञातः स्वयमिव मध्ये समुपविष्टः पश्चादभिव्यक्तः परं लज्जादुर्मना अनौचित्यं प्रतनोति॥२५॥

प्रसङ्गान्निपातानौचित्यं प्रदर्शयति—न त्विति।

देव इति। यदपि यद्यपि देवः सर्वं जानात्येव तथापि नीतिनिष्ठं नीत्याश्रितं ब्रूमहे यज्जालन्धरधरणिभुजा जालन्धराधिपेन बान्धवेन स्वमित्रभूतेन सार्धं सन्धाय सन्धि विधाय निर्वृतः शान्तः सन् म्लेच्छान् यवनानुच्छिन्धि घातय, प्रतिदिनमयशो भिन्धि निवारय, विश्वं यशोभी रुन्धि पूरय। किञ्च सोदन्वन्मेखलायां समुद्रसहिता मेखला यस्यास्तस्यां विश्वम्भरायां पृथिव्यां करं षष्ठांशं परिकलय गृहाण, समुद्रनेमिं पृथिवीं शाधीति तात्पर्यम्। अत्र निर्वृतोऽबान्धवेन इति द्वितीयचरणान्ते पठनीयम्, बान्धवेन सन्धायेत्यस्यासङ्गतेः॥

अत्र यदपि—तदपि इति पदद्वयमध्ये प्रयुक्तश्चकारोऽन्तर्गडुः सन्ननुचित इत्याह—अत्रेत्यादिना। यथा कश्चन धृष्टो जनः प्रतते विस्तृत उत्सवे समायोजितस्य बहूनां सज्जनानां भोजनस्य पङ्क्तावपरिज्ञातोऽत एव स्वयमनाहूत एव समुपविष्टः पश्चाद् भोजनसमयेऽनाहूतत्वेन रूपेणाभिव्यक्तो ज्ञातः सन् लज्जया दुर्मना आकुलितान्तःकरणो नौचित्यमात्मावस्थानस्य प्रतनोति तथैवायं चकारोपीत्याशयः॥

किन्तु श्रीचक्र कवि के निम्ननिर्दिष्ट पद्य में प्रयुक्त 'च' यह निपात अनुचित है—

"हे राजन्! यद्यपि आप स्वयं सब कुछ जानते हैं, तथापि नीति के अनुसार जो उचित है वह हम बता रहे हैं—जालन्धर देश के अधिपति से आपकी शत्रुता

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अवश्य है, किन्तु इस समय आप उनसे सन्धि कर लें ताकि उनकी ओर से कोई आशङ्का न रह जाये। इस तरह निश्चिन्त होकर आप म्लेच्छों का विनाश करें, प्रतिदिन फैलने वाले दुर्यश का निवारण करें, समस्त विश्व में अपना यश फैलाएँ और समुद्रपर्यन्त भूमण्डल से अपना कर वसूलें ॥"

इस पद्य में 'यदपि च तदपि' इस अंश में चकार निरर्थक है, क्योंकि इसका पूर्वापर वक्तव्यों से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः जिस प्रकार किसी महोत्सव में भोजन करने वाले सज्जनों के बीच पहले न पहचाने जाने के कारण बिना बुलाये भी बैठ गया धृष्ट व्यक्ति पीछे पहचान हो जाने पर अत्यन्त लज्जित होकर अपने विलक्षण व्यवहार आदि से उस मण्डली में अनौचित्य का सञ्चार कर देता है उसी प्रकार यह चकार भी समस्त काव्यार्थ में अनौचित्य का सञ्चार कर देता है ॥

कालौचित्यं दर्शयितुमाह—

कालौचित्येन यात्येव वाक्यमर्थेन चारुताम् ।
जनावर्जनरम्येण वेषेणेव सतां वपुः ॥ २६ ॥

कालकृतौचित्ययुक्तेनार्थेन वाक्यं चारुतामेति वेषपरिग्रहेणेव कालयोग्येन सतामवसरज्ञानां वपुः ॥

अधुना कालौचित्यं व्याचष्टे—**कालौचित्यमिति** ।

कालौचित्येनेति । यथा कालौचित्येन यथाकालं परिगृहीतेन जनानां सज्जनानामावर्जनेनाह्लादकेन निमित्तेन रम्येण वेषेण सतां वपुश्चारुतां सौन्दर्यं याति तथैव जनावर्जनरम्येण कालौचित्येन काव्यस्यार्थेन वाक्यं काव्यात्मकं चारुतां याति प्राप्नोति ॥ २६ ॥

गद्यबन्धः स्फुटार्थः ॥

अब कालौचित्य का निरूपण किया जा रहा है—

जिस प्रकार अवसरानुसार धारण किये जाने के कारण सत्पुरुषों का आवर्जक होने से रमणीय सज्जनों का शरीर सौन्दर्यपरिपूर्ण हो जाता है उसी प्रकार कालानुसारी होने से सहृदयों द्वारा आस्वादन करने योग्य होने के कारण रमणीय अर्थ से काव्य सौन्दर्यपरिपूर्ण हो जाता है ॥

वृत्ति-ग्रन्थ का आशय पूर्ववत् है ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

> योऽभूद् गोपशिशुः पयोदधिशिरश्चौरः करीषङ्कष-
> स्तस्यैवाद्य जगत्पते खगपते शौरे मुरारे हरे।
> श्रीवत्साङ्क ! जडैरिति स्तुतिपदैः कर्णौ नृणां पूरितौ
> ही कालस्य विपर्ययप्रणयिनी पाकक्रियाश्चर्यभूः ॥

अत्रामर्षविषविषमाविष्कारमुमूर्षुणा शिशुपालेनाभिधीयमाने यत्किल गोपालबालः पयोदधिशिरश्चौरः करीषङ्कषोऽभूत्तस्यैवाद्य जगन्नाथादिभिः स्तुतिपदैर्नृणां कर्णौ पूरितौ, ही बत कालस्य विपर्ययकारिणो पाकक्रियाऽऽश्चर्यभूमिरिति वाक्येऽभूदिति भूतकालेनाश्चर्यपरिपोषरुचिरमारब्धाक्षेपलक्षणं वाक्यौचित्यं कृतम् ॥

उदाहरणमाह—यथेति ।

योऽभूदिति । यो गोपशिशुर्बालकृष्णः पुरा पयसो दुग्धस्य दध्नश्च शिरश्चौरश्चौराणां मूर्धन्यः करीषं शुष्कगोमयं कषति निरस्यतीति करीषङ्कषश्चासीत्तस्यैवाद्य बाल्यातिक्रमणानन्तरम् जडैस्तत्कर्तृकैः 'जगत्पते, खगस्य गरुडस्य च पते, शौरे, मुरारे, हरे, श्रीवत्सोऽङ्को लक्ष्म यस्य तादृश' इत्यादिभिर्महत्त्वातिशयख्यापकैः स्तुतिपदैः सम्बोधनपदैर्नृणां कर्णौ पूरितौ । हीति पदं विस्मये । खेद इति त्वपव्याख्यानम् । कालस्य समयस्य विपर्ययं पूर्वावस्थाविपरीतं प्रणेतुं शीलमस्या इति विपर्ययप्रणयिनी पाकक्रिया परिणामात्मिका वृत्तिराश्चर्यस्य भूः स्थानम् । हीत्यव्ययेनार्थतः प्रतीतस्यापि विस्मयस्य आश्चर्यभूः इत्यनेन शब्दत उपादाने न पौनरुक्त्यम् । यदाह कण्ठाभरणकृत्—आर्थ्या वृत्त्या लब्धस्य शास्त्रेतिहासादौ शाब्द्या वृत्त्या भणनं न पौनरुक्त्याय इति । कालस्येति कर्त्तरि षष्ठी । शिरश्चौर इति राजदन्तादिवत्समासः ॥

शिशुपालकर्तृकेऽस्मिन् कृष्णाक्षेपे तत्प्रशंसकानां मूर्खत्वोपवर्णनं युक्तमेव ॥

कालौचित्योपपत्तिमाह—अत्रेति । भूतकालिकेनाभूदिति क्रियापदेनाद्यतनत्वानभिव्यक्तेरचिरपूर्वकालपर्यन्तं कृष्णस्य निन्द्यत्वं द्योत्यत इति भूतकालपरिग्रहः क्रियायामभूदित्यत्रात्यन्तमुचित इति सन्दर्भाशयः । आश्चर्यपरि-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पोपरुचिरम् इति । चिरकालपूर्वं निन्द्यस्य दीर्घकालव्यवधाने सति प्रशस्यत्ववर्णनं न तथा विस्मयकरं यथाऽचिरपूर्वकालपर्यन्तं निन्द्यस्य सपद्येव प्रशस्यत्वोपवर्णनमिति भूतकालिकस्याभूदिति क्रियापदस्याश्चर्यपरिपोषकरत्वम् । एतच्च पर्यवस्यति काल एव **सविशेषणे हीत्यादिन्यायादिति** भावार्थः । अधिक्षेपो निन्दा । लक्षणशब्दः स्वरूपार्थकः ॥

अत्र तृतीयचरणे **श्रीवत्साङ्क इति स्तवैर्जडकृतैः कर्णौ**·····इति पठनीयम् ॥

कालौचित्य का उदाहरण मेरी ही मुनिमतमीमांसा के अधोनिर्दिष्ट पद्य में उपलब्ध है—

"यह जो ग्वाले का बच्चा कृष्ण दूध एवं दही आदि का पक्का चोर था एवं गोशाला से गोबर उठाता था उसी के आज मूर्खों द्वारा 'हे जगदीश्वर, हे खगाधिपते, हे शौरे, हे मुरारे, हे हरे, हे श्रीवत्सचिह्नधारक' इत्यादि प्रशंसार्थक सम्बोधनों से लोगों के कान भर चुके हैं। यह बड़े ही आश्चर्य का विषय है कि काल वास्तविकता को कैसे उलट देता है ॥"

यह वक्तव्य शिशुपाल द्वारा दिया गया है जो कृष्ण के विद्वेषरूपी विष के दुष्प्रभाव से मरने ही वाला है। इसमें 'अभूत्' इस क्रियापद में भूत काल का प्रयोग औचित्यपूर्ण है, क्योंकि कुछ पूर्व चोरी आदि करने वाले कृष्ण की शिशुपालकृत उपर्युक्त निन्दा का यह परिपोषक है। तात्पर्य यह है कि जो अभी कुछ देर पहले तक चोरी करता रहा उसी की थोड़ी ही देर बाद मूर्खों द्वारा उपर्युक्त प्रशंसा को अत्यन्त अनुचित बतलाने के कारण यह भूतकालिकनिर्देश शिशुपालकृत निन्दा का नितान्त परिपोषक है ॥

यथा वा मालवकुवलयस्य—

च्युतसुमनसः कुन्दाः पुष्पोद्गमैरलसा द्रुमा
मनसि च गिरं गृह्णन्तीमे किरन्ति न कोकिलाः।
अथ च सवितुः शीतोल्लासं लुनन्ति मरीचयो
न च जरठतामालम्बन्ते क्लमोदयदायिनीम् ॥

अत्र शिशुतरवसन्तकान्तोपवननवरसोल्लाससूच्यमानमनसिजोत्कण्ठावर्णनायामृतुसन्धिसमुचिताः कुन्दाः कुसुमावसानशून्यतनवः, किंशुकाशोकाः कलिकोद्गमभरालसाः, मनसि कोकिलाः कलकूजितान्यनुसन्दधति, रविमरीचयः शीतोल्लासमथ च निवारयन्ति न च

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन्तापदायिनीं प्रौढतामालम्बन्त इत्युक्ते वर्तमानकालपदेष्वेव हृदयसंवादसुन्दरमौचित्यं किमप्यामोदते ॥

उदाहरणान्तरमाह—यथा वेति।

च्युतसुमनस इति। कुन्दास्तद्वृक्षाः च्युतसुमनसः च्युतानि पतितानि सुमनांसि पुष्पाणि येभ्यस्तथा कुसुमरहिता इत्यर्थः। द्रुमाः किंशुकादिवृक्षाश्च सद्यः-प्राप्तवसन्तप्रभावात् पुष्पाणामुद्गमैरुदयैरलसा भाराक्रान्ता इव। इमे कोकिलाश्च गिरं कलरवं मनस्येव गृह्णन्ति चिन्तयन्ति न पुनः किरन्ति, वसन्तस्याप्राप्तत्वात्। अथ च सवितुः सूर्यस्य मरीचयः किरणाः शीतस्योल्लासमुत्कर्षं लुनन्ति छिन्दन्ति दूरीकुर्वन्ति न पुनः क्लमस्य श्रमस्योदयं दातुं शीलं यस्यास्तथाविधां जरठतां कर्कशतामप्रियतामालम्बन्ते। तदानीं शीतप्रभावसत्त्वेन सूर्यकिरणा नाप्रिया भवन्तीति भावः ॥

अत्र पद्ये सद्यःसम्प्राप्तवसन्तर्तुवर्णने प्रक्रते गृह्णन्तीत्यादिवर्त्तमानकालप्रयोगः परमोचित इत्याह—**अत्रेति**। शिशुतरोभिनवो यो वसन्तस्तेन कान्तं रम्यं यदुपवनं तस्य यो नवो रसोल्लासस्तेन सूच्यमाना या मनसिजस्य कामदेवस्योत्कण्ठा तस्या वर्णनायाम् इति योगार्थः। प्रौढताऽसह्यता। हृदयसम्वादेन निमित्तेन सुन्दरं हृदयसम्वादसुन्दरम् ॥

इसी तरह मालवकुवलय के अधोनिर्दिष्ट पद्य में भी कालौचित्य है—

"शिशिर एवं वसन्त ऋतुओं के सन्धिकाल में कुन्द (चमेली) के वृक्षों से फूल गिर चुके हैं और अशोक एवं पलाश आदि वृक्ष कलियों के भार से अलसा रहे हैं। वसन्त के आरम्भ में ये कोकिल मन में तो कूकने की भावना रखते किन्तु अभी कूक नही रहे हैं और सूर्य की किरणें ठण्ढ के प्रकोप को दूर करने वाली होने से अभी तक लोगों को किसी प्रकार का कष्ट न देने के कारण कठोर नही हुई हैं ॥"

इस पद्य में नवागत वसन्त ऋतु के प्रभाव से रमणीय उपवनों में रस के नवीन उल्लास द्वारा सूचित कामदेव की उत्कण्ठा का वर्णन उपर्युक्त रूप में किया गया है। इसमें कोकिल आदि की उपर्युक्त स्थिति के वर्णन के लिए 'गृह्णन्ति' आदि वर्त्तमानकालिक क्रियापदों का प्रयोग अत्यन्त उचित है ॥

यथा वा भट्टभल्लटस्य—

मृत्योरास्यमिवाततं धनुरिदं मूर्च्छद्विषाश्चेषवः
शिक्षा सा विजितार्जुना प्रतिलयं सर्वाङ्गलग्ना गतिः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तः क्रौर्यमहो शठस्य मधुनो हा हारि गीतं मुखे
व्याधस्यास्य यथा भविष्यति तथा मन्ये वनं निर्मृगम् ॥

अत्र लुब्धकस्य धनुःसायकशिक्षागतिक्रौर्यगीतानि तथा यथा वनं निर्मृगं भविष्यतीति भविष्यत्कालः प्रकृतार्थपरिपोषेण हृदयसंवादौचित्यमादधाति ॥

तृतीयं कालौचित्योदाहरणमाह—**यथा वेति** ।

मृत्योरिति । यथा यतोऽस्य शठस्य व्याधस्य धनुर्मृत्योर्यमस्यास्यं मुखमिवाततं विस्तृतम् , इषवो वाणाश्च मूर्च्छत् प्रसरद्विषं येभ्यस्तथाविधाः, धनुर्विद्यायाः शिक्षा च विजितोर्जुनो यया तथाविधा, अर्जुनधनुर्विद्याकौशलादप्युत्कृष्टतरेण कौशलेन युक्ता, सर्वाङ्गलग्ना सर्वेषु पादाद्यङ्गेषु लग्ना समवेता गतिश्च प्रतिलयम् लयं लयं प्रति वर्तते, एकैका गतिरेकैकप्रलयप्रतीकभूता, अन्तश्चेतसि क्रौर्यम् मुखे च मधुनोऽप्यधिकतरं हारि रम्यं गीतम् वर्त्ततेऽतो मन्ये यदिदं वनं निर्मृगं पशुशून्यं हरिणशून्यं वा भविष्यतीति । एतादृशव्याधस्य मृगयोद्यतत्वे मृगाणां जीवनं न सम्भाव्यत इति भावः । अहो हा इति चाव्ययद्वयं दैन्यातिशयव्यञ्जकम् ॥

अत्र धनुरादिनिर्मृगत्वापादकसामग्र्याः समवधाने भविष्यतो निर्मृगत्वस्य भविष्यतीति भविष्यत्कालिकक्रियापदप्रयोगेणोपवर्णनमुचितमित्याह—**अत्रेत्यादिना** । एतावता क्रमेणातीतवर्त्तमानानागतकालानामौचित्यमुदाहृतम् ॥

इसी प्रकार भट्ट भल्लट के इस पद्य में भी कालौचित्य है हीं—

"यतः इस शठ व्याध का यह धनुप यमराज के प्रलयकालीन विकट मुख के समान फैला हुआ है, ये वाण विप उगल रहे हैं, धनुर्विद्या में इस व्याध की चतुरता अर्जुन को भी मात देने वाली है, इसके एक-एक अङ्ग की गति एक-एक प्रलय की सूचना देने वाली है और इसका हृदय अत्यन्त क्रूर है जव कि मुँह से तो मधु से भी मधुरतर गीत निकल रहा है अतः समझता हूँ कि आज यह वन निश्चित ही मृगशून्य होने वाला है ॥"

इस पद्य में वन के मृगशून्य होने के कारणों—विस्तृत धनुप, विपैले वाण, धनुर्विद्या मे निपुणता, प्रलयकारी गति और भ्रामक गीत—के समवधान की वात पहले कही गई है जिससे इनका परिणाम, वन का मृगशून्य होना, निकट भविष्य में ही सामने आने वाला है। एवञ्च भविष्यत्कालिक परि-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

णाम का प्रतिपादक होने से 'भविष्यति' इस क्रियापद का प्रयोग परमौचित्य-युक्त है ॥

न तु यथा वराहमिहिरस्य—

क्षीणश्चन्द्रो विशति तरणेर्मण्डलं मासि मासि
लब्ध्वा काञ्चित्पुनरपि कलां दूरदूरानुवर्ती ।
सम्पूर्णश्चेत्कथमपि तदा स्पर्द्धयोदेति भानो-
र्नो दौर्जन्याद्विरमति जडो नापि दैन्याद्व्यरंसीत् ॥

अत्र रवेर्मण्डलं क्षीणः शशी प्रतिमासं प्रविशति, ततः काञ्चिदाप्यायिकां कलां प्राप्य दूरे दूरे भवति, परिपूर्णश्च तस्यैव स्पर्द्धयाऽभ्युदेति, दौर्जन्यान्न विरमति न च दैन्याद्व्यरंसीदित्येतद् 'विरमति व्यरंसीत्' इति परस्परासङ्गतं कालपदद्वयं चन्द्रस्य सदृशयोर्दौर्जन्यदैन्ययोः सर्वकालमभिनिर्वृत्तयोर्यदुपन्यस्तं तत्र व्यरंसीदिति विरुद्धार्थत्वादनुचितमेव ॥ २६ ॥

प्रसङ्गात् कालानौचित्यस्योदाहरणमाह—न त्विति ।

क्षीण इति । मासि मासि प्रतिमासं कृष्णपक्षे प्रतिदिनं क्रमेण कलाक्षयात् क्षीणो नष्टसकलकलस्तरणेः सूर्यस्य मण्डलं विशति, अमायां सकलकलाक्षयाददृश्यो भवंश्चन्द्रः सूर्यकक्षां प्रविशति (तेनाभिभूयत) इति शास्त्रप्रसिद्धिः । पुनश्च शुक्लपक्षादौ यदैकामपि कलामासादयति तदैव सूर्यमण्डलाद् दूरदूरमनुवर्त्तते, ततो दूराद् दूरतरमपसरति । शुल्कपक्षादौ प्रतीच्यामेव चन्द्रोदयावभासात्प्राच्यामुदीयमानात्सूर्याच्चन्द्रस्य दूरानुवर्त्तित्वं बोध्यम् । एतच्च चन्द्रस्यापकृष्टत्वप्रयोजकम् , यतो हि विपत्तिकाले शरण्यमाश्रित्यैषत्सम्पत्त्यधिगमे तस्योपेक्षणमनुचितम् । न केवलमेतावदेवापि तु यदा यथाकथञ्चिद् दिने दिने कलामवाप्य पौर्णमास्यां सम्पूर्णोयं भवति तदा भानोः स्वशरण्यस्य सूर्यस्यैव स्पर्धयोदेति, सायं सूर्यमण्डलं पश्चिमदिशि चन्द्रमण्डलं च पूर्वंदिश्यवलोक्यत इति स्पर्धयोदय उक्तः । तदेवं चन्द्रस्य परस्परविरुद्धस्वभावत्वमन्ते समुपसंहरति—नो दौर्जन्यादित्यादिना । सोयं जडः पराधीनसत्ताकश्चन्द्रः प्रतिमासं पौर्णमास्यां सूर्यस्पर्धितया न दौर्जन्याद्विरमति नापि च प्रतिमासं कृष्णपक्षे विशेषेणामायां सर्वथा क्षीणः सन् सूर्यात् कलां क्रमेण

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

याचमानो दैन्यादपि व्यरंसीत्। यद्यपि पूर्वं स्पर्धायां पश्चाच्च याञ्चादैन्ये व्यतिक्रमे वाऽनयोर्न जडत्वे विशेषः, आपाततश्च पूर्वं दैन्यं बिभ्रत एव पश्चात् स्पर्धितुर्विशेषो जडत्वे प्रतीयते तथापि मासस्य शुक्लपक्षादित्वमभिप्रेत्य पूर्वं दौर्जन्यस्य पश्चाच्च दैन्यस्य निर्देशः समर्थयितव्यः ॥

वस्तुतः पूर्वं क्रमेण निर्दिष्टयोर्दैन्यदौर्जन्ययोः पश्चाद् व्युत्क्रमेण निर्देशो-युक्त एवेति विवेचनीयं विज्ञैः ॥

अत्र 'दौर्जत्यान्न विरमति नापि च दैन्याद् व्यरंसीत्' इत्यत्रैकत्र वर्तमान-स्यापरत्र च भूतस्य कालस्य निर्देशोऽसङ्गतः। वस्तुतस्तु सार्वकालिकत्वेन दौर्जन्यदैन्ययोः प्रतिमासं प्रकटयोर्वर्तमानप्रयोगे नानौचित्यमपि तु भूतप्रयोग एवेत्याशयवानाह—**अत्रेत्यादि**। आप्यायिकां प्रसादकरीम् सम्वर्धिकाम्वा। **सदृशयोरिति**। सादृश्यं च दौर्जन्यदैन्ययोरेकैकपक्षगामित्वेन प्रतिमासम्, तुल्यानुपातिकह्रासवृद्धिभ्याञ्च। **विरुद्धार्थत्वादिति**। विरुद्धार्थत्वं च भूत-कालिकस्य क्रियापदस्य वर्तमानभविष्यतोः सतोऽपि दैन्यस्याभावावेदकत्वेन बोध्यम् ॥

व्यरंसीदित्यस्य विभक्तिप्रतिरूपकाव्ययत्वे स्वीकृते यद्यपि शक्यसमावेय-मिदमनौचित्यन्तथाप्येतन्न कवित्वपक्षपातीति तिरस्कृतमेतत्समाधानमस्माभिः ॥

किन्तु वराहमिहिर के निम्ननिर्दिष्ट पद्य में कालौचित्य नही है—

"कला के क्रमशः क्षीण हो जाने पर प्रतिमास कृष्णपक्ष की अमावश्या को यह चन्द्रमा सूर्य की कक्षा में प्रवेश कर जाता है। पुनश्च शुक्लपक्ष में उसीसे एक-एक कला को क्रमशः प्राप्तकर उससे दूर होने लग जाता है। इस प्रकार पूर्णिमा को सम्पूर्ण कलाओं से सम्पन्न होकर यह सूर्य के साथ स्पर्धा करता हुआ सन्ध्याकाल में पश्चिम दिशा में अवस्थित सूर्य के विपरीत दिशा—पूर्व दिशा में उगता है। अतः यह पराधीन चन्द्रमा न तो अपने दौर्जन्य से ही विरत होता है और न अपनी याचना की आदत से ही ॥"

इस पद्य में 'विरमति' एवं 'व्यरंसीत्' ये दोनो क्रियापद क्रमशः वर्त्तमान-कालिक एवं भूतकालिक विराम-क्रिया के प्रतिपादक होने से परस्पर-विरुद्ध हैं। इनमें भी चन्द्रमा के स्वभाव के प्रतिपादनार्थ वर्त्तमानकालिक क्रियापद के उचित होने पर भी 'व्यरंसीत्' यह भूतकालिक क्रियापद अनुचित है ॥

देशौचित्यं दर्शयितुमाह—

देशौचित्येन काव्यार्थः ससंवादेन शोभते।
परं परिचयाशंसी व्यवहारः सतामिव ॥ २७ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देशविषयौचित्येन हृदयसंवादिना काव्यार्थः सतां व्यवहार इव परिचयसूचकः शोभते ॥

क्रमप्राप्तं देशौचित्यम्व्याचष्टे—देशौचित्यमिति ।

देशौचित्येनेति । ससम्वादेनान्तःसम्वादिना देशौचित्येन परिचयाशंसी देशविशेषपरिचयसूचकः काव्यार्थः तथा परं शोभते यथा परिचयाशंसी परिचयसूचकः सतां व्यवहारो हृदयसम्वादकत्वात् ॥ २७ ॥

वृत्तिग्रन्थः स्फुटार्थः ॥

अब देशौचित्य का निरूपण किया जा रहा है—

देशविषयक औचित्य के कारण हृदयाह्लादक काव्यार्थ कवि के देशपरिचय का सूचक होने से उसी प्रकार अत्यन्त सुशोभित होता जिस प्रकार सज्जनों का परिचयसूचक एवं हृदयावर्जक व्यवहार अत्यन्त सुशोभित होता ॥ २७ ॥

वृत्ति का अर्थ पूर्ववत् है ॥

यथा भट्टभवभूतेः—

पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां
विपर्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम् ।
बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं
निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति ॥

अत्र बहुभिर्वर्षैरतिक्रान्तैः शम्बूकवधप्रसङ्गेन दण्डकारण्यं रामः पूर्वपरिचितं पुनः प्रविष्टः समन्तादवलोक्यैवं ब्रूते—'पुरा यत्र नदीनां प्रवाहस्तत्रेदानीं तटम्, वृक्षाणां घनविरलत्वे विपर्ययश्चिराद् दृष्टं वनमिदमपूर्वमिव मन्ये, पर्वतसन्निवेशस्तु तदेवैतदिति बुद्धिं स्थिरीकरोति' इत्युक्ते चिरकालविपर्ययपरिवृत्तसंस्थानकाननवर्णनया हृदयसंवादी देशस्वभावः परमौचित्यमुद्द्योतयति ॥

एतदुदाहरति—यथेति ।

पुरेति । शम्बूकवधाय दण्डकारण्यं प्रविष्टेन रामभद्रेण कृतं दण्डकप्रत्यभिज्ञानमत्र वर्णितम् । पुराऽस्मद्वनवासकाले यत्र सरितां स्रोत आसीत् तत्राधुना पुलिनं तटं दृष्टम् । क्षितिरुहां वृक्षादीनां घनभावो विरलभावश्च विपर्यासं यातः, यत्र पुरा वृक्षादीनां घनत्वमासीत्तत्राधुना विरलत्वम्, यत्र च विरलत्व-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मासीत्तत्राधुना घनत्वं दृष्टम् । एतत्सर्वं प्रायिकम् । बहोः कालाद्दीर्घकालानन्तरं दृष्टमिदं वनमपरं वनान्तरमिव मन्ये सन्दिहे । तथापि प्रत्यभिज्ञानकारणं व्यनक्ति—**निवेश इत्यादिना** । शैलानामचलानां यथापूर्वं निवेशोऽवस्थानं पुनस्तदेवेदं वनं दण्डकाख्यमिति बुद्धिं प्रत्यभिज्ञानं द्रढयति निश्चाययति ।।

इदं सम्प्रति दृश्यमानं पुलिनादि किं स्रोतआदिस्थानीयमेवोतान्यदेवेति संशयसद्भावाच्छैलसन्निवेशनिमित्तकं प्रत्यभिज्ञानं तत्त्वव्यवस्थापकमिति तात्पर्यम् ।। अत्र **यात** इति भूतक्तान्तेन पुलिनादिदर्शनं पूर्वं जातम् अनन्तरं च शैलसन्निवेशदर्शनमिति प्रतीयते, युगपदुभयदर्शनसत्त्वे विशेषदर्शनसद्भावेन संशयासम्भवात् । विपर्ययनिराकरणं तु नात्र प्रत्यभिज्ञानफलम्, **पुरा यत्र स्रोत** इत्यादिनैककोटेः पुलिनादिना चापरकोटेः स्पष्टमुपादानेन विपर्ययासम्भवात् ।।

अत्र प्रवाहाङ्कपरिवर्त्तनस्य नदीस्वभावत्वाद् वृक्षादीनां घनविरलभावयोश्च वनस्वभावत्वात् प्रकृतं काननवर्णनं स्वभावानुरूपत्वादत्यन्तमुचितमिति पद्यविवरणपूर्वकम्प्रतिपादयति—**अत्रेत्यादिना** । चिरकालजन्यविपर्ययेण परिवृत्तं संस्थानं सन्निवेशो वृक्षादिसन्निवेशपरिवर्त्तनद्वारेण यस्य तस्य काननस्य दण्डकाख्यस्य वर्णनयेति समासार्थः ।।

देशौचित्य का उदाहरण भवभूति के इस पद्य में है—

"पहले जहाँ नदियों की धारा वह रही थी वहीं आज उनका तट दिखाई पड़ा; पहले जहाँ घने वृक्ष थे वहीं आज पतले और जहाँ पतले थे वहीं घने दिखाई पड़े। बहुत दिनों बाद देखे जाने पर यह दण्डक वन लगता ही नही कि वही वन है। फिर भी, पहाड़ तो जहाँ थे वहीं हैं; इसीलिए यह प्रत्यभिज्ञा निश्चित रूप में हो पाती है कि यह वही दण्डक वन है ।।"

वन से लौटने के बहुत वर्ष बाद शम्बूक का वध करने के लिए जब रामचन्द्र पुनः दण्डकारण्य पहुँचे हैं उसी समय उनके द्वारा दण्डकारण्य के विषय में यह वक्तव्य दिया गया है। इस में चिरकाल बीत जाने पर वन की जैसी स्वाभाविक स्थिति होती है उसी का वर्णन किया गया है। अतः यह सहृदयाह्लादक रूप में वर्णित देशस्वभाव औचित्याधायक है ।।

न तु यथा राजशेखरस्य—

कर्णाटीदशनाङ्कितः शितमहाराष्ट्रीकटाक्षाहतः
प्रौढान्ध्रीस्तनपीडितः प्रणयिनीभ्रूभङ्गवित्रासितः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लाटीबाहुविवेष्टितश्च मलयस्त्रीतर्जनीतर्जितः
सोऽयं सम्प्रति राजशेखरकविर्वाराणसीं वाञ्छति ॥

अत्र कर्णाटमहाराष्ट्रान्ध्रलाटमलयललनासम्भोगसुभगः कालेन गलितरागमोहः सम्प्रति राजशेखरकविर्वाराणसीं गन्तुमिच्छतीत्युक्ते शृङ्गाररसतरङ्गितवराङ्गनाप्रसङ्गेऽनङ्गनिर्गलदक्षिणापथदेशोद्देशमध्ये प्रणयिनीभ्रूभङ्गवित्रासित इति देशोपलक्षणविरहितकेवलप्रणयिनीपदेन देशौचित्यमुपचितमप्यनुचिततां नीतम् ॥ २७ ॥

प्रसङ्गाद्देशानौचित्यं निदर्शयति—न त्विति ।

कर्णाटीत्यादि । यः पूर्वं कदाचित् कर्णाटीनान्तद्देशीयकामिनीनां दशनैरङ्कितः, महाराष्ट्रीणां शितैस्तीक्ष्णैः कटाक्षैराहतः, आन्ध्रीणां वामानां प्रौढाभ्यां स्तनाभ्यां पीडितः, प्रणयिन्याः भ्रूभङ्गेन वित्रासितः, लाटीनां नर्मदापरतटवर्त्तिनीनां बाहुपाशैर्विवेष्टित आलिङ्गितोथ च मलयस्त्रीणां कावेरीतटवर्तिनीनां रामाणां तर्जनीभिर्लम्पटत्वेन तर्जितश्चाभूत् सोयं राजशेखरनामा कविः सम्प्रति जरागमे सति विरक्तः सन् वाराणसीं गन्तुमिच्छति ॥

यद्वा भ्रूभङ्गवित्रासितस्तर्जनीतर्जितश्च रतिकाले येन तयोः सम्भाषणं तात्कालिकं नापरे शृणुयुरिति व्याख्येयम् ॥ पादत्रयवर्णनेनास्य दक्षिणापथवर्तियुवतिजनमनोहरत्वं सूचितं भवति ॥

अत्र पद्ये दक्षिणापथवर्त्तियुवतिजनमनोहरत्ववर्णनप्रक्रमे प्रणयिनीनामुल्लेखो देशविशेषानिर्देशादनुचित इत्युपपादयति—अत्रेत्यादिना । कालेन यौवनात्ययोपलक्षितेनेति शेषः । अनङ्गाय निरर्गलो यो दक्षिणापथदेशानामुद्देशो नामसंकीर्त्तनन्तस्य मध्ये । देशौचित्यम् कर्णाटादिदेशोद्देशनिमित्तकमित्यादिः ॥

किन्तु राजशेखर के निम्नोद्धृत पद्य में देशौचित्य नहीं है—

"जो पहले कर्नाटक की कामिनियों के दन्तक्षत से अङ्कित हुआ करता था, महाराष्ट्र की गौराङ्गनाओं के कटाक्षों से आहत हुआ करता था, आन्ध्र देश की प्रौढ़यौवनाओं के स्तनों के भार से अभिभूत हुआ करता था, प्रेयसियों के भ्रू भङ्गों से डराया जाता था, लाटदेशीय (नर्मदातटवर्त्ती) रमणियों की बाहों में समा जाया करता था और मलयदेशीय (कावेरीतटवर्त्ती) ललनाओं की तर्जनियों

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से धमकाया जाता था वही राजशेखर कवि अब वृद्ध हो जाने से विरक्त हो जाने के कारण वाराणसी जाना चाहता है ॥"

इस पद्य में श्रृङ्गार रस में गोता लगाने वाली कर्नाटक आदि दक्षिण-देशों की कामिनियों के निर्देश के प्रसङ्ग में एकाएक देशविशेष का उल्लेख किये विना 'प्रेयसियों के भ्रूभङ्गों से डराया जाता था' यह कथन समस्त वक्तव्य के देशविषयक औचित्य पर पानी फेर देता है। अतः इसमें देशानौचित्य स्पष्ट है ॥

कुलौचित्यं दर्शयितुमाह—

कुलोपचितमौचित्यं विशेषोत्कर्षकारणम् ।
काव्यस्य पुरुषस्येव प्रियं प्रायः सचेतसाम् ॥ २८ ॥

पुरुषस्येव काव्यस्य कुलोन्नतमौचित्यं सविशेषोत्कर्षजनकं प्रायेण बाहुल्येन सहृदयानामभिमतम् ॥

अधुना कुलौचित्यं निरूपयति—कुलौचित्यमिति ।

कुलोपचितमिति । काव्यस्य कुलोपचितं योग्यकुलवर्णनोपचितमौचित्यं विशेषोत्कर्षस्य कारणं भवत् प्रायेण बाहुल्येन सचेतसां सहृदयानां तथा प्रियं भवति यथा पुरुषस्य कुलोपचितं सत्कुलजन्मजन्यमौचित्यं विशेषोत्कर्षकारणं सद् भवति ॥ २८ ॥

वृत्तिः स्पष्टा ॥

अब कुलौचित्य का निरूपण किया जा रहा है—

जिस प्रकार कुलीनता से सम्वर्द्धित औचित्य पुरुष के विशेष उत्कर्ष का जनक होकर सहृदयों के हृदय को आह्लादित करता उसी प्रकार काव्य में भी कुल के समुचित वर्णन से सम्वर्द्धित औचित्य काव्य के विशेष उत्कर्ष का आधायक होकर सहृदयाह्लादक हो जाता है ॥ २८ ॥

वृत्ति का अर्थ पूर्ववत् है ॥

यथा कालिदासस्य—

अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे
नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम् ।
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र 'अथ स राजा वृद्धस्तरुणाय सूनवे राज्यं प्रतिपाद्य तया देव्या सह तपोवनं भेजे; विरक्तचेतसामिक्ष्वाकूणामन्ते हि कुलव्रतमिदमेव' इत्युक्ते भूतवर्तमानभाविनां तद्वंश्यानामौचित्यमुन्मीलितम् ॥

उदाहरति—यथेति ।

अथेति । दिलीपकर्तृकवानप्रस्थाश्रमप्रवेशवर्णनमिदम् । अथ स्वगृह्यकर्मसमापनानन्तरं विषयेभ्य उपभोग्यधनेभ्यो व्यावृत्त आत्माऽन्तःकरणं यस्य तथाविधः स दिलीपो यूने सूनवे समर्थाय स्वपुत्राय रघवे नृपतिककुदं राजलक्ष्मभूतं सितं श्वेतमातपवारणं छत्रं यथाविधि यथाशास्त्रं दत्त्वा तस्मै राज्यभारं समर्प्य तया देव्या महिष्या सुदक्षिणया सह मुनिवनस्य तपोवनस्य तरूणां छायां वानप्रस्थाश्रममिति यावत् शिश्रिये आश्रितवान् । तथा हि गलितं वयो येषां तेषां वृद्धानामित्यर्थः, इक्ष्वाकूणां तत्कुलोत्पन्नानां भूभुजामिदं यथासमयं वानप्रस्थाश्रयणं कुलव्रतम् ॥

अत्र चतुर्थचरणे सर्वेषामेवेक्ष्वाकुकुलोत्पन्नानां राज्ञां यथाकालं वानप्रस्थाश्रयणवर्णनेन तादृशकुलमाहात्म्यप्रतिपादनादिदं समुचितमित्याह—अत्रेत्यादिना । शेषं स्पष्टम् ॥

कुलौचित्य का उदाहरण कालिदास के इस पद्य में उपलब्ध है—

"तदनन्तर विषयभोग से विरक्त अन्तः करण वाले राजा दिलीप ने अपने युवक पुत्र रघु को श्वेत छत्र आदि राजचिह्न देकर महारानी सुदक्षिणा के साथ तपोवन चले गए—वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश कर गए, क्योंकि इक्ष्वाकु-वंशीय राजाओं का यह कुलव्रत रहा है कि जब उनके पुत्र राज्य करने योग्य हो जाते तो वे वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश कर जाते ॥"

इस पद्य में चतुर्थ चरण द्वारा इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न भूत, वर्त्तमान तथा भविष्य के राजाओं के वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश का वर्णन कर कवि ने उस कुल के औचित्य का प्रतिपादन किया है ॥

न तु यथा यशोवर्मदेवस्य—

उत्पत्तिर्भण्डकुले यदभीष्टं तत्पदं समाक्रान्तम् ।
भोगास्तथापि दैवात्सकृदपि भोक्तुं न लभ्यन्ते ॥

अत्र ममोत्पत्तिर्भण्डकुले समीहितपदाक्रमणं च निष्पन्नं तथापि दैवार्पितप्रियावियोगाद्भोगा भोक्तुं न लभ्यन्त इत्यभिहिते स्वसंवेद्यमेव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भण्डकुलमन्यत्राप्रसिद्धं स्वयमेव निर्दिश्यमानमुत्कर्षविशेषणविरहित-केवलपदोपादानेन निरर्थकतया निरौचित्यमेव । इक्ष्वाकुकुलस्य तु निर्विशेषणत्वमुपपद्यत एव, त्रिभुवनप्रसिद्धौचित्यचरित्रत्वात् ॥ २८ ॥

प्रसङ्गात् कुलानौचित्यमप्युदाहरति—न रिवति ।

उत्पत्तिरिति । यद्यपि भण्डकुले ममोत्पत्तिर्जन्माभूद् यच्चाभीष्टं पदं तदपि समाक्रान्तमवाप्तम् । तथापि प्रतिकूलाद् दैवात् प्रियावियोगे जाते भोगा भोग्याः पदार्थाः सकृदेकवारमपि भोक्तुं न लभ्यन्ते । प्रियावियुक्तस्य खेदाभिव्यक्तिरियम् ॥

अत्र भण्डकुलनिर्देशस्य प्रकृतार्थानुपकारकतयाऽनौचित्यमुपपादयति—अत्रेत्यादिना । दैवेन प्रतिकूलभागधेयेनार्पितो यः प्रियावियोगस्तस्मात् कारणात् । अन्यत्राप्रसिद्धमित्यत्र प्रसिद्धत्वं प्रकृष्टतया विवक्षितम्, इतरथा भण्डकुलस्यापामरपरिचितत्वादसंगतमिदं स्यात् । उत्कर्षप्रतिपादकेन विशेषणेन विरहितं पदं निर्विशेषणं भण्डकुलपदं तस्योपादानेन ॥

भण्डकुलादिक्ष्वाकुकुलस्य व्यतिरेकसद्भावात्तस्य निर्विशेषणस्योपादानेपि पूर्वोदाहृतरघुवंशपद्ये नानौचित्यसञ्चार इत्याह—इक्ष्वाक्वित्यादि ॥

किन्तु यशोवर्मदेव के अधोनिर्दिष्ट पद्य में यह कुलौचित्य नही है—

"भाँड़ के कुल में मेरा जन्म हुआ और जो अभीष्ट पद था वह प्राप्त भी हो गया, किन्तु दौर्भाग्य के कारण प्रियतमा का वियोग हो जाने से उपभोगयोग्य पदार्थों का एक बार भी भोग नही कर पाता ॥"

इसमें भण्डकुल का निर्देश है । यह महत्त्वपूर्ण कुल के रूप में न तो लोकप्रसिद्ध है और न इसकी प्रसिद्धि का प्रतिपादक कोई विशेषण हीं पद्य में प्रयुक्त है । अतः अपने महत्त्व के ख्यापनार्थ इस कुल का इस रूप में निर्देश व्यर्थ एवम् अनुचित है ॥

यह स्थिति इक्ष्वाकुकुल की तो नही है यद्यपि उसका भी पूर्वपद्य में विना प्रसिद्धिवाचक विशेषण के हीं निर्देश है, क्योंकि वह तो तीनों लोकों में उच्च कुल के रूप मे विख्यात है ॥

व्रतौचित्यं दर्शयितुमाह—

काव्यार्थः साधुवादार्हः सद्व्रतौचित्यगौरवात् ।
सन्तोषनिर्भरं भक्त्या करोति जनमानसम् ॥ २९ ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काव्यार्थः समुचितव्रतगौरवात्साधुवादयोग्यः सन्तोषपूर्णं जनमनः करोति। भक्तिर्विच्छित्तिः॥

व्रतौचित्यं क्रमप्राप्तं व्याचष्टे—व्रतौचित्यमिति । व्रतं विहितानुष्ठानम् ।

काव्यार्थ इति। सद्व्रतौचित्यप्रयुक्तगौरवात् साधुवादमर्हतीति साधुवादार्हः काव्यार्थो भक्त्या विच्छित्या जनमानसं सन्तोषनिर्भरं सन्तोषपूर्णं करोति ॥ २९ ॥

वृत्तिः स्पष्टा ॥

अब व्रतौचित्य का निरूपण किया जा रहा है—

सुन्दर व्रतौचित्य की महिमा से साधुवादयोग्य काव्यार्थ जनमानस को अपने चमत्कार से पूर्णतः सन्तुष्ट कर देता है ॥ २९ ॥

प्रकृत कारिका में प्रयुक्त भक्ति शब्द का अर्थ चमत्कार है ॥

यथा मम मुक्तावलीकाव्ये—

अत्र वल्कलजुषः पलाशिनः पुष्परेणुभरभस्मभूषिताः।
लोलभृङ्गवलयाक्षमालिकास्तापसा इव विभान्ति पादपाः॥

अत्र तपोधनोचितव्रतव्यञ्जकवल्कलभस्माक्षसूत्रप्रणयिपादपवर्णनायामचेतनानामपि शमसमयविमलचित्तवृत्तिरौचित्यमुपजनयति ॥

उदाहरणमाह—यथेति ।

अत्रेति। अत्र वने पादपा वृक्षा वल्कलजुषस्त्वग्युक्ताः, पलाशाः पत्राणि तद्वन्तः, पुष्पाणां रेणूनां भर आधिक्यमेव भस्म तेन भूषिताः, लोलाश्चञ्चला ये भृङ्गा भ्रमरास्तेषां वलयं समूह एवाक्षमालिका येषान्तथाविधाश्च, सन्तो वल्कलजुषो भूर्जपत्रधारिणः, पलाशिनः पलाशदण्डधारिणः, पूजाकाले पुष्परेणुभरभस्मना भूषिता लिप्ताङ्गाः, करधृतलोलभृङ्गवलयतुल्याक्षमालिकाश्च तापसा इव विभान्ति। अत्र श्लेषरूपकोपमानुप्राणितोपमा ॥

पद्येऽस्मिन् पादपवर्णनं प्रकृतम्। तत्रोपमा पादपानां तापसैर्दत्ता। अत्र च तापसव्रतोचितवल्कलादिधारकत्ववर्णनेन वल्कलादिधारकाणां व्रतित्ववर्णनेन वा व्रतौचित्यमित्याह—अत्रेत्यादिना। अचेतनानां पादपानामित्यर्थः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शमसमयविमलचित्तवृत्तिः शमकालिकी विमला चित्तवृत्तिः। एतदेव व्रतमत्राभिप्रेतमिति प्रतीयते ॥

व्रतौचित्य का उदाहरण मेरी ही मुक्तावली के इस पद्य में द्रष्टव्य है—

"इस वन में वल्कल धारण करने वाले (स्वस्थ त्वचा से सम्पन्न—वृक्ष-पक्ष में तथा भूर्जपत्र पहनने वाले—तापस-पक्ष में), पलाशों (पत्तियों—वृक्ष-पक्ष में और पलाशवृक्ष के दण्डों—तापस-पक्ष मे) से युक्त, पुष्पपरागरूप भस्म से विभूषित एवं चञ्चल भ्रमरसमूह-स्वरूप जपमालिका से सम्पन्न वृक्ष तापसों के समान सुशोभित हो रहे हैं ॥"

इस पद्य में तापसों के लिए उचित वल्कल आदि उपकरणों का श्लेष आदि द्वारा अचेतन वृक्षों के साथ सम्बन्ध बतलाने के कारण व्रत का साङ्गोपाङ्ग एवं समुचित वर्णन किया गया है। अतः इसमे व्रतौचित्य है ॥

न तु यथा दीपकस्य—

पुण्ये ग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्नपालीं कपाली-
मादाय न्यायगर्भद्विजहुतहुतभुग्धूमधूम्रोपकण्ठम् ।
द्वारं द्वारं प्रवृत्तो वरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्तो
मानी प्राणी सनाथो न पुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषु दीनः ॥

अत्र वैराग्यनिरर्गलवर्णनायां भिक्षाकपालीमादाय क्षुत्क्षामः कुक्षिपूरणाय प्रवृत्तो मानी वरं द्वारं द्वारं यष्टिनिविष्टपाणिः परिभ्रान्तो न पुनरनिशं तुल्यकुल्येषु दीन इत्युक्ते सहजप्रशमविमलमानसविश्रान्तिसन्तोषमुत्सृज्य तुल्यकुल्यद्वेषविजिगीषापरमेव वाक्यं भृशमनौचित्यमुद्भावयति। वरमेतत्तीव्रव्रतकष्टं न तु स्वजनदैन्ययाचनमिति संसारग्रन्थिवन्धाभिमानोपन्यासः ॥ २९ ॥

प्रसङ्गाद् व्रतानौचित्यमुदाहरति—न त्विति ।

पुण्य इति। यो मानी प्राणी क्षुधार्त्तः सन् उदरमेव दरी गुहा तस्याः पूरणाय सितेन शुभ्रेण पटेन च्छन्नाऽऽवृता पाली मुखमग्रभागो यस्यास्तथाविधां कपालीं भिक्षापात्रमादाय पुण्ये ग्रामे महति वने वा न्यायगर्भैर्धार्मिकैर्द्विजैर्हुतादृघुतभुजो वह्नेर्धूमेन धूम्रं कृष्णलोहितमुपकण्ठं प्रान्तदेशो यस्यैवम्भूतं प्रत्येकं द्वारं याचनाय प्रवृत्तो गतः सन् सनाथः सम्पन्नस्तुष्टो भवति स एव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वरं श्रेयान्, यः पुनरुदरपूरणाय तुल्यकुल्येषु स्वकुलजेष्वनुदिनं प्रतिदिनं दीनो दैन्यसम्पन्नः स्वकुलजान् भिक्षते स नैव श्रेयान् ॥

अत्र **सितपटच्छन्नपालीकपालीम्** इति समस्तपाठोऽपपाठ एव ॥

अत्रानौचित्यमुपपादयति—**अत्रेत्यादिना**। विमलस्य मानसस्य विश्रान्त्या जायमानं सन्तोषमुत्सृज्येति पदार्थः। स्वजनदैन्ययाचनस्याश्रेयस्त्ववर्णनं संसारग्रन्थिबन्धमूलकमित्येतत्प्रशमविपरीतत्वादनुचितमित्युपसंहारवाक्यार्थः ॥

यद्वैवं स्थितौ प्रशमस्वरूपव्रतवर्णनमेवानुचितम् ॥

यष्टिनिविष्टपाणिरिति। यष्टौ दण्डे निविष्ट आश्रितः पाणिर्यस्य सः, दण्डसहायित इत्यर्थः ॥

किन्तु दीपक कवि के निम्नोद्धृत पद्य में व्रतौचित्य नहीं है—

"जो मानी प्राणी भूख से व्याकुल होकर भी अपनी उदरस्वरूप गुफा को भरने के लिए अपने भिक्षापात्र को श्वेत वस्त्र से ढक कर किसी पुण्य ग्राम अथवा विशाल तपोवन में धार्मिक द्विजातियों के द्वारा हवन किए गए अग्नि से उत्थित धूमराशि से धूमिल प्रान्त वाले प्रत्येक दरवाजे का चक्कर काटता हुआ अपना जीवन-निर्वाह करता है वह अपने कुटुम्बों के घर दीनभाव से याचना कर पेट भरने वाले जीवों से श्रेष्ठ है ॥"

इस पद्य में स्वाभाविक शम के प्रभाव से स्वच्छ अन्तःकरण की विश्रान्ति से उत्पन्न सन्तोष को छोड़ कर स्वजनों से विद्वेष तथा उन्हें जीतने की दुर्भावना का वर्णन किया गया है। इसमें दर-दर भीख मांगने में जो कष्ट है उसे सहना किन्तु अपने सकुल्यों से याचना न करना निश्चित ही बन्धन-प्रयोजक अहङ्कार को प्रकट करता है। अतः यह व्रतवर्णन अनुचित है ॥

तत्त्वौचित्यं दर्शयितुमाह—

काव्यं हृदयसंवादि सत्यप्रत्ययनिश्चयात्।
तत्त्वोचिताभिधानेन यात्युपादेयतां कवेः ॥ ३० ॥

तत्त्वोचिताख्यानेन कवेः सूक्तं सत्यप्रत्ययस्थैर्यात्संवादि गृह्यतां याति ॥

सम्प्रति तत्त्वौचित्यन्निरूपयति—**तत्त्वौचित्यमिति**।

काव्यमिति। सत्यप्रतीतेर्निश्चयाद् हृदयस्य सम्वादि काव्यं तस्य भावस्तत्त्वं वस्तुस्वरूपं तद्विषयकोचितेनाभिधानेन, यद्वोचितेति भावप्रधाननिर्देशः,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्त्वनिष्ठौचित्याभिधानेन तत्प्रतिपादनेनेति भावः। उपादेयतां याति सहृदयानाम् ॥ ३० ॥

गृह्यतां ग्रहणार्हतामुपादेयतामित्यर्थः ॥

अब तत्त्वौचित्य का विवरण किया जा रहा है—

जब काव्य से सत्यार्थ की प्रतीति का निश्चय हो जाता तभी वह हृदयाह्लादक हो पाता है। यह तभी सम्भव है यदि काव्य में तत्त्व—वस्तुस्वरूप का सही वर्णन किया गया हो। अतः कविकर्मस्वरूप काव्य तत्त्वौचित्य का प्रतिपादक होने पर ही सहृदयों के लिए उपादेय होता है ॥ ३० ॥

इसकी वृत्ति का आशय पूर्ववत् है ॥

यथा मम बौद्धावदानलतिकायाम्—

दिवि भुवि फणिलोके शैशवे यौवने वा
जरसि निधनकाले गर्भशय्याश्रये वा।
सहगमनसहिष्णोः सर्वथा देहभाजां
नहि भवति विनाशः कर्मणः प्राक्तनस्य ॥

अत्र प्राक्तनस्य कर्मणस्त्रैलोक्ये शैशवयौवनवृद्धत्वावस्थासु देहिनां सहगमने समर्थत्वान्न विनाशोऽस्तीत्युक्ते निःसंशयसकलजनहृदयसंवादितत्त्वाख्यानमौचित्यं ख्यापयति ॥

उदाहरणमाह—यथेति।

दिवीति। दिवि स्वर्गे भूलोके फणिलोके पाताललोके च शैशवाद्यवस्थासु च सर्वथा सहगमनं सोढुं शीलमस्येति सङ्गामिनो देहभाजां प्राक्तनस्य कर्मणो विनाशो नैव भवति, उपभोगमन्तरा तत्त्वज्ञानाद्यभावे वेति पूरणीयम्। अत्र वाकारः समुच्चये।

अत्र कर्मस्वभावस्याभिधानमुचितमित्याह—अत्रेति। वृत्तिः स्पष्टा ॥

तत्त्वौचित्य का उदाहरण मेरी बौद्धावदानकल्पलता का यह पद्य है—

"प्राणियों के पूर्वकृत कर्म का बिना उपभोग के कभी विनाश नही होता, क्योंकि वह तो हर प्रकार से प्राणियों के साथ रहता, चाहे वे स्वर्ग में हों या मर्त्यलोक में या पाताल में; चाहे गर्भस्थ हों या शैशवावस्था में या यौवन में या वृद्धावस्था में ॥"

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस पद्य में कर्म के विषय में जो यह कहा गया है कि वह सब लोकों तथा सब अवस्थाओं में प्राणियों के साथ जाने वाला है वह कर्म के वास्तविक स्वभाव का वर्णन है। अतः यह कथन सभी सहृदयों के हृदय का, विना सन्देह के, सम्वादी होने से उचित है ॥

न तु यथा माघस्य—

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते
न पीयते काव्यरसः पिपासितैः ।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं
हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः क्रियाः ॥

अत्रायथार्थार्थितापरत्वेन धनमेवार्जय, क्षुधितैर्व्याकरणं न भुज्यते, न च काव्यरसः पिपासितैः पीयते, न च विद्यया कुलं केनचिदुद्धृतमित्युक्ते सर्वमेतद्दारिद्र्यदैन्यविद्रुतधैर्यकातरतया तत्त्वविरहितं विपरीतमुपन्यस्तमनौचित्यसंयुक्तमेव। विद्यानामेव सर्वसम्पत्प्रसविनीनां कुलोद्धारक्षमत्वं नान्यस्य ॥ ३० ॥

प्रत्युदाहरणमाह—न त्विति ।

बुभुक्षितैरिति । सकलाः कला निष्फलाः, यतो बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यत इत्यादि स्पष्टम् । अतो हिरण्यं धनमेवार्जय, तावतैव बुभुक्षादिशान्तिः स्यात् । सखे इति सम्बोधनपदमत्र पाठेऽध्याहर्त्तव्यम् । क्वचित्तु निष्फलाः कलाः इत्यत्र सर्वतः सखे इत्येव पाठः ॥

अत्र सर्वसम्पत्प्रदायकत्वकुलोद्धारकत्वादिविद्यास्वभावविपरीतवर्णनेन तत्त्वानौचित्यमित्याह—अत्रेत्यादिना ॥

दारिद्र्यं च दैन्यं च ताभ्यां विद्रुतं विनष्टं यद् धैर्यं तेन कातरतयेति समासार्थः ॥ शेषं स्पष्टम् ॥

किन्तु माघ के निम्ननिर्दिष्ट पद्य में तत्त्वौचित्य नही है—

"भूखा व्यक्ति व्याकरण शास्त्र से भूख नहीं मिटा सकता, प्यासा व्यक्ति काव्यरस पीकर प्यास नहीं बुझा सकता और आज तक कोई विद्या से अपने कुल का उद्धार नहीं कर सका है। अतः हे मित्र! हर तरह से धनार्जन ही करो, अन्य सारी कलाएँ व्यर्थ हैं ॥"

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उक्त वक्तव्य दरिद्रता एवं दीनता से धैर्यहीन हो जाने से अत्यन्त कातर तथा नश्वर धन के लिए अत्यधिक लोलुप व्यक्ति द्वारा दिया गया है। अतः यह निस्तत्त्व होने से अनुचित है। सत्य तो यह है कि सभी सम्पत्तियों की उत्पादिका विद्या ही कुलोद्धार में समर्थ है, अन्य कोई साधन नहीं ॥

सत्त्वौचित्यं दर्शयितुमाह—

चमत्कारं करोत्येव वचः सत्त्वोचितं कवेः ।
विचाररुचिरोदारचरितं सुमतेरिव ॥ ३१ ॥

सत्त्वोचितं कवेर्वचश्चमत्कारं करोति सुमतेरिव विचार्यमाणं रुचिरमुदारचरितम् ॥

इदानी क्रमागतं सत्त्वौचित्यन्निरूपयति—सत्त्वौचित्यमिति ।

चमत्कारमिति । सुमतेर्विवेकिनो विचारेण रुचिरं यदुदारं चरितमाचरणं तद्यथा जनमनस्सु चमत्कारं करोति जनयति तथैव कवेरपि सत्त्वमन्तर्वलम् तदुचितं तदनुरूपमेव वचः काव्यरूपं सहृदयहृदयेषु चमत्कारमाह्लादं जनयति ॥ ३१ ॥

वृत्तिग्रन्थः स्फुटार्थः ॥

अब सत्त्वौचित्य का निरूपण किया जा रहा है—

जिस प्रकार विवेकी पुरुष का विचारपूर्ण होने से रुचिर उदार आचरण ही लोगों के मन को आह्लादित कर पाता उसी प्रकार वर्णनीय व्यक्ति के सत्त्व (अन्तर्वल-मनोवल) के अनुरूप अर्थ का प्रत्यायक होने पर ही काव्य भी मनोरञ्जक हो पाता ॥ ३१ ॥

वृत्तिग्रन्थ का अर्थ पूर्ववत् है ॥

यथा मम चित्रभारते नाटके—

नदीवृन्दोद्दामप्रसरसलिलापूरिततनुः
स्फुरत्स्फीतज्वालानिबिडवडवाग्निक्षतजलः ।
न दर्पं नो दैन्यं स्पृशति बहुसत्त्वः पतिरपा-
मवस्थानां भेदाद्भवति विकृतिर्नैव महताम् ॥

अत्र पयोधिव्यपदेशेन युधिष्ठिरस्य सत्त्वोत्कर्षेऽभिधीयमाने सरित्पूरप्रवर्धिततनुर्वडवाग्निनिष्पीतश्च नोत्सेकं न सङ्कोचमब्धिर्विपुलसत्त्वः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्पृशति, न ह्यवस्थानां भेदान्महाशयानां विकारो भवतीत्युक्ते गम्भीरधीरा सत्त्ववृत्तिरौचित्यमातनोति ॥

एतदुदाहरति— यथेति ।

नदीत्यादि । युधिष्ठिरस्य विपद्यपि यथापूर्वमवस्थानं प्रदर्श्य तत्सत्त्वोत्कर्षमभिव्यनक्ति कविः । अयमब्धिः समुद्र उद्दामः प्रसरो विस्तारः प्रवाहो वा येषान्तथाविधैर्नदीनां वृन्दस्य सलिलैरापूरिता समृद्धा तनुर्यस्य तथाविधः सन्नपि न दर्पं स्पृशति न वा स्फुरन्तीभिर्देदीप्यमानाभिः स्फीताभिः प्रखराभिर्ज्वालाभिर्निविडेन वडवाग्निना क्षतं विनष्टं निर्दग्धं जलं यस्य तथाविधः (क्षीण इति तात्पर्यम्) सन्नपि दैन्यं स्पृशति । 'स्पृशति' इति क्रियापदमहिम्ना दर्पदैन्यलेशोपि तत्र न सम्पत्तिविपत्त्योः क्रमेण लब्धावकाश इति द्योत्यते । तदेवमप्रस्तुतप्रशंसाद्वारेणोक्तं विशेषार्थं सामान्येन समर्थयत्यर्थान्तरन्यासमुखेन— अवस्थानामिति । महतां महासत्त्वानामवस्थानां भेदादपि कारणात् विकृतिर्दर्पो दैन्यम्वा नैव भवतीति ॥

अत्र सत्त्वौचित्यमुपपादयति—अत्रेत्यादिना । उत्सेक उत्कर्षः । इत्युक्त इत्यतः परं प्रतिपन्नेति पूरणीयम् ॥

सत्त्वौचित्य का उदाहरण मेरे चित्रभारत नामक नाटक के इस पद्य में उपलब्ध है—

"महासत्त्वसम्पन्न यह सागर नदियों के प्रचण्ड प्रवाह से स्वरूप के समृद्ध होने पर भी न तो दर्प ही करता और न उद्दण्ड ज्वालाओं से घिरे वड़वानल द्वारा जलशोषण के कारण ह्रास प्राप्त करने पर दुखी ही होता। इसका कारण यह है कि महत्त्वसम्पन्न व्यक्तियों की अवस्थाओं में उत्कर्ष या अपकर्ष होने पर भी वे विकृत—उन्नत या खिन्न नहीं होते ॥"

इस पद्य में अप्रकृत समुद्र की सत्त्वसम्पन्नता के वर्णन से प्रकृत महाराज युधिष्ठिर की सत्त्वसम्पन्नता का प्रतिपादन करना ही अभीष्ट है। पद्य में आवश्यकता के अनुरूप सत्त्वोत्कर्ष वर्णित है। अतः इसमें सत्त्वौचित्य विद्यमान है॥

न तु यथा भट्टेन्दुराजस्य—

आश्चर्यं वडवानलः स भगवानाश्चर्यमम्भोनिधि-
यत्कर्मातिशयं विचिन्त्य मनसः कम्पः समुत्पद्यते ।
एकस्याश्रयघस्मरस्य पिवतस्तृप्तिर्न जाता जलै-
रन्यस्यापि महात्मनो न वपुषि स्वल्पोऽपि जातः श्रमः ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र वडवानलसमुद्रयोः सत्त्वमहत्त्वे वक्ष्यमाणे नातिविपुलाशयत्वादेकस्य पिबतः पयोभिस्तृप्तिर्न जाता, द्वितीयस्य तदुपजीव्यमानस्य न मनागपि खेदः, तदेतदुभयमाश्चर्यमित्युक्ते निःसन्तोषतया सततया च कस्य न वडवाग्नेर्लज्जा न च जलनिधेराश्रितैकार्थिपूरणसामर्थ्यमित्यसत्त्वे सत्त्वस्तुतिरनौचित्यमावहति ॥ ३१ ॥

प्रसङ्गात् प्रत्युदाहरणमाह—न त्विति ।

आश्चर्यमिति । आश्चर्यजनक इत्यर्थः । भगवानैश्वर्यसम्पन्न इति विशेषणमम्भोनिधेः । अनयोराश्चर्यजनकत्वहेतुमाह प्रथमतः सामान्येन—यत्कर्मेति । ययोः कर्मगतमुत्कर्षं विचिन्त्य मनसः कम्पो भवति । कर्मातिशयमनयोः क्रमेण तृतीयचतुर्थपादाभ्यां विवृणोति—एकस्येत्यादिना । एकस्य प्रथमस्य वडवानलस्य । आश्रयघस्मरस्य स्वाश्रयीभूताम्भोनिधिविनाशोन्मुखस्य समुद्रजलं नित्यं पिबतोपि तेन तृप्तिर्नाद्य यावत् सञ्जाता । अत्राश्रयघस्मरत्वमेकः कर्मातिशयः, सततं पिबतोपि तृप्त्यभावश्चापरः । अन्यस्याम्भोनिधेः । महात्मनोतिगम्भीरप्रवाहस्य । एतच्च हेतुगर्भं विशेषणम् , यतोयं महात्मात एव नित्यं पीयमानस्याप्यस्य न स्वल्पोपि श्रमो जातः ॥

सामान्यतो हि लोकस्य नाश्रयघस्मरत्वं न वा नित्यं पिबतस्तृप्त्यभावः, वडवानले तूभयमपि विद्यत एवेति व्यतिरेण वडवानलनिष्ठेन तथा नित्यं निपीयमानस्य (शोष्यमाणस्य) नदादेः परिश्रान्तत्वे (ह्रसमानत्वे) प्रसिद्धेपि, समुद्रे तदभाव इत्यनेन समुद्रगतव्यतिरेकेणानयोः स्पष्टमेव कर्मातिशयः प्रतीयते ॥

अत्रानौचित्यं विवक्षितोत्कर्षाप्रतीत्योपपादयति—अत्रेत्यादिना । अत्र हि वडवानलसमुद्रयोः सत्त्वसमुत्कर्षः प्रतिपिपादयिषितः । न चायमनयोः प्रकृतेन पद्येन प्रतिपाद्यः । तथाहि—स्वल्पहृदयत्वे सत्येव वडवानलस्याश्रयघस्मरत्वमाश्चर्यजनकं कर्मातिशयप्रयोजकमुपपद्यते; एवमेव क्षुद्रोदरत्वे सत्येव वडवानलस्योत्कटतृष्णावतः समुद्रस्यापि च स्वाश्रितैकव्यक्तिसन्तोषप्रदत्वाभावे सत्येव नित्यं तज्जलं पिबतोप्यतृप्तत्वमुपपद्यत इति व्यज्यमानं वडवानलगतं क्षुद्रहृदयत्वं क्षुद्रोदरत्वमुत्कटतृष्णावत्त्वं समुद्रगतश्चाश्रितैकव्यक्तितृप्तिकारकत्वाभावस्तथाविधोनयोः क्षुद्रसत्त्वत्वं प्रतिपादयतीति नात्र सत्त्वोत्कर्षप्रतीतिः कस्यापि सहृदयस्येति ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नातिविपुलाशयत्वादित्यत्राशयशब्दः श्लिष्टः सन् हृदयार्थक उदरार्थकश्च । **निस्सन्तोषतयेति** । निर्गतो लेशमात्रेणाप्यसन् सन्तोषो निस्सन्तोषस्तस्य भावस्तत्ता, तयेत्यर्थः । असत्त्वे सत्त्वाभावे ॥

किन्तु भट्टेन्दुराज के निम्ननिर्दिष्ट पद्य में सत्त्वौचित्य नहीं है—

"जिनके चरित्रगत अतिशय को सोचकर भी मन काँपने लगता वे वड़वानल तथा ऐश्वर्यसम्पन्न समुद्र दोनों ही आश्चर्यजनक हैं। वड़वानल एक तो अपने आधारभूत समुद्र को हीं शोषने में लगा रहता और दूसरे दिन रात समुद्र का जल पीते रहने पर भी इसकी प्यास नहीं बुझती। समुद्र भी इतना गम्भीर है कि दिनरात वड़नानल द्वारा पीये जाते रहने पर भी इसमें किसी तरह की उथल-पुथल नहीं दिखाई देती ॥"

इस पद्य में वड़वानल तथा समुद्र के सत्त्वोत्कर्ष का वर्णन कवि का अभिप्रेत है। किन्तु जैसा वर्णन किया गया है उससे तो वड़वानल की महत्ता के स्थान पर क्षुद्रता ही प्रकट होती, क्योंकि इसका आश्रयविनाशकत्व विना क्षुद्रहृदयता के और सर्वदा पीते रहने पर भी सन्तोषाभाव विना क्षुद्रोदरता एवं उत्कट तृष्णा के सम्भव नहीं। इसी तरह समुद्र में अपने आश्रित एक व्यक्ति को भी सन्तुष्ट करने में असमर्थता भी अवश्य ही प्रतीत होती है, अन्यथा सर्वदा इसका जल पीते रहने पर भी वड़वानल के तृप्त न होने की बात कैसे संगत होगी ? इससे स्पष्ट है कि यहाँ वड़वानल तथा समुद्र के सत्त्वोत्कर्ष के प्रतिपादनार्थ जो वर्णन किया गया है वह वस्तुतः इन दोनों की क्षुद्रसत्त्वता का ही अभिव्यञ्जक है। अतः इसमें सत्त्वौचित्य का अभाव स्पष्ट है ॥

अभिप्रायौचित्यं दर्शयितुमाह—

> अकदर्थनया सूक्तमभिप्रायसमर्थकम् ।
> चित्तमावर्जयत्येव सतां स्वस्थमिवार्जवम् ॥ ३२ ॥

अक्लेशेनाभिप्रायसमर्थकं काव्यं हृदयमावर्जयति सज्जनानां निर्मलमार्जवमिव ॥

अभिप्रायौचित्यं व्याचष्टे—अभिप्रायेति ।

अकदर्थनयेति । कदर्थना कार्पण्यम् , तथा चाभिप्रायप्रकाशकशब्दाप्रयोगः कदर्थना, तदभावोऽकदर्थना तयेत्यर्थः । यद्वाऽभिप्रायाविष्करणार्थमध्याहारादिरेव कदर्थना कुत्सिता याचना तदभाव एवाकदर्थनापदार्थः । तयाऽभिप्रायसमर्पकमेव कविसूक्तं काव्यं सतां स्वस्थमकुटिलमार्जवं सारल्यमिव

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चित्तमावर्जयति रञ्जयति । एवकारो भिन्नक्रमोऽभिप्रायसमर्थकमित्यनन्तरं योज्यः । क्वचितु अभिप्रायसमर्थकम् इत्येव पाठः ॥ ३२ ॥

वृत्तिग्रन्थः स्पष्टः ॥

अब अभिप्रायौचित्य का विवरण किया जा रहा है—

शब्दप्रयोग में कार्पण्य न होने के कारण अभिप्राय को प्रकट करने वाला ही काव्य सज्जनों के निश्छल तथा सरलता से सम्पन्न चित्त के समान सहृदयों के हृदय का आवर्जक हो पाता है ॥ ३२ ॥

वृत्ति का अर्थ पूर्ववत् है ॥

यथा दीपकस्य—

श्येनाङ्घ्रिग्रहदारितोत्तरकरो ज्याङ्कप्रकोष्ठान्तरः
आताम्राधरपाणिपादनयनप्रान्तः पृथूरःस्थलः ।
मन्येऽयं द्विजमध्यगो नृपसुतः कोऽप्यम्ब ! निःशम्बलः
पुत्र्येवं यदि कोष्ठमेतु सुकृतैः प्राप्तो विशेषातिथिः ॥

अत्र स्वैररमणी रमणीयं दिवसावसाने युवानं पथिकमालोक्याभिप्रायसूचकं जननीमेवं ब्रूते यदसौ राजपुत्राकृतिः श्येनग्रहनाराचपरिचयोचितः सायंसमये प्राप्तः (इति ।) इत्युक्ते मात्राप्यभिप्रायपूरकमभिहितम्—पुत्रि ! यद्येवं तत्कोष्ठाङ्कं प्रविशतु सुकृतैर्विशेषोऽतिथिः प्राप्तः पूज्य इत्येतेन स्फुटाभिप्रायसूचकमौचित्यमुपचितमाचकास्ति ॥

एतदुदाहरति—यथेति ।

श्येनाङ्घ्रीत्यादि । प्रसङ्गो वृत्त्युक्तः । हे अम्ब ? अयं पुरोदृश्यमानो युवा यतः श्येनस्य पक्षिविशेषस्य 'बाज' इति नाम्ना लोके प्रसिद्धस्याङ्घ्रयोश्चरणयोर्ग्रहेण ग्रहणेन दारितम्विक्षतमुत्तरमुत्तरभागो यस्य करस्य तथाविधः । उत्तरकर इत्येकदेशिसमासः । ज्याया मौर्व्या अङ्केन युक्तं प्रकोष्ठस्य मणिबन्धस्यान्तरम् मध्यं यस्येति ज्याङ्कप्रकोष्ठान्तरः । शाकपार्थिवादित्वात्समासे मत्वर्थीयाच्प्रत्ययान्तः शब्दोयम् । यद्वा व्यधिकरणबहुव्रीहिः । आ समन्तात्ताम्रो रक्तोऽधरस्य पाण्योः पादयोर्नयनयोश्च प्रान्तो यस्य तथाविधः । एतेनातिसुन्दरत्वं कोमलत्वं च व्यज्यते । पृथु विस्तीर्णमुरःस्थलं यस्य तथाविधश्च । अतोयं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्विजमध्यगः कोपि निःशम्बलोऽसहायो नृपसुतो राजकुमार इति मन्ये तर्कयामि। निःशम्बलराजकुमारत्वेनायं विश्रामदानयोग्यो निश्चत्रेति प्रतीयते। तदेवं-विधराजकुमारवर्णनेन स्वपुत्र्याः स्वैररमणाभिप्रायं सम्यगवगच्छन्ती माता तां कथयति—यद्येवन्तर्हि सुकृतैः पुण्यैरस्मद्गृहं प्राप्तोयं विशेषातिथिः कोष्ठमस्मद्-गृहप्रकोष्ठमेतु प्रविशतु, रात्रौ विश्राम्यत्वत्रेति तात्पर्यम् ॥

अत्र गृहं प्रविशत्वित्यनुक्त्वा तत्प्रकोष्ठं प्रविशत्वित्युक्तिः स्वैररमणानु-कूलतासूचनाय ॥

अत्र द्विजमध्यग इति विशेषणं तस्य कुमारस्य कुलीनत्वसूचनायेति प्रतीयते, द्विजानां मध्ये स्थितो द्विजपरिगत इत्यर्थे तु तन्मध्यगतस्य निष्क्र-य्यावस्थानप्रतिपादने किञ्चिदनौचित्यं स्यात्। निःशम्बलपदमपि विरुद्धार्थकं स्यात् ॥

पद्येस्मिन् सायंपदाप्रयोगाद् यद् वैरस्यन्तत्परिहाराय तृतीयचरणमित्थं पठनीयम्—**सायाह्ने द्विजमध्यगो नृपसुतो मन्येऽम्ब निःशम्बलः** इति ॥

अत्र निःशम्बलत्वादिना यत्तद्विश्रामदानं पुत्र्यभिप्रेतं तदनुरूपस्य मातृ-वचनस्य च चतुर्थचरणे प्रस्तावेनाभिप्रायौचित्यं स्फुटमिति प्रतिपादयति—अत्रेत्यादिना। नाराचो बाणः। कोष्ठाङ्कं कोष्ठस्यान्तः ॥

इसका उदाहरण दीपक कवि का निम्ननिर्दिष्ट पद्य है—

"अरी माँ ? यह जो चौड़ी छाती वाला (हृष्ट-पुष्ट) युवक दिखाई पड़ रहा है वह मुझे लगता है कि कोई राजकुमार है, क्योंकि, देख न, इसकी हथेली के अगले हिस्से में बाज पक्षी को पकड़ते रहने के कारण घाव लगे हुए हैं, इसकी कलाई में प्रत्यञ्चा के बार-बार खींचने से घाट बन चुका है और इसके अधर, हाथ, पैर और आखों में लालिमा भी दीख रही है। पर साम के वक्त यह बेचारा अकेला ही है ! अपनी व्यभिचारिणी बेटी की यह बात सुनते ही उसके मनोभाव को उसकी माँ समझ जाती है और वह उससे कहती है—बेटी ! यदि ऐसी बात है तो हमारे सौभाग्य से आये इस विशेष अतिथि को कमरे के भीतर बुला ले और आज यहीं विश्राम करने दे ॥"

इस पद्य में जो वर्णन किया गया है उससे बेटी की स्वैररमण की और माँ की उसके समर्थन की इच्छा स्पष्ट रूप में प्रकट हो रही है। अतः इसमें अभि-प्रायौचित्य है ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न तु यथाऽस्यैव—

अयि विरहविचत्ते ! भर्तुरर्थे तथार्त्ता
सपदि निपतिता त्वं पादयोश्चण्डिकायाः ।
स्वयमुपहितधूपस्थालकच्छत्रशृङ्गो-
द्दलितमपि ललाटं येन नैवाललक्षे ॥

अत्राविनयवत्याः सुचिरात्पत्यावागते ललाटनखोल्लेखापह्नववचने सख्या समुपदिश्यमाने हे विरहोन्मत्ते भर्तुरर्थे चण्डिकापादपतने स्वयंस्थापितधूपस्थालकोटिक्षतमपि न लक्षितं भवत्या ललाटमित्युक्तौ स्वैरापह्नवशिक्षामात्रमेवोपलक्ष्यते, न तु तस्याः सख्या वा कश्चिदभिप्रायविशेषः ॥ ३२ ॥

प्रसङ्गादभिप्रायानौचित्यमपि निदर्शयति—न त्विति ।

अयीति । अयि विरहेण पत्युर्विदेशावस्थितेर्विचित्ते विकृतान्तःकरणे वियोगिनि सखि ? भर्तुरर्थे पत्युः कृत आर्त्तोद्विग्ना सती त्वं चण्डिकायाः पादयोः सपदि तत्क्षणंससम्भ्रमं तथा तेन प्रकारेण निपतिता येन त्वं स्वयमुपहितं चण्डिकापादसमीपे संस्थापितं यद्धूपस्थालं धूपपात्रन्तस्य च्छत्रस्योर्ध्वभागस्य शृङ्गेण निशितेनाग्रभागेनोद्दलितं विक्षतमात्मनो ललाटन्तदुपलक्षितं कपोलादि नैवाललक्षेऽनुबभूव दृष्टवती ॥

पत्यौ प्रोषिते सति समागमकाले व्यभिचारिण्याः कपोलादौ परपुरुषकृतं नखक्षताद्यपलपन्त्याः कस्याश्चन सख्या उक्तिरियम् । अत्र प्रोषितभर्तृकामेव स्वैरिणीं सखीं प्रत्युक्तमिदं वचनम् । तत्र समागते पत्यौ तद्गतक्षतादिदर्शनहेतुकव्यभिचारसंशयनिरासाय क्षतादिहेतुभूतपरपुरुषसमागमापह्नवशिक्षामात्रं सख्या प्रदत्तं न तु कश्चनाभिप्रायविशेषः स्वैरिणीनिष्ठः शिक्षयितृसखीनिष्ठो वा प्रतीयत इत्यभिप्रायानौचित्यमित्याह—अत्रेत्यादिना । अविनयो व्यभिचारस्तद्वत्या स्वैरिण्येत्यर्थः । शेषं स्पष्टम् ॥

वस्तुतोऽत्रानौचित्यप्रतिपादनं चिन्त्यम् ॥

किन्तु दीपक कवि के ही निम्ननिर्दिष्ट पद्य में अभिप्रायौचित्य नहीं है—

"अरी विरहविक्षिप्त सखी ! पति के वियोग से अत्यन्त उद्विग्न हो कर तूँ

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चण्डिका देवी के पैरों पर इस प्रकार वेहोस होकर गिर गई कि तेरे ही द्वारा चण्डिका के समक्ष रखे गये धूपपात्र की नोकों से तेरे ललाट एवं कपोलादि पर जो घाव लग गये उनका भी तुझे ध्यान नहीं रहा ॥"

कोई व्यभिचारिणी अपने पति के वाहर रहते समय परपुरुष से सम्भोग किया करती थी। उस समय उसके ललाट-कपोलादि पर प्रेमी द्वारा जो नखक्षत-दन्तक्षत किये गये थे उनके घाव इस कथन के समय भी स्पष्ट दिखाई पड़ रहे थे। उसका पति आने ही वाला था। इसलिए उन नखक्षतों को देखकर उसके पति के मन में उसके चरित्र के विषय में संशय होना सहज था। अतः वह बहुत चिन्तित थी कि अपने पति को वह कैसे समझायेगी कि वे घाव व्यभिचारकालिक नही हैं। उसकी इसी मनःस्थिति को भाँप कर किसी सखी ने उससे उक्त बात कही है जिससे वह अपने पति को वैसा ही कह कर धोखा दे सके। इस कथन में सखी द्वारा पति को धोखा देने का रास्ता बतलाने के अलावा वक्त्री सखी अथवा व्यभिचारिणी का कोई विशेष अभिप्राय द्योतित नही होता। अतः इस वर्णन में अभिप्राय का औचित्य नही है ॥

स्वभावौचित्यं दर्शयितुमाह—

स्वभावौचित्यमाभाति सूक्तीनां चारु भूषणम्।
अकृत्रिममसामान्यं लावण्यमिव योषिताम् ॥ ३३ ॥

स्वभावोचितत्वं कविवाचामाभरणमाभाति, अकृत्रिममनन्यसामान्यं लावण्यमिव ललनानाम् ॥

सम्प्रति क्रमागतं स्वभावौचित्यन्निरूपयति—**स्वभावेति**।

स्वभावौचित्यमिति। कविसूक्तीनामकृत्रिमत्वादसाधारण्याच्च चारु मनोहरं भूषणं सदकृत्रिमं नैसर्गिकमसामान्यमनितरसाधारणं योषितां रमणीनां लावण्यमिवासमन्ताद् भाति शोभते ३३ ॥

वृत्तिः स्फुटैव ॥

अब स्वभावौचित्य का वर्णन किया जा रहा है—

नैसर्गिक एवं असाधारण होने के कारण भूषण-स्वरूप स्वभावौचित्य से युक्त काव्य उसी प्रकार सुशोभित होता जिस प्रकार नैसर्गिक एवं असाधारण लावण्य से ललनाएँ सुशोभित होतीं ॥ ३३ ॥

वृत्ति का अर्थ पूर्ववत् है ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

कर्णोत्तालितकुन्तलान्तनिपतत्तोयक्षणासङ्गिना
हारेणेव वृतस्तनी पुलकिता शीतेन सीत्कारिणी ।
निर्धौताञ्जनशोणकोणनयना स्नानावसानेऽङ्गना
प्रस्यन्दत्कवरीभरा न कुरुते कस्य स्पृहार्द्रं मनः ॥

अत्र व्याससूनोः शुकस्य गाढवैराग्यनिःसङ्गस्य गगनगङ्गातीरे स्नातोत्तीर्णास्त्रिदशयोषितो विवसनास्तद्दर्शननिःसङ्कोचाः पश्यतः प्रशमविमलमनसः स्मरव्यतिकरनिर्विकारतायां कर्णमूलोत्क्षिप्तालकपर्यन्तनिपतत्तोयकणसन्तानेन स्तनयोः कृतमुहूर्तहारविभ्रमा, शीतेन रोमाञ्चसीत्कारिणी, धौताञ्जनारुणनयनान्ता, प्रस्नग्वन्मुक्तकेशकलापा, स्नानोत्तीर्णा तरुणी कस्य मनः स्पृहार्द्रं न करोतीत्युक्ते स्वयमार्द्रस्वभावः परमप्यार्द्रीकरोतीत्युचितमेतत् ॥

एतदुदाहरति—यथेति ।

कर्णेति । कर्णाभ्यामुत्तालितानां कर्णमूलावलम्बिनां कुन्तलानां केशपाशानामन्तादग्रभागान्निपतद्भिस्तोयैस्तद्बिन्दुभिः क्षणं कियत्कालपर्यन्तमासङ्गिनाऽत एव हारेण मौक्तिकमालया वृतौ परिवेष्टितौ स्तनौ यस्यास्तथाविधेव सती देवाङ्गना शीतेन शैत्येन पुलकिता सती सीत्कारिणी, अथ चाञ्जनस्य निर्धूतत्वाच्छोणे रक्तवर्णे कोणे ययोस्तादृशे नयने यस्यास्तथाविधाऽथ च प्रस्यन्दन् कवरीभरः केशपाशो यस्यास्सा कस्य रागिणो मनः स्पृहार्द्रं कामातुरं न कुरुते, सर्वस्यापि मनस्तथा कुरुत एवेति भावः ॥

अत्र **आसङ्गिना** इत्यनेन **हारेणेव** इति न घटते । अत एव **आसङ्गिता** इति पठनीयम् । यद्वा **शीतेन** इत्यस्यैव विशेष्यत्वमङ्गीकृत्य यथाश्रुतः पाठः सङ्गमनीयः ॥

अत्र च वीतरागस्य शुकस्यैवम्विधामप्यङ्गनां परिवीक्ष्य कामाभावो व्यतिरेकमुखेन वर्णनीयः । तत्र रागिमात्रस्य पुंसोऽन्तःकरणे कामवासनोद्भावनास्वभावकामिनीस्वरूपवर्णनेन स्वभावौचित्यं प्रतिपादितम् । स्नानार्द्रया अङ्गनायाः स्वभाव एव रागिणां मनसि कामार्द्रीभावोद्भावकत्वम् । एतत्सर्वं मनसि निधायाह—अत्रेत्यादिना ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वभावौचित्य का उदाहरण मेरी मुनिमतमीमांसा के निम्नोद्धृत पद्य में उपलब्ध है—

"स्नान के बाद कानों पर लटकते घुंघराले बालों की लटों से कुछ समय तक टपकती मुक्ताहारसदृश जलबिन्दुओं से वेष्टित स्तनों वाली, ठण्ड के कारण पुलकित एवं सीत्कार करती हुई, अञ्जन के धुल जाने से लाल-लाल अपाङ्गों से सुशोभित नेत्रों वाली और टपकते जलकणों से विभूषित केशपाश वाली देवाङ्गना किसके मन को कामवासना से नहीं पिघला देती ?"

इस पद्य में प्रगाढ़ वैराग्य से सम्पन्न होने से अत्यन्त विमल चित्तवाले व्यास-पुत्र शुकदेव की गङ्गातट पर स्नानान्त में नग्नप्राय देवाङ्गनाओं को देखकर भी कामशून्यावस्था का व्यतिरेकमुखेन प्रतिपादन करने के लिए रागयुक्त पुरुषों की उक्त स्थिति में कामातुरता का वर्णन किया गया है। यहाँ स्वयं आर्द्र देवाङ्गना द्वारा रागिजन के चित्त को कामार्द्र कर दिये जाने का जो वर्णन किया गया है उसमें स्वभावौचित्य स्पष्ट है, क्योंकि जो वस्तु स्वयं आर्द्र है उससे सम्पृक्त दूसरी वस्तु का आर्द्र हो जाना स्वाभाविक है। अतः इस वर्णन में स्वभावौचित्य है॥

न तु यथा मम तत्रैव—

भक्तिः कातरतां क्षमा सभयतां पूज्यस्तुतिर्दीनतां
धैर्यं दारुणतां मतिः कुटिलतां विद्यावलं क्षोभताम्।
ध्यानं वञ्चकतां तपः कुहकतां शीलव्रतं षण्ढतां
पैशुन्यव्रतिनां गिरां किमिव वा नायाति दोषार्द्रताम्॥

अत्र पिशुनस्वभावे वर्ण्यमाने भक्त्यादीनां गुणानां वैपरीत्ये प्रति-पादिते पिशुनानां वचसां किं वा दोषार्द्रतां नायातीत्यभिहिते स्वय-मनार्द्रस्वभावस्य परार्द्रीकरणमनुचितमेव॥ ३३॥

प्रसङ्गात्प्रत्युदाहरणमप्याह—न त्विति।

भक्तिरिति। पैशुन्यव्रतिनां नित्यपिशुनानां जनानां गिरां वचसां विषयीभूतं किमिव गुण्यं वस्तु दोषार्द्रतां दुष्टत्वं नायाति न प्राप्नोति ? सर्वमेव वस्तु पिशुनो जनो दुष्टमेव वदतीत्यर्थः। तथाहि—तद्वचसि भक्तिः परानुरक्तिरीश्वरे कातरतामसाहयतां प्राप्नोति। भक्तिर्हि भक्तं स्वाभिमानशून्यं कुर्वन्ती 'तन्मनसि सर्वमीश्वराधीनमेव, नात्र मम किमपि कर्तृत्वादि' इति शरणागतिभावना-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुद्भावयति। सेयं पिशुनैः कातरतेति भण्यते। क्षमा प्रत्यपकारभावनायां सत्यामपि विवेकेन प्रत्यपकाराकरणम्, तां पिशुनः सभयतेति कथयति, 'अयं दुर्बलोऽपकारिणः प्रबलाद्विभेति' इत्येवं वदति। पूज्यानां स्तुतिर्दीनतां प्रयाति। पूज्यस्तुतिर्दीनतेति तेन कथ्यते। धैर्यं दारुणतामायाति। यदा धैर्याज्जनः स्तब्ध इव दृश्यते तदा 'अयं किञ्चिदवाच्यं कर्तुं चिन्तयति' इति भण्यते पिशुनेन तद्विषये। मतिः कुटिलतां गच्छति। यदा भाविपरिणाम-विवेचनेन कश्चन जनो मतिमता किञ्चिद् आपातरम्यं कर्म कर्त्तुं प्रतिषिध्यते तदा 'अयं कुटिल एव तं लाभाच्च्यावयति' इति मतिमद्विषये पिशुनेनोच्यते। विद्यावलं क्षोभतामायाति। यदा कश्चन विद्वानन्यस्मै किमपि साधूपदिशति येनान्यस्मिन् प्रवृत्तिर्निवृत्तिर्वा दृश्यते तदा 'अयं क्षुब्धमन्यं करोति' इति पिशुनेन प्रलप्यते। ध्यानमेकाग्रतयाऽवस्थानं वञ्चकतां गच्छति। यथा वकस्यै-काग्रता कीटादिविषये भक्षणफलत्वेन परिणममाना वस्तुतो वञ्चकतैव भवति तथैव सत्पुरुषध्यानमपि तेन वर्ण्यते। तपः कुहकतां धूर्त्ततां पराभिसन्धान-कर्तृतां वा गच्छति। तपस्विनं धूर्त्तं इति कथयति पिशुनः। शीलं सत्स्वभावः, तद्व्रतं नियतपरिपालनं षण्ठतां नपुंसकत्वं याति। यदा कश्चन शीलं परिपाल-यति तदा 'अयं पौरुषशून्यः किं कुर्याद्' इति वदति पिशुनः। तदेवं सर्वे गुणाः पिशुनेन दोषपक्षे निक्षिप्यन्ते॥

प्रत्युदाहरणं चैतत्पदानौचित्यस्यापि सम्भाव्यते। अत्रानार्द्रस्यैव पिशुन-वचसो गुणवैपरीत्यवर्णनमुखेन दोषार्द्रताधायकत्ववर्णनं स्वभावाननुकूलम्। स्वयमनार्द्रं वस्तु नेतरदार्द्रीकर्तुं शक्नोति। अतोऽनौचित्यमत्र स्वभाववर्णन इत्याह—**अत्रेत्यादिना**॥

वस्तुतः स्वयमनार्द्रस्यापि वह्नेरितरार्द्रीकरणस्य दृष्टत्वादेतदनुचितेम-वानौचित्यवर्णनमिति विवेचनीयं विज्ञैः॥

किन्तु मेरी मुनिमतमीमांसा के ही अधोनिर्दिष्ट पद्य में स्वभावौचित्य नहीं है—

"पिशुन व्यक्तियों की 'वाणी में सब गुण भी दोष से ही आर्द्र (दुष्ट) हो जाते—वे भक्ति को कायरता, क्षमा को भय, श्रेष्ठ व्यक्तियों की स्तुति को दीनता, धैर्य को दारुणता, मति (भविष्य को सोचनेवाली प्रज्ञा) को कुटिलता, विद्यावल को

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूसरों को क्षुब्ध करने वाला, ध्यान को वञ्चकता, तपश्चरण को धूर्त्तता और शील-वत्ता को नपुंसकता कहते॥"

गुण को दोष बतलाना पिशुनों का स्वभाव है—यहीं कहना यहाँ अभिप्रेत है। शब्दतः 'पिशुनों की वाणी को गुणों को दोषार्द्र बनाने वाली' कहा गया है। इसमें स्वभावौचित्य नहीं है, क्योंकि आर्द्रतारहित पिशुन-वाणी द्वारा गुणों को दोषार्द्र बनाना स्वाभाविक नहीं है। जो स्वयं आर्द्र नहीं है वह दूसरे को आर्द्र कैसे बना सकता ?

सारसङ्ग्रहौचित्यं दर्शयितुमाह—

सारसङ्ग्रहवाक्येन काव्यार्थः फलनिश्चितः।
अदीर्घसूत्रव्यापार इव कस्य न संमतः॥ ३४॥

सारसङ्ग्रहवाक्येन काव्यार्थः सुनिश्चितफलः शीघ्रकारिण इव व्यापारः कस्य नाभिमतः॥

क्रमप्राप्तं सारसंग्रहौचित्यन्निरूपयति--सारेति।

सारसङ्ग्रहेति। सारसङ्ग्राहकेण वाक्येन कव्यार्थोऽदीर्घसूत्राणां यथा-समयं कार्यं सम्पादयतां जनानां व्यापार इव सुनिश्चितफलः सन् कस्य सहृदयस्य न सम्मतः? सर्वस्यापि सम्मत एवेत्यर्थः॥ ३४॥

शीघ्रकारिण इति। एतच्चापव्याख्यानम्, यथासमयं कार्यकर्तुरिति तूचितम्॥

अब सारसंग्रहौचित्य का निरूपण किया जा रहा है—

जिस प्रकार यथासमय कार्य-सम्पादन करने वाले का निश्चितफलक व्यापार (कार्य) सबको अच्छा लगता उसी प्रकार सारसंग्राहक वाक्य से घटित काव्य का अर्थ सहृदयों के हृदय में आनन्दस्वरूप फल का निश्चित उत्पादक अथवा अभिव्यञ्जक होने से सर्वसम्मत होता है॥ ३४॥

वृत्तिग्रन्थ का अर्थ पूर्ववत् है॥

यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

विविधगहनगर्भग्रन्थसम्भारभारै-
र्मुनिभिरभिनिविष्टैस्तत्त्वमुक्तं न किञ्चित्।
कृतरुचिरविचारं सारमेतन्महर्षे-
रहमिति भवभूमिर्नाहमित्येव मोक्षः॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र भगवद्गीतार्थविचारे सारसंग्रहोऽभिहितो यत्किल मुनिभिरनेकभेदभिन्नशास्त्रजडैरभिनिविष्टमतिभिस्तत्त्वमुपादेयं न किञ्चित्कथितम्। भगवतो महर्षेर्व्यासस्य सुमतेर्विमलविचारोत्तीर्णं निश्चितमेतदेव यदहङ्कारः संसारमूलभूमिर्ममतापरित्याग एव मोक्ष इति तत्संक्षेपेण भयक्षयोपदेशः प्रकृतार्थस्य परममौचित्यं पुष्णाति ॥

एतदुदाहरति—यथेति।

विविधेति। विविधानि गहनानि दुर्ज्ञेयानि तत्त्वानि गर्भस्थितानि येषान्तेषां ग्रन्थानां सम्भारः समूह एव भारो भारभूतो येषान्तैरभिनिविष्टैराग्रहग्रहिलैर्मुनिभिर्न किमपि तत्त्वमुक्तम्, ग्रन्थगौरवमात्रं कृतं तैरित्यर्थः। सम्प्रति व्यासविषयं व्यतिरेकमाह—कृतेति। महर्षेर्व्यासस्य कृतो रुचिरो विचारो यत्र विषये तथाविधं सारमेतदेव यदहङ्कारो भवस्य जन्मनो बन्धस्येति तात्पर्यं भूमिः कारणम्, अहङ्कारनिवृत्तिश्च मोक्षो मोक्षसाधनम्। यद्वा मोक्ष एव सा, अहङ्कारस्य तन्मूलभूताविद्यानिवृत्तिमन्तरेण वस्तुतो निवृत्त्यभावात्, अविद्यानिवृत्तेश्च ब्रह्मस्वरूपतया स्वत एव मोक्षत्वात्। एवञ्चाहङ्कारोऽविद्याया अप्युपलक्षणमत्रेति बोध्यम् ॥

अत्र **नाहमित्येव** इत्येवकारेण सुषुप्त्यादेर्मोक्षत्वाभाव उक्तः, तदानीमप्यविद्यावृत्तेः सत्त्वेनाहङ्कारस्य चाविद्योपलक्षणत्वेन सुषुप्त्यादावहङ्कारनिवृत्तेः प्रकृताभिमताया अभावात् ॥

अत्रौचित्यमुपपादयति—अत्रेत्यादिना। वर्णनीयार्थानुरूपं सारसंग्राहकवचनमेतदित्याशयो वृत्तिग्रन्थस्य। अक्षरार्थः स्फुटः ॥

सारसङ्ग्रहौचित्य का उदाहरण मेरी मुनिमतमीमांसा का यह पद्य है—

"अनेक प्रकार के अर्थगम्भीर ग्रन्थों के भार से लदे (किन्तु उनके तात्पर्यार्थ से अनभिज्ञ) दुराग्रही मुनियों ने कोई तत्त्व नहीं बतलाया। किन्तु महर्षि व्यासदेव के उपदेश का उचित विचारों से निष्कृष्ट सार यही है कि अहङ्कार ही बन्धन का मूल है और निरहङ्कारता ही मोक्ष है ॥"

इस पद्य में श्रीमद्भगवद्गीता का सारसङ्ग्रह किया गया है। गीता के तात्पर्यार्थ (सार) की यह संक्षिप्त अभिव्यक्ति कि अहङ्कार बन्धन का मूल है और उसकी निवृत्ति मोक्ष है, अत्यन्त उचित है। अतः इसमें सारसङ्ग्रहौचित्य है ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न तु यथा परिव्राजकस्य—

तपो न तप्तं वयमेव तप्ता
भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः ।
जरा न जीर्णा वयमेव जीर्णा-
स्तृष्णा न याता वयमेव याताः ॥

अत्र वयमेव तप्ता भुक्ता जीर्णा याता इत्युक्ते निःसाराचारुत्वादपर्यवसितो वाक्यार्थः फलशून्यतया सारसंग्रहोचितं न किञ्चित्प्रतिपादयति ॥ ३४ ॥

प्रत्युदाहरति—न त्विति ।

तप इति । तपो न तप्तं नानुष्ठितमपि तु वयं तपोऽभिलाषुकाः प्राणिन एव तप्ताः सन्तप्ता जाताः । तपो न पूर्णमिति भावः । एतेन तपसोतिदुष्करत्वं व्यज्यते । भोगा भोग्या रूपादयो न भुक्ता नानुभूता अपि तु वयं भोक्तार एव वस्तुतो भुक्ताः कालेनेति शेषः । एतेन भोगस्य दुरन्तत्वं प्रतीयते । जरा वृद्धावस्था न जीर्णा वृद्धत्वमवाप्ताऽपि तु वयं प्राणिन एव जीर्णा वृद्धत्वमवाप्ताः । एतेन जराया अनपह्नियमाणत्वं द्योत्यते । तृष्णा न याता विगताऽपि तु वयमेव प्राणिनो याताः प्रयाताः । एतेन तृष्णाया अनन्तत्वं सूच्यते ॥

अत्र सर्वेषामसारत्वमात्रं प्रतिपादितम्, न तु किमपि सारं निर्दिष्टमित्यतो वर्णनमिदमनुचितमित्याशयवानाह—अत्रेति ॥

वस्तुतस्त्वत्र सारस्यावाच्यत्वेपि व्यङ्ग्यत्वमस्त्येव । तथा हि—मोक्षसाधनस्य तपसोऽनाचरणेन बन्धसाधनीभूते च भोगादौ रागेण प्रवृत्तिर्दुःखावहेति यावज्जीवमिह जन्मनि जन्मान्तरे च तप आद्यनुष्ठान एव प्राणिभिर्दत्तचित्तैर्भाव्यमिति महानुपदेशो व्यञ्जनया प्रतिपादित एवात्र । अतोऽनौचित्योपवर्णनं ग्रन्थकृतो न चारुतरम् इति प्रतीयते ॥

किन्तु किसी परिव्राजक के इस पद्य में सारसङ्ग्रहौचित्य नहीं है—

"तप तो तपा (क्रिया) नहीं गया पर हम अवश्य ही तप्त (सन्तप्त हो) गये, उपभोग्य पदार्थों का भोग तो हो नहीं सका पर हम अवश्य ही भुक्त (कालकवलित) हो गये, हमारी वृद्धावस्था तो जीर्ण नही हो सकी पर हम अवश्य जीर्ण हो गये और हमारी तृष्णा भी जा नहीं सकी पर हम अवश्य ही चले गये (जायेंगे) ॥"

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस वर्णन में सांसारिक पदार्थों की सारहीनता तो कही गई है परन्तु सार क्या है यह नहीं बताया गया है। अतः इसमें सारसङ्ग्रहौचित्य नही है॥

प्रतिभौचित्यं दर्शयितुमाह—

प्रतिभाभरणं काव्यमुचितं शोभते कवेः।
निर्मलं सुगुणस्येव कुलं भूतिविभूषितम्॥ ३५॥

प्रतिभालङ्कृतं कवेः काव्यमुचितं गुणवतः कुलमिव विमलं लक्ष्म्या प्रकाशितं शोभते॥

इदानीम्प्रतिभौचित्यं विवृणुते—प्रतिभेति। प्रतिभा नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञैवाभरणं यस्य तथाविधमत एव निर्मलं काव्यं कवेस्तथा शोभते यथा सुगुणसम्पन्नस्य सज्जनस्य निर्मलं कुलं भूत्यैश्वर्येण विभूषितं सच्छोभते॥३५॥

वृत्तिः स्पष्टा॥

अब प्रतिभौचित्य का निरूपण किया जा रहा है—
कवि का प्रतिभारूपी आभूषण से सम्पन्न निर्मल एवं उचित काव्य उसी तरह सुशोभित होता जिस तरह गुणवान् व्यक्ति का निर्मल कुल ऐश्वर्यसम्पन्न होने से सुशोभित होता॥ ३५॥
वृत्तिग्रन्थ का अर्थ पूर्ववत् है॥

यथा मम लावण्यवत्याम्—

अदय! दशसि किं त्वं विम्बवुद्ध्याधरं मे
भव चपल निराशः पक्वजम्बूफलानाम्।
इति दयितमवेत्य द्वारदेशात्तमन्या
निगदति शुकमुच्चैः कान्तदन्तक्षतौष्ठी॥

अत्र कयापि द्वारदेशागतं प्रियं ज्ञात्वाऽन्यकामुकदशनखण्डितौष्ठ्या सम्प्रति तदागमनानभिज्ञयेव शुकमुद्दिश्य यदुक्तं निर्दय! किं त्वं विम्बफललोभादधरं मम विदारयसि, पक्वानां जम्बूफलानामिदानीं चपल! निराशो भव, कुपिता तुभ्यं नो दास्यामीति तेनोच्चैः प्रत्यायनापह्नवनवनवोन्मेषप्रज्ञाचातुर्यचारुवचनमौचित्यचमत्कारं करोति। यदाह भट्टतौतः—

'प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता' इति॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उदाहरणमाह—यथेति ।

अद्येति । कांचिद् व्यभिचारिणी दूरदेशादागतस्य स्वभर्त्तुः समागमनमपलपन्ती तत्प्रतारणायेतरपुरुषकृतं दन्तक्षतं शुककृतत्वेन वर्णयन्त्याहैतत् । दयितं स्वपतिं प्रवासाद् द्वारदेशमागतं वीक्ष्य कान्तस्य परनायकस्य दन्तैः क्षतोऽधरोष्ठो यस्याः साऽन्या व्यभिचारिणी शुकमुच्चैरित्थं वदति—रे अदय निर्घृण शुक ? बिम्बफलभ्रान्त्या त्वं मेऽधरं किः कथं दशसि ? एतदपराधफलत्वेन रे चपल ? त्वं मद्देयपक्वजम्बूफलानां निराशो भव, इतः परं नाहं तुभ्यं पक्वानि जम्बूफलानि दास्यामीत्यर्थः ॥

अत्र व्यभिचारिण्या अपलापकल्पनाप्रतिभा स्पष्टमेवावगम्यत इत्यतो विद्यत एव प्रतिभौचित्यमित्युपपादयति— अत्रेत्यादिना । प्रत्यायनेऽपह्नवोऽपलापः, तद्विषयिणी नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा प्रतिभा, तस्याः चातुर्येणोत्कर्षेण चारु वचनमिति योगार्थः । प्रतिभास्वरूपे प्रमाणमाह—यदाहेति । भट्टतौतो नाट्यशास्त्रव्याख्याता ॥

प्रतिभौचित्य का उदाहरण मेरे लावण्यवती काव्य के इस पद्य मे द्रष्टव्य है—

"कोई व्यभिचारिणी अपने अधर में प्रेमी द्वारा किये गये दन्तक्षत को अपने पति से छिपाना चाहती है । अतः प्रवास से लौटे द्वारस्थ पति के परिज्ञान का अपलाप करती हुई वह तोते से चिल्ला कर कह रही है—'अरे निर्दय शुक ! तूँ ने बिम्बफल की भ्रान्ति से मेरे अधर पर क्यों आघात कर दिया ? तूँ बड़ा ही नटखट है ! ले, अब तुझे मैं पके जामुन नहीं दूंगी !"

इस पद्य में व्यभिचारिणी नायिका की अपने पति को धोखा देने के लिए विलक्षण कल्पना अत्यन्त चातुर्यपूर्ण है । अतः प्रतिभौचित्य है । प्रतिभा तो नवनवकल्पनाचातुर्य को ही कहा जाता है । इसीलिए भट्टतौत ने कहा है— "नवीन-नवीन कल्पना में समर्थ प्रज्ञा को ही प्रतिभा कहते हैं" ॥

न तु यथा मम तत्रैव—

निर्याते दयिते गृहे विशयने निर्माल्यमाल्ये कृते
प्राप्ते प्रातरसह्यरागिणि परे वारावहारेऽन्यथा ।
द्वारालीनविलोचना व्यसनिनी सुप्ताहमेकाकिनी-
त्युक्त्वा नीविविकर्षणैः स चरणाघातैरशोकीकृतः ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र वेश्या व्यालग्नकामुकस्य वारावहारं विधाय नवकामुकेन सह क्षपायां नीतायां प्रभाते तन्निर्याते शय्याकुसुमादिसम्भोगलक्षणे निवारिते वारवञ्चनकुपिते गाढानुरागग्रहग्रस्तमतौ पूर्वकामुके प्राप्ते त्वदालोकनकांक्षिणी व्यसनिनी द्वारन्यस्तनयनाहमेकाकिनी सुप्तेति प्रत्यायनावचनविलीनमन्युसरभससरसनीविविकर्षणोद्यताकृतिकृतेर्ष्याकोपया चरणनलिनप्रहारैरशोकीकृतः शङ्काशल्योन्मूलनान्निःशोकः सम्पादितः सन्ततपुलकाङ्कुरत्वादशोकतरुतुल्यतां नीत इति वा वाक्यार्थः केवलसत्यविप्रलम्भप्रागल्भ्यमात्रमेव गणिकाया गाढरागमूलतां च प्रतिपादयति, न तु प्रतिभोद्भूतामौचित्यकणिकां सूचयति ॥ ३५ ॥

प्रत्युदाहरणमप्याह प्रतिभौचित्यस्य—**न त्विति**। तत्रैव=लावण्यवत्यामेव।

निर्यात इति। काचिद्वेश्या नवकामुकसम्भोगाभिलाषिणी पूर्वकामुकमत्यासक्तमपि एकस्मै दिनाय प्रतिषिद्धय अन्येद्युश्च प्रभाते पूर्वकामुकसमागमनात्पूर्वमेव पूर्वस्यां रात्रौ कृतस्य नवकामुकसमागमस्य चिह्नान्यपसार्य यथा तम् (पूर्वकामुकम्) अपलापपूर्वकमकथयत्तस्यैवात्र वर्णनं विहितम्। पद्यार्थस्तु—रात्रौ सम्भोगादिकं विधाय प्रत्यूष एव दयिते नवकामुके निर्याते तद्गृहादपसृते सति गृहे च विशयने विगतशय्ये माल्यशून्ये च कृते। निर्माल्यशब्दोऽत्र निरस्तार्थतया कथञ्चिद् वर्णनीयः, निर्माल्यं निरस्तं माल्यं यस्मादिति च विग्रहः। वारस्य प्रतिषिद्धस्य दिनस्यावहारेऽत्यये जाते प्रातः परेऽन्यस्मिन्नसह्यरागिण्युत्कटकामुके प्राप्ते समागतेऽन्यथा समागमविलम्बेन कुपिते च सति त्वदवलोकनाभिलाषुकाहं 'गतायां रात्रौ द्वारालीनविलोचना द्वारासक्तविह्वलनयना व्यसनिनी विरहाकुलैकाकिन्येव सुप्ता' इति तमुक्त्वा तत्कृतनीवीविस्रंसनापराधैर्निमित्तैः स्वचरणाघातैः स उत्कटरागो जनोऽशोको निश्शोकः कृतः, अशोकवृक्षवदङ्कुरितचित्तो वा कृत इति ॥

वस्तुतस्त्वत्र पद्ये वाराहार इत्थं व्याख्येयः—कश्चन प्रियः कामुकः प्रतिश्रुत्यापि वाराङ्गनायै रात्रौ नागतवान्। ततश्च चिरन्तं प्रतीक्ष्य सा धनसम्भोगलोलुपा केनचिदन्येन रात्रिं व्यतीयाय वार एको निरर्थको मा भूदिति विचार्य। इयमेव वारनिरर्थकत्वसम्भावना वारावहारो मन्तव्या। अत एवोपालम्भोऽपि वेश्याकृतोऽत्र तृतीयचरणे निबद्धो घटते। यदि नाम वेश्ययैव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स प्रतिषिद्धो भवेत्तर्हि कथं तदनागमननिमित्तकोयमुपालम्भः समञ्जसः स्यात् ? अनयोर्युक्तायुक्तत्वे सुधीभिर्विवेचनीये ॥

यद्वा—काचिद्वेश्या कञ्चन प्रियकामुकमपि कदाचित्परकामुकाद्धनाद्याधिक्यं लब्धुकामा तं कयाचिदन्यया सूचितवती यत्तेनाद्य नागन्तव्यम्। रात्रिञ्च सा परनायकेन सह निनाय। प्रातर्यदा प्रियः कामुक उपस्थितस्तदा स विलम्बादिना क्रुद्ध इवासीत्। तत्क्रोधशान्त्यर्थं तया यदपलपितं तदेव तृतीयचरणे निबद्धम् इति पूर्वोक्त एवार्थो वारावहारशब्दस्य मन्तव्यः ॥

पद्येऽस्मिन् विविधः क्लेशोऽर्थसामञ्जस्ये दृश्यते। अतो यदि नाम पद्यमिदमित्थं पठ्यते—

निर्यातेऽन्यजने निरस्य सकलं सम्भोगचिह्नं गृहात्
प्रातः प्राप्तमसह्यरागिणमियं वारावहारेऽन्यथा।
द्वारालीनविलोचना व्यसनिनी सुप्ताहमेकाकिनी-
त्युक्त्वा नीविविकर्षणेन चरणाघातैरशोकं व्यधात् ॥

तदा किञ्चिदर्थलाघवं स्यात् !

अनौचित्योपपादनप्रकारमाह—**अत्रेत्यादिना**। व्यालग्नोत्यासक्तः। तन्निर्यात इत्यत्र भावे क्तः। **प्रत्यायनावचनेत्यादि**। प्रत्यायनायाः प्रतारणाया वचनम्, एतच्च तृतीयचरणोक्तम्, तेन विलीनो व्यपगतो मन्युः कोपो यस्य सरभसं हठात् सरसाय नीविविकर्षणायोद्यताऽऽकृतिश्च यस्य तेन कृताबीर्ष्याकोपो यस्यां तयेति समासार्थः। **गाढरागमूलतामिति**। एतच्च न समञ्जसं प्रतीमः। तथाविधवञ्चनतत्परायास्तस्या गाढरागत्वानुपपत्तेः। आपाततस्तत्प्रतीत्यभिप्रायकत्वे तु कथञ्चिद् युज्यत एतत्। शेषं स्पष्टार्थम् ॥

किन्तु लावण्यवती काव्य के हीं मेरे निम्नलिखित पद्य में प्रतिभौचित्य नहीं है—

"उस वेश्या ने अपने से सम्बद्ध उत्कटकामनायुक्त पुरुष को किसी अन्य व्यक्ति द्वारा 'कल रात मत आना' यह कहला कर एक रात के लिए मना कर दिया और वह रात उसने किसी अन्य कामुक के साथ रङ्गीली की। जब तड़के ही वह कामुक चला गया तो उसने रात के सम्भोग के सारे चिह्न शय्या तथा माला आदि झट से हटा दिये। बाद में जब वह पूर्व कामुक सबेरे आ धमका तो वह एक रात की मनाही के कारण बहुत ही नाराज था। इस पर उसे खुश करने के लिए उस वेश्या ने पूर्वोक्त सूचना को झूठी कहती हुई उसे धोखा दिया कि वह तो उसके

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वियोग में अकेली तड़पती हुई सारी रात दरवाजे की ओर नजर लगाकर उसकी प्रतीक्षा करती रही। यह सुन वह कामुक उसकी साड़ी हटाने लगा। इस पर उसने कृत्रिम क्रोध दिखलाती हुई उस कामुक को अपने चरणाघात से अशोक (शोक-हीन अथवा अशोकवृक्ष के समान अङ्कुरित अर्थात् प्रफुल्लित) बना दिया॥"

इस पद्य से केवल इतना ही प्रतीत होता है कि उस वेश्या ने उस कामुक को खूब धोखा देकर उसके प्रति अपने प्रगाढ़ प्रेम का प्रदर्शन मात्र किया। किन्तु उसके कथन में प्रतिभा की कोई झलक नहीं मिलती। अतः इसमें प्रतिभौचित्य नहीं है॥

अवस्थौचित्यं दर्शयितुमाह—

अवस्थौचित्यमाधत्ते काव्यं जगति पूज्यताम्।
विचार्यमाणरुचिरं कर्तव्यमिव धीमताम्॥ ३६॥

अवस्थोचिततया काव्यं जगति श्लाघ्यतामायाति मतिमतामिव कृत्यं विचारनिर्घर्षरुचिरम्॥

सम्प्रत्यवस्थौचित्यं निरूपयन्नाह—**अवस्थेति।**

अवस्थौचित्यमिति। अवस्थाया वयःस्थितेर्बाल्यादेरौचित्यं यत्र तादृशं काव्यं जगति तथा पूज्यतामाधत्ते यथा विचार्यमाणतया रुचिरं कर्त्तव्यं धीमतां जगति पूज्यतां प्राप्नोति॥ ३६॥

विचारनिर्घर्षरुचिरमिति। विचार एव निर्घर्षो घर्षणन्तेन निमित्तेन रुचिरम्विचारनिर्घर्षरुचिरम्। घर्षणेन हि घृष्यमाणगतमलापसारणात्तद्रुचिरं सम्पद्यत एव। विचारस्य च घर्षणरूपत्व तस्य भृशं विचार्यमाणविषयत्वापादनेनेति बोध्यम्॥

अब अवस्थौचित्य का निरूपण किया जारहा है—

अवस्थौचित्यसम्पन्न काव्य विद्वानों के विचारपूर्ण स्वच्छ आचरण के समान संसार में सम्मानित होता है॥ ३६॥

वृत्ति का अर्थ पूर्ववत् है॥

यथा मम लावण्यवल्याम्—

मुक्तः कन्दुकविभ्रमस्तरलता त्यक्तैव बाल्योचिता
मौग्ध्यं निर्धुतमाश्रिता गजगतिर्भ्रूलास्यमभ्यस्यते।
यन्नर्मोर्मिषु निर्मितं मृगदृशा वैदग्ध्यदिव्यं वच-
स्तद्विद्मः सुभगाभिमानलटभाभावे निबद्धो भरः॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र यदुक्तं कन्दुकक्रीडा त्यक्ता, बालचापल्यं परिहितम्, मौग्ध्यं निरस्तम्, गजगतिरङ्गीकृता, भ्रूलतालास्याभ्यासः क्रियते, नर्मोर्मिषु वचनवैचित्र्यमासूत्रितम्, तेन जानीमहे शैशवावस्थां समुत्सृजन्त्या प्रौढतामनारूढयापि नवसम्भोगगौरवगर्भेण सुभगाभिमानेन लटभाभावे बालया भरो निबद्ध (इति) इत्यभिहिते स्फुटधिया वयोवस्थामध्यसन्धिवर्णनायामौचित्यं स्फुरदिवावभासते ॥

एतदुदाहरणमाह—यथेति ।

मुक्त इति । यद् यतो मृगदृशाऽनया वारवध्वा कन्दुकविभ्रमो मुक्तस्त्यक्तः । विभ्रमः क्रीडा । बाल्योचिता तरलता बाल्यचपलता त्यक्तैव । एवकारेण चापल्यस्यात्यन्ताभावः प्रतिपिपादयिषितः । यद्वा समुच्चयार्थक एवकारोऽत्र । मौग्ध्यं निर्धुतं कम्पितं निरस्तम् । गजगतिराश्रिताऽङ्गीकृता । भ्रुवोर्लास्यं विलासोऽभ्यस्यते । नर्मोर्मिषु परिहासतरङ्गेषु तत्सन्तताविति तात्पर्यम्, वैदग्ध्येन दिव्यमलौकिकचमत्कारकारि वचो निर्मितमुक्तम्, तत्ततो निमित्ताद्विधो यदनया सुभगो रम्योऽभिमानो यत्र तस्मिन् लटभाभावे बाल्याभावे यौवने भरो निबद्ध इति । यौवने हि कामिन्या अभिमानोऽपि हृदयावर्जक एव भवतीति प्रसिद्धमेव । हेतुश्चात्र वृत्तौ वक्ष्यते—नवसम्भोगगर्भेणेति ॥

अत्रौचित्यमुपपादयति—अत्रेत्यादिना । परिहितं परित्यक्तम् । सुभगाभिमानेनेति । अत्र सप्तम्यन्त एव पाठो युक्ततरः । एतदनुरोधेन च विशेषणपदस्यापि सप्तम्यन्तत्वमेवोरीकरणीयम् । तृतीयान्तपाठे तु महानन्वयक्लेशो भवेत् । स्फुटधियेति पदमवभासित इत्यनेन योज्यम् स्पष्टार्थकम् । अत्र च बाल्ययौवनावस्थासन्धिलक्ष्मभूतानां व्यापाराणां स्पष्टं वर्णनादवस्थौचित्यं स्फुटमेवावभासते ॥

इसका भी उदाहरण मेरी लावण्यवती का ही यह पद्य है—

"उस वेश्या ने गेन्द खेलना छोड़ दिया है, बाल्यावस्थासुलभ चञ्चलता से भी अब दूर हो चुकी है, वैचारिक मुग्धता भी अब इसमें नहीं रही, मतवाली हथिनी की तरह चलने लगी है और युवकों को तिरछी नजर से देखने लगी है। इन सब से और हास-परिहास के समय वैदग्ध्यपूर्ण बातें करने से यह समझने में स्पष्टतः आरहा है कि अब यह उन्मादपूर्ण यौवन में प्रवेश कर चुकी है॥"

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस पद्य में यह कहा गया है कि इस वेश्या के कन्दुकक्रीड़ा और बालचापल्य के परिहार, गजगति के अनुसरण, कटाक्षनिक्षेप के अभ्यास एवम् हास-परिहास में वैदग्ध्यपूर्ण वचनविन्यास से यह प्रकट होता है कि अभी यह प्रौढ़यौवना तो नहीं हुई है फिर भी बाल्यावस्था को छोड़कर उस यौवन का आलिङ्गन कर ही चुकी है जिसमें इसका भावी नवसङ्गम के उल्लास से भरा एक रोचक उन्माद प्रकट हो रहा है। इस वर्णन में बाल्य एवं यौवन की अवस्थाओं की सन्धि का जैसा मनोहर चित्रण किया गया है उसमें औचित्य सुस्पष्ट दिखाई दे रहा है॥

न तु यथा राजशेखरस्य—

ज्यायान् धन्वी नवधृतधनुस्ताम्रहस्तोदरेण
क्षत्रक्षोदव्यतिकरपटुस्ताटकाताडकेन।
कर्णाभ्यर्णस्फुरितपलितः क्षीरकण्ठेन सार्धं
योद्धुं वाञ्छन्न कथमधुना लज्जते जामदग्न्यः॥

अत्र भार्गवः स्थविरावस्थास्थितः स्थिरतरपराक्रमकर्कशप्रौढो धनुर्धरः शिशुना रामेण धनुर्ग्रहणारुणितकोमलकरकमलतलेन क्षत्रिय-क्षयसंरम्भप्रगल्भस्ताटकाताडकेन स्फुरदाकर्णपलितः सम्भाव्यमान-जननीस्तनक्षीरकण्ठेनामुना युयुत्सुः कथं न लज्जत इत्युक्ते पेशल-तया राघवावस्थायां जामदग्न्यावस्थाविपरीततायां प्रतिपाद्यमानायां ताटकाताडकेनेति विरुद्धाधिवासोऽर्थः किमप्यनौचित्येन चेतसि सङ्कोचमादधाति॥ ३६॥

प्रसङ्गात् प्रत्युदाहरणमाह—न त्विति।

ज्यायान् इति। ज्यायान् श्रेयान् धन्वी धनुर्धरोथ च कर्णयोरभ्यर्णे समीपे स्फुरितं भासमानं दृश्यमानं पलितं श्वेतकेशंजातं यस्य तथाविधोथ च क्षत्राणां क्षत्रियाणां क्षोदे पेषण्यां यो व्यतिकरो विनाशः पेषणम्, यद्वा क्षोदः पेषणमेव व्यतिकरस्तत्र पटुः सन्नयं जामदग्न्यः परशुरामो नवधृतेनाचिरपूर्वं गृहीतेन धनुषा ताम्रमीषद्रक्तं हस्तोदरं करतलं यस्य तादृशेनाथ च ताटका-ताडकेन ताटकापहर्त्रा क्षीरकण्ठेन स्तनन्धयेन बालेन रामभद्रेण सार्धमधुना जानकीस्वयम्वरे योद्धुं वाञ्छन् कथं न लज्जते? समेन हि युद्धं शोभते। जामदग्न्यस्तु विषमेण योद्धुमिच्छतीति लज्जितव्यमेव तेनात्रेति भावः॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र ज्यायान् धन्वीत्यस्य नवधृतधनुस्ताम्रहस्तोदरेण, क्षत्रक्षोदव्यतिकरपटुरित्यस्य ताटकाताडकेन, कर्णाभ्यर्णस्फुरितपलित इत्यस्य च क्षीरकण्ठेन सार्धं विषमत्वं स्पष्टमेव। तत्रापि ताटकाताडकेनेत्यनेन स्त्रीवधकर्तुरस्य रामभद्रस्य वीरत्वमस्फुटमिति प्रतीयते, स्त्रियो हि न शूराः, अत एवावध्या उक्ताः शास्त्रे॥

अत्र जामदग्न्यरामभद्रयोर्वैषम्यं प्रतिपादनीयम्। परन्तु ताटकाताडकत्वं रामस्य वर्ण्यमानं तत्र बाधकमिव प्रतीयते, यतोऽनेन रामस्य परुषकर्मकर्तृत्वं ज्ञायते क्षत्रक्षोदेत्यादिविशेषणेन च जामदग्न्यस्यापि तथात्वमेव निरुक्तमिति नात्र व्यतिरेकः स्फुट इति भवत्यत्रावस्यानौचित्यमित्युपपादयति—**अत्रेत्यादिना**। सम्भाव्यमानं जननीस्तनक्षीरं कण्ठे यस्येति विग्रहः। बालत्वं च सम्भावनाकारणम्। **विरुद्धाधिवासितोर्थं** इति। विषमत्वप्रतिपादनप्रसङ्गे तद्बाधकत्वं समत्वप्रतिपादनस्येति प्रकृतविरुद्धत्वेन ताटकाताडकरूपोर्थो विरुद्धार्थाधिवासित इत्याशयः॥

अत्र क्षत्रक्षोदव्यतिकरपटोर्जामदग्न्यस्य स्त्रीवधकर्त्रा रामभद्रेण कथं न पौरुषविषये व्यतिरेक इति न विद्मो येनानौचित्योपवर्णनं ग्रन्थकृतः समञ्जसं स्यात्। वस्तुतस्तु समावर्जकेत्र काव्येऽसूयामात्रेण दोषोद्भावनमेतदिति विवेचनीयं विज्ञैरधिकम्॥

किन्तु राजशेखर के इस पद्य में यह अवस्थौचित्य नही है—

"श्रेष्ठ धनुर्धर, क्षत्रियों को चूर-चूर कर देने में समर्थ एवं पूरी तरह सफेद बाल वाले परशुराम अभी-अभी धनुष धारण करने के कारण कुछ लाल हथेली वाले तथा एक ताड़का-नामक स्त्रीमात्र के संहारक दुधमुँहे राम से लड़ने की इच्छा करते हुए क्यों नही लजा रहे हैं॥"

उक्त पद्य में परशुराम को वृद्ध एवम् अत्यन्त पराक्रमी प्रौढ़ धनुर्धर एवं राम को नवसिखुआ धनुषधारी, केवल ताड़का-नामक स्त्री का विनाशक औ दुधमुहाँ बच्चा कह कर यही दिखलाया गया है कि इन दोनो की अवस्थाओं में बहुत अन्तर है। अतः इन्हें रामचन्द्र के साथ लड़ने में लज्जा का अनुभव करना चाहिए। किन्तु रामचन्द्र को उनकी वीरता का सूचक ताड़का का संहारक कहना वीर परशुराम के साथ अभीष्ट तारतम्य का विघटक होने से मन में खटकता है। अतः यहाँ अवस्थौचित्य नहीं है॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विचारौचित्यं दर्शयितुमाह—

उचितेन विचारेण चारुतां यान्ति सूक्तयः ।
वेद्यतत्त्वाववोधेन विद्या इव मनीषिणाम् ॥ ३७ ॥

विचारौचित्येन सूक्तयश्चारुतां यान्ति, ज्ञेयस्वरूपज्ञानेन विद्या इव विदुषाम् ॥

अधुना विचारौचित्यं निरूपयति—विचारेति ।

उचितेनेति । यथा यथा वेद्यस्य प्रमेयस्य तत्त्वाववोधेन मनीषिणां विद्याश्चारुतां यान्ति तथैव कविसूक्तय उचितेन विचारेण चारुतां हृदयाह्लादकत्वं यान्ति ।। ३७ ।।

वृत्तिः स्पष्टा ।।

अव विचारौचित्य का निरूपण किया जा रहा है—

जिस प्रकार प्रमेयों के तत्त्वज्ञान से मनीषियों की विद्या सुशोभित होतीं उसी प्रकार उचित विचार की अभिव्यक्ति से कवियों की सूक्तियाँ सुशोभित होतीं ॥ ३७ ॥

वृत्तिग्रन्थ का अर्थ पूर्ववत् है ॥

यथा मम मुनिमतमीमांसायाम्—

अश्वत्थामवधाभिधानसमये सत्यव्रतोत्साहिना
मिथ्या धर्मसुतेन जिह्मवचसा हस्तीति यद् व्याहृतम् ।
सा सत्यामृतरश्मिवैरमसमं संसूचयन्त्याः सदा
शङ्के पङ्कजसंश्रयेण मलिनारम्भा विजृम्भा श्रियः ॥

अत्र द्रोणनिधनाख्याने सत्यव्रतोत्साहवता धर्मतनयेनापि मिथ्या लघुवचसा कुञ्जर इति यदुक्तं सा सततं सत्यचन्द्रद्वेषं सूचयन्त्याः श्रियः शङ्के पङ्कजसंश्रयेण मलिनव्यापारा विजृम्भेत्यभिहिते ससंवादलक्ष्मीस्वभावपरिभावनया तत्त्वाववोधेन मूलविश्रान्त्या फलपर्यवसायी विचारः सहृदयसंवेद्यमौचित्यं व्यनक्ति ॥

उदाहरत्येतत्—यथेति ।

अश्वत्थामेति । सत्यव्रत उत्साहिनाऽपि धर्मसुतेन युधिष्ठिरेण भारतमहाहवेऽश्वत्थाम्नस्तन्नामकस्य गजस्य वधस्याभिधानस्य समये जिह्मवचसा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मन्दस्वरोच्चारितेन वचनेन, यद्वा मन्दतावलम्बिना वागिन्द्रियेण 'हस्ती' इति शेषे यन्मिथ्या व्याहृतम् । 'अश्वत्थामा हतः' इति स्पष्टमुक्त्वा शेषे 'हस्ती' इति मन्दस्वरेणोच्चारितं येन स्पष्टवचनमात्रश्रोतुर्द्रोणस्य दूरस्थितस्य मनसि स्वपुत्रवधभ्रमो जात इति भावः । इदमेव विरुद्धमतिकृत्त्वं युधिष्ठिरवचसि मिथ्यात्वम् । इतरथा हि तथात्वं दुर्घटमेव, समस्तवाक्यस्य यथावस्थितार्थक-त्वेन मिथ्यात्वानुपपत्तेः । विरुद्धमतिकृत्त्वोद्देश्यकत्वेन च युधिष्ठिरस्य वक्तुर-धर्मभागित्वमपि सङ्गच्छते । सा मिथ्याव्याहृतिः सत्यमेवामृतरश्मिश्चन्द्रस्तेन सहासममद्वितीयं वैरं संसूचयन्त्याः प्रकटयन्त्याः श्रियो लक्ष्म्या मलिनारम्भा दूषितप्रारम्भा विजृम्भा विचेष्टितमिति शङ्के । चन्द्रलक्ष्म्योः सागरोद्भूत-त्वेन स्वतोऽविरोधेऽपि स्वाश्रयीभूतपङ्कजद्वेषिणा चन्द्रेण लक्ष्म्या वैरभाव इत्युक्तम्—**पङ्कजसंश्रयेणेति** । चन्द्रद्वेषविषयीभूतपङ्कजसंश्रितत्वेन निमित्ते-नेत्यर्थः ।। अत्राश्वत्थाम्नो द्रोणसुतस्येत्यपव्याख्यानमेव ।।

विचारौचित्यमुपपादयत्यत्र—**अत्रेत्यादिना । ससम्वादेत्यादि** । ससम्वा-दोनुरूपो योग्यो यो लक्ष्मीस्वभावस्तस्य परिभावनया चिन्तनेन । धातूनामने-कार्थत्वेन परिभावनशब्दोऽत्र चिन्तनार्थकः । मूलविश्रान्तिः समूलत्वमतएव फलपर्यवसायित्वमपि । शेषं स्पष्टम् ।।

इसका उदाहरण मेरी मुनिमतमीमांसा के निम्नलिखित पद्य में द्रष्टव्य है—

"सत्यव्रत के नियत पालन में कृतसङ्कल्प युधिष्टिर ने अश्वत्थामा नामक गज के वध के समय जो 'गज' शब्द का मन्दस्वर से (अश्राव्य) उच्चारणकर मिथ्या भाषण (सत्य के अपलाप की इच्छा से भ्रामक उच्चारण) किया वह निश्चित हीं लक्ष्मी का हीं एक हीन आचरण था जो (लक्ष्मी) अपने आश्रयभूत पङ्कज का विरोधी होने से स्वयं भी सत्यरूपी चन्द्रमा के साथ सर्वदा ही अतुलनीय शत्रुता रखती है ॥"

उपर्युक्त पद्य में लक्ष्मी के अनुरूप (अथवा प्रामाणिक) स्वभाव का स्पष्ट प्रतिपादन करते हुए जो मूल से लेकर फल तक उत्पन्न करने वाला विचार प्रकट किया गया है वह निश्चय ही सहृदसंवेद्य औचित्य का प्रकाशक है । अतः इसमें विचारौचित्य स्पष्ट है ॥

न तु यथा मम तत्रैव—

प्रग्लाने चिरकालवृत्तदयिताकेशाम्बराकर्षणे
क्रूरं राक्षसवैशसं यदि कृतं भीमेन दुःशासने ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्कालक्षमिणा कुशाश्मपरुषारण्यप्रवासे चिरं
किं पीतं तततापमग्नमहिषस्वेदाम्बुपृक्तं पयः ॥

अत्र भीमसेनचरिते विचार्यमाणे त्रयोदशवर्षपर्युषिते कृष्णाकेशाकर्षणपराभवे भीमेन भीमं राक्षसकर्म दुःशासने यदि कृतं तत्सद्यःकृतापराधकालक्षमिणा सुचिरं दर्भसूचीविषमाश्मपरुषवनवासे किं ग्रीष्मतापनिमग्नमहिषस्वेदस्रुतिपृक्तं पयः पीतमित्यनुपपन्नकृत्येऽभिहिते कारणविचाराभावान्निर्मूलोपालम्भमात्रमनौचित्यमनुबध्नाति ॥ ३७ ॥

प्रसङ्गात् प्रत्युदाहरणमप्याह—न त्विति।

प्रग्लान इति। चिरकाले त्रयोदशवर्षपूर्वकाले वृत्तं जातं यद्दयितायाः प्रियतमायाः पाञ्चाल्याः केशानामम्बरस्य वस्त्रस्य च दुःशासनकृतमाकर्षणमाकर्षणजन्यपराभव उपचारात् तस्मिन् प्रग्लाने प्रकर्षेणातिशयेन ग्लाने म्लाने सति चिरकालान्तरं यदि भीमेन भारतसङ्गरे दुःशासनेऽपराधिनि क्रूरं दारुणं राक्षसोचितं वैशसं प्रहरणं कृतन्तत् तर्हि कालक्षमिणा त्रयोदशवर्षपरिमितदीर्घकालपर्यन्तं दुःशासनापराधक्षमिणा भीमेन चिरं कुशैरुदग्राङ्कुरैरश्मभिः शिलाभिश्च परुषं कठोरं यदरण्यं तत्र प्रवासे प्रवासकाले ततो विकटो यस्तापस्तेन नदादिषु मग्नानां महिषाणां स्वेदाम्बुभिर्घर्मजलैः पृक्तं मिश्रितं पयो जलं किं कथं पीतम् ? महिषा अतिशयेन सन्तप्तास्तच्छान्त्यर्थं जलाशयं प्रविश्य विश्राम्यन्तीति तेषां स्वभावः प्रसिद्ध एव। वनौकसो हि तेषामेव जलाशयानां जलं पिबन्ति, तत्र कूपाद्यनुपलब्धेरित्यपि स्पष्टमेव। यदीदमेव दुःशासनविदारणाख्यं क्रूरं कर्म करणीयमासीत् तर्हि वनवासात्पूर्वं केशाम्बराकर्षणसमय एव तत्कृतं स्यादियान् विलम्बः कथं कृत इति पद्याशयः ॥

अत्र विलम्बकारणविचारमन्तरेणैव भीमोपालम्भवर्णनाद्विचारानौचित्यमित्युपपादयति—अत्रेत्यादिना। वृत्तिग्रन्थः स्पष्टार्थः ॥

वस्तुतस्तु काव्ये कारणविचाराभावस्याप्यलङ्कारत्वादनौचित्योपवर्णनमेतन्न शोभते ॥ ३७ ॥

किन्तु उसी ग्रन्थ के निम्ननिर्दिष्ट पद्य में विचारौचित्य नहीं है—

"तेरह वर्ष पूर्व दुःशासन द्वारा अपनी प्रियतमा द्रौपदी के केश तथा वस्त्र के हठपूर्वक अपकर्षण से उत्पन्न कोप के मलिन हो जाने के बाद भीम ने दुशासन के

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऊपर जब राक्षसोचित कठोर प्रहार किया ही तो वे अपराध के समय इसका बदला न चुका कर इतने वर्षों की लम्बी अवधि में कुशाङ्कुरों से कटीले एवं शिलाखण्डों से कर्कश जङ्गल में निवास कर उन सरोवरों का पानी क्यों पीते रहे जिनमें उत्कट ताप के कारण गोते मारने वाले जङ्गली भैंसों का पसीना टपकता रहता है ?''

इसमें इतने विलम्ब से किये गये प्रतीकार को अनुचित मानकर उपालम्भ तो दिया गया है किन्तु इसके कारण के विषय में कोई भी विचार नहीं किया गया है कि यह विलम्ब क्यों हुआ। अतः विना विचार के यह उलाहना अनुचित है ॥ ३७ ॥

नामौचित्यं दर्शयितुमाह—

नाम्ना कर्मानुरूपेण ज्ञायते गुणदोषयोः ।
काव्यस्य पुरुषस्येव व्यक्तिः संवादपातिनी ॥ ३८ ॥

काव्यस्य कर्मानुरूपेण नाम्ना पुरुषस्येव गुणदोषव्यक्तिः संवादिनी ज्ञायते ॥

अधुना नामौचित्यं निरूपयति—नामौचित्यमिति ।

नाम्नेति । कर्मानुरूपेण नाम्ना काव्यस्य गुणदोषयोः सम्वादपातिनी सम्वादिन्यनुरूपा व्यक्तिरभिव्यक्तिस्तथैव ज्ञायते यथा तथाविधेन नाम्ना पुरुषस्य गुणदोषयोरभिव्यक्तिरिति । अत्र ज्ञायते इत्यस्य स्थाने जायते इति पाठः श्रेयान् ॥ ३८ ॥

वृत्तिः स्फुटार्था ॥

अब नामौचित्य का विवरण किया जा रहा है—

कर्म के अनुरूप काव्य के पात्रों के नाम से काव्य के गुणदोष की नाम से पुरुष के गुणदोष के समान उचित अभिव्यक्ति हो जाती है ॥ ३८ ॥

वृत्तिग्रन्थ का अर्थ पूर्ववत् है ॥

यथा कालिदासस्य—

इदमसुलभवस्तुप्रार्थनादुर्निवारः
प्रथममपि मनो मे पञ्चबाणः क्षिणोति ।
किमुत मलयवातान्दोलितापाण्डुपत्रै-
रुपवनसहकारैर्दर्शितेष्वङ्कुरेषु ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्र प्रारम्भ एव ममेदं मनः पञ्चबाणः सुदुर्लभवस्तुप्रार्थनादुर्निवारः शकलीकरोति किमुत लीलोद्यानसहकारैर्मलयानिलान्दोलितबालपल्लवैरङ्कुरेषु दर्शितेष्वित्युक्ते मदनस्य पञ्चबाणाभिधानमुचितमेव ॥

उदाहरणमाह—**यथेति** ।

इदमिति । विक्रमोर्वशीयस्थं पद्यमिदम् । असुलभस्य वस्तुनः प्रियतमस्योर्वशीरूपस्य प्रार्थनया दुर्निवारः पञ्चबाणः काम इदं मे मनः प्रथममपि पूर्वतोपि क्षिणोति नाशयति । मलयवातैरान्दोलितान्यापाण्डूनीषद्रक्तानि समन्ताद्रक्तानि वा नवपत्राणि येषां तैरुपवनस्थैः सहकारैराम्रवृक्षैर्दर्शितेष्वङ्कुरेषु सत्सु किमुत ? यदा प्रथमत एवायं मम मनः खेदयन्नास्ते तदाऽऽम्रवृक्षैः प्रदर्शितेष्वङ्कुरेषु सत्सु क्षीणमपि मम मनः क्षीणतरं स करिष्यति करोति वेत्यत्र किम्वक्तव्यम् इति भावः ॥

यद्वा क्षिणोतीत्यस्याक्षिणोदित्यर्थकत्वं मत्वा यदायं पञ्चबाणः पूर्वमेव मम मनोऽक्षिणोत्तदा मञ्जरिताम्रवृक्षप्रदर्शनेन किमधिकं स करिष्यतीत्यर्थः कार्यः ॥

अत्र पद्ये मनः क्षीणं कुर्वतः कामस्य पञ्चबाण इत्यभिधानं कर्मानुरूपत्वादुचितमित्याह—**अत्रेत्यादिसन्दर्भेण** । शकलीकरोतीति क्षिणोतीत्यस्य विवरणम् ॥

नामौचित्य का उदाहरण कालिदास के इस पद्य में उपलब्ध है—

"दुर्लभ उर्वशीस्वरूप प्रियतमा की प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा के कारण अनिवारणीय यह पञ्चबाण (कामदेव) तो पहले ही मेरे वियोगाकुल मन को छिन्न-भिन्न कर चुका है । अब पुनः उपवन के मलयानिल के आघात से आन्दोलित लाल-लाल पल्लवों से लदे आम्रवृक्षों में मञ्जरी का प्रदर्शन कर उसे और क्या करना है ?"

इस पद्य में मन को छिन्न-भिन्न करने वाले कामदेव का 'पञ्चबाण' यह नाम अत्यन्त उचित है, क्योंकि एक हिंसक के लिए बाणादिसम्पन्नता आवश्यक है ॥

यथा वा मम बौद्धावदानलतायाम्—

तारुण्येन निपीतशैशवतया साऽनङ्गश्रृङ्गारिणी
तन्वङ्गया सकलाङ्गसङ्गमसखी भङ्गिर्नवाङ्गीकृता ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निःसंरम्भपराक्रमः पृथुतरारम्भाभियोगं विना
साम्राज्ये जगतां यया विजयते देवो विलासायुधः ॥

अत्र यौवननिपीतशैशवतया तन्वङ्ग्याऽनङ्गशृङ्गारवती सर्वाङ्गसङ्गमसखी सा काप्यभिनवा भङ्गिरङ्गीकृता यया निष्प्रयत्नपराक्रमः प्रभूततरारम्भसम्भारं विहाय त्रिभुवनसाम्राज्ये जयति देवो विलासायुध इत्युक्ते कामस्य विलासायुध इति नामोपपन्नमेव, तन्वङ्गीभङ्ग्यैव सिद्धत्रैलोक्याधिपत्यविजिगीषायां कामसायकादीनां नैरर्थक्यात् ॥

उदाहरणान्तरमाह—यथा वेति।

तारुण्येनेति। तारुण्येन यौवनेन निपीतं निःशेषेण पीतं विनाशितं शैशवं यस्यास्तया तन्वङ्ग्या कृशाङ्ग्या साऽनङ्गाय कामाय शृङ्गारिणी शृङ्गारभूता सकलाङ्गसङ्गमसखी सर्वाङ्गसम्पर्कवती नवाऽपूर्वा भङ्गिर्विच्छित्तिरङ्गीकृता ययाऽभिनवभङ्ग्या निःसंरम्भोऽयत्नसिद्धः पराक्रमो यस्यैवंभूतो देवो विलासायुधो विलासएवायुधं यस्य स कामः पृथुतराय महत आरम्भाय कार्याय विजयानुकूलाय योऽभियोग उद्यमस्तं विनैव जगतां साम्राज्ये विजयते सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते ॥

अत्र अनङ्गशृङ्गारिणी इति वर्णनं किञ्चित्खेदकरमिव प्रतीयते, अनङ्गस्य शृङ्गारानुपपत्तेः। अनङ्गमुद्भावयितुं शृङ्गारभूतेत्याद्यर्थकरणे तु यथाकथञ्चित्समाधेयोप्येवंभूतो निर्देशो न विच्छित्तिकरः। अतोत्र कामशृङ्गारिणी, अनङ्गसन्दीपिनी इत्यादिरूपेण पाठान्तरं कल्प्यम्। एवमेव विलासायुधः इति नामापि न रोचते, विलासस्य कामायुधत्वाप्रसिद्धेः ॥

अत्र नामौचित्यमुपपादयन्नाह—अत्रेत्यादि। तन्वङ्गीभङ्ग्यैव जगज्जयसमर्थस्य विलासमात्रायुधत्वकथनं समुचितमिति स्पष्टार्थेयं वृत्तिः। सिद्धा त्रैलोक्यस्याधिपत्यस्य विजिगीषा जेतुमिच्छा, तस्यां तत्सिद्धौ सत्यामिति भावे सप्तमी। वस्तुतस्तु प्रकृते सिद्धायाम् इत्यसमस्त एव पाठो युक्तः। एवमेवाधिपत्यशब्दोप्यपार्थक एवात्र ज्ञायते। कामसायकादीनामिति। कामस्य विलासातिरिक्तानां सायकादीनां बाणादीनामित्यर्थः। अत्रादिपदोपादानं पुष्पात्मकधनुरादिसाधनान्तरोपसंग्रहार्थम् ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसका दूसरा उदाहरण मेरी बौद्धावदानकल्पलता के इस पद्य में द्रष्टव्य है—

"इस कोमलाङ्गी ने अपनी बाल्यावस्था के यौवन द्वारा निरस्त कर दिये जाने से अपने समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गों में प्रकट होने वाली शृङ्गारपूर्ण कामोद्दीपक उस अपूर्व भङ्गिमा को अपना लिया है जिसके द्वारा 'विलासायुध' कामदेव ने विना किसी विशेष तैयारी के ही अनायास त्रैलोक्य-साम्राज्य में विजयी हो गया है ॥"

इस पद्य में कामदेव का 'विलासायुध' यह नाम उचित ही है, क्योंकि समस्त त्रैलोक्य-साम्राज्य को कोमलाङ्गी की अपूर्व भङ्गिमा से ही जीत लेने वाले कामदेव के लिए बाणादि साधन तो व्यर्थ हैं हीं ॥

न तु यथा कालिदासस्य—

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद् गिरः खे मरुतां चरन्ति ।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ॥

अत्र पश्यतो भगवतस्त्रिनेत्रस्य स्मरशरनिपातक्षोभे वर्ण्यमाने तन्निकारोपशमाय 'संहर संहर प्रभो क्रोधम्' इति यावद्वचः खे देवानां चरति तावद्भवनेत्रोद्भवः स वह्निर्मदनं भस्मराशिशेषमकार्षीदित्युक्ते संहारावसरे रुद्रस्य भवाभिधानमनुचितमेव ॥ ३८ ॥

अत्रैव प्रसङ्गप्राप्तं प्रत्युदाहरणमप्याह—न त्विति ।

क्रोधमिति । कुमारसम्भवस्थमिदं पद्यम् । तृतीयेन चक्षुषा कामं द्रष्टुं प्रवृत्तमात्रस्य भगवतस्त्रिनेत्रस्य सान्त्वनाय 'हे प्रभो ! क्रोधं संहर संहर !' इति मरुतां देवानां गिरो वाचो यावत् खे नभसि चरन्ति प्रवर्त्तन्ते तावदेव भवस्य तृतीयान्नेत्राज्जन्म यस्य स वह्निर्मदनं कामदेवं भस्मैवावशेषो यस्य तथाविधं, भस्मसादित्यर्थः, चकार ॥

'संहर संहर' इति सम्भ्रमे द्विरुक्तिः । चरन्तीति यावत्पुरानिपातयोः इति लट् ॥

अत्र कामसंहारावसरे भगवतो 'भव'शब्देनोपादानं विरुद्धार्थकत्वादनुचितमित्यनौचित्यमुपपादयति—अत्रेत्यादिना । पश्यत इत्यस्य कामदेवमित्यादिः । स्मरकर्तृकः शरनिपातः, तन्निमित्तकस्त्रिनेत्रनिष्ठः क्षोभो विचित्तत्वम् , तस्मिन् वर्ण्यमाने । तस्य कामस्य यो निकारः परिभवस्तस्योपशमाय । अत्र हरपदेन तदभिधान एवौचित्यमिति हृदयम् । शेषं स्पष्टार्थम् ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वस्तुतस्तु प्रकृतमनौचित्यवर्णनं न चारु, भवाज्जन्म वह्नेस्ततश्च कामस्य भस्मावशेषत्वमुत्पन्नमिति भस्मावशेषत्वे भवस्य न कारणत्वेनोपादानं कवेरभिमतं येनानौचित्यं स्यात् । भस्मसात्कारकस्य वह्नेर्जनकत्वेनोपादाने चाभिमते भवशब्देन निर्देशः साधुरेव । किञ्च परस्तात्कामदेवस्यापि शिवप्रसादाज्जन्मनि प्रतिपादयिष्यमाणे भवशब्दोपादानमुचितमेवेति प्रतीमः ।। ३८ ।।

किन्तु कालिदास के निम्ननिर्दिष्ट पद्य में नामौचित्य नहीं है—

"हे प्रभो ! तूँ इतना क्रोध मत कर—जब तक यह प्रार्थना आकाशमार्ग में अवस्थित देवों के मुँह से निकली तब तक तो भगवान् 'भव' के तृतीय नेत्र से उत्पन्न वह प्रचण्ड ज्वाला कामदेव को भस्म कर चुकी थी ॥"

यहाँ कामदेव को भस्मसात् करते समय भगवान् त्रिनयन को 'भव' (उत्पादक) कहना सर्वथा अनुचित है। यहाँ तो 'हर' नाम से यदि उनका निर्देश कवि ने किया होता तो उचित होता ॥ ३८ ॥

आशीर्वचनौचित्यं दर्शयितुमाह—

पूर्णार्थदातुः काव्यस्य सन्तोषितमनीषिणः ।
उचिताशीर्नृपस्येव भवत्यभ्युदयावहा ॥ ३९ ॥

सम्पूर्णार्थसमर्पकस्य सन्तोषितविदुषः काव्यस्य नृपतेरिवोचितमाशीःपदमभ्युदयावहं भवति ॥

सम्प्रत्यन्त्यमाशीर्वचनौचित्यं निरूपयति—आशीरिति ।

पूर्णार्थदातुरिति । उचिता ह्याशीरिष्टाशंसनम् पूर्णं निराकांक्षमर्थं दातुं समर्थयितुं शीलं यस्य तस्य पूर्णार्थदातुरत एव सन्तोषिताः प्रसादिता मनीषिणो येन तस्य काव्यस्याभ्युदयावहाऽभ्युदयकारिणी, प्रथनकारिणीति यावत्, तथैव भवति यथा पूर्णम् प्रभूतमर्थं धनं दातुं शीलं यस्यातएव सन्तोषितमनीषिणो भूपतेर्मनीषिजनकृताऽऽशीरभ्युदयावहा भवति ॥

वृत्तौ न कश्चिद्विशेषः ।।

अब आशीर्वचनौचित्य का निरूपण किया जा रहा है—

जिस प्रकार प्रचुर धन देनेवाले, अत एव मनीषियों को सन्तुष्ट करने वाले राजा को दिया गया उचित आशीर्वाद उसके लिए अभ्युदयकारी होता उसी प्रकार

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पूर्ण अर्थ (कथा) को प्रकट करने वाले, अत एव सहृदयों को आनन्दित करने वाले, काव्य में निबद्ध उचित आशीर्वचन उसका अभ्युदयकारी होता है ॥ ३९ ॥

वृत्तिग्रन्थ का अर्थ पूर्ववत् है ॥

यथाऽस्मदुपाध्यायगङ्गकस्य—

स कोऽपि प्रेमार्द्रः प्रणयपरिपाकप्रचलितो
विलासोऽक्ष्णां देयात्सुखमनुपमं वो मृगदृशाम् ।
यदाकूतं दृष्ट्वा पिदधति मुखं तूणविवरे
निरस्तव्यापारा भुवनजयिनः पञ्च विशिखाः ॥

अत्र स कोऽप्यसामान्यार्द्रप्रणयविश्रान्तिप्रगल्भकुरङ्गदृशां निरुपमो नयनविलासः सुखं वो देयात्, यदभिप्रायमालोक्य भुवनजयिनः कामस्य पञ्च सायकाः समाप्तव्यापारास्तूणीरविवरे लज्जयेव मुखं पिदधतीत्युक्ते सुखं वो देयादित्याशीःपदमुचितमेव, प्रियानयनविभ्रमस्य सुखार्पणयोग्यत्वात् ॥

उदाहरणमाह—यथेति ।

स कोपीति । मृगदृशां ललनानां प्रणयस्य प्रेम्णः परिपाकमभि प्रचलितः प्रणयपरिपाकोन्मुखः । यद्वा प्रणयपरिपाकात्प्रचलित आविर्भूतः प्रेम्णाऽऽर्द्रः सरसः स कोपि विलक्षणोक्ष्णां नेत्राणां विलासो विभ्रमः कटाक्ष इति यावत्, वो युष्मभ्यम् अनुपमं सुखं देयात् । यस्य विलासस्याकूतं सङ्केतं दृष्ट्वा भुवनजयिनः कामदेवस्य पञ्चारविन्दाद्या विशिखा बाणा निरस्तव्यापारा निष्क्रिया निरर्थकाः सन्तः तूणस्य तूणीरस्य विवरे स्वमुखं पिदधति गोपयन्ति लज्जयेति शेषः । अपिदधतीत्यत्राकारस्य भागुरिमतेन लोपात् पिदधति इति प्रयोगः । अत्र **पञ्चविशिखाः** इति समस्तः पाठो हेयः ॥

अत्र कामिनीनयनविलासस्य सर्वसुखप्रदत्वात् तत्कर्तृकसुखदानाशीरिष्टाशंसनमुचितमित्युपपादयति—**अत्रेत्यादिना** । **असामान्येत्यादि** । असामान्योनन्यसाधारणो य आर्द्रः सरसः प्रणयः प्रेमा तस्य विश्रान्तौ काष्ठाप्राप्तौ प्रगल्भा निपुणा याः कुरङ्गदृशो मृगाक्ष्यस्तासामित्यर्थः । यद्वा तादृशप्रणयनिमित्ता विश्रान्तिः सुखं तदर्पणे प्रगल्भेति तात्पर्यं वर्णनीयम् ॥

इसका उदाहरण हमारे आचार्य 'गङ्गक' का निम्ननिर्दिष्ट पद्य में द्रष्टव्य है—

"जिसके सङ्केत को देख कर विश्वविजयी कामदेव के पाँचो बाण अपनी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यर्थता का अनुभव करते हुए लज्जित हो तरकस में अपने मुँह छिपा लेते वह प्रेम से सरस तथा प्रणय के परिपाक से उद्भूत मृगनयनियों की आखों का विलास तुम्हें अनुपम आनन्द दे ॥"

यहाँ प्रियतमा के नयनविलास के सुखप्रद होने की शुभकामना उचित ही है, क्योंकि वह सुख देने योग्य है ॥

यथा वा मम वात्स्यायनसूत्रसारे—

कामः कामं कमलवदनानेत्रपर्यन्तवासी
दासीभूतत्रिभुवनजनः प्रीतये जायतां वः ।
दग्धस्यापि त्रिपुररिपुणा सर्वलोकस्पृहार्हा
यस्याधिक्यं रुचिरतितरामञ्जनस्येव याता ॥

अत्र कामः प्रीतये वो जायतां यस्य दग्धस्याप्यञ्जनस्येवाधिक्यं रुचिर्यातेत्युक्ते प्रीतये जायतामित्युचितम्, कामस्य प्रीत्यात्मकत्वात् ॥

उदाहरणान्तरमस्यैवाह—यथा वेति ।

काम इति । कमलवदनाया ललनाया नेत्रयोः पर्यन्ते प्रान्ते वासी वासशीलोऽथ च दासीभूतः त्रिभुवनजनो यस्य यस्मै वा स त्रैलोक्यजयी कामो मदनो वो युष्माकं प्रीतये कामं पर्याप्तं जायतामित्याशीः । यस्य त्रिपुररिपुणा भगवता हरेण दग्धस्यापि सर्वलोकस्पृहणीया रुचिर्वासना प्रभावो वाऽञ्जनस्येवातितरामाधिक्यमुत्कर्षं याता प्राप्ता । अञ्जनस्य हि करादिना प्रोञ्छने रुचिर्नापसरत्यपि त्वाधिक्यमेव याति यथा तथा हरकोपाग्निदग्धस्य कामस्यापीति भावः ॥

अत्रापि प्रीत्यात्मकस्य कामस्य प्रीतिप्रदत्वविषयकाशीरुचितंवेत्याह—अत्रेत्यादिना ॥

इसका दूसरा उदाहरण मेरे वात्स्यायनसूत्रसार के इस पद्य में द्रष्टव्य है—

"भगवान् त्रिपुरहर द्वारा जला दिए जाने पर भी रगड़ने से अञ्जन के समान जिसकी सर्वलोकस्पृहणीय वासना बढ़ ही गई है वह कमलवदना ललनाओं के कटाक्षों में निवास करने वाला त्रैलोक्यविजयी कामदेव तुम्हें प्रमुदित करे ॥"

इसमें निबद्ध आशीर्वाद अत्यन्त उचित है, क्योंकि प्रीत्यात्मक कामदेव द्वारा दूसरों को प्रमुदित करना सुसङ्गत है ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न तु यथाऽमरुकस्य—

आलोलामलकावलीं विलुलितां बिभ्रच्चलत्कुण्डलं
किञ्चिन्मृष्टविशेषकं तनुतरैः स्वेदाम्भसां सीकरैः ।
तन्वङ्ग्याः सुतरां रतान्तसमये वक्त्रं रतिव्यत्यये
तत्त्वां पातु चिराय किं हरिहरस्कन्दादिभिर्दैवतैः ॥

अत्र तन्व्या रतिव्यत्यये लोलालकं चलत्कुण्डलं स्वेदसलिलेन किञ्चिन्मृष्टतिलकं यन्मुखं तत्त्वां पातु किं हरिहरस्कन्दादिभिर्दैवतैरित्युक्ते पातु त्वामित्यनुचितम्, आनन्दयतु त्वामित्युचितं स्यात् ॥

प्रसङ्गात् प्रत्युदाहरणमप्याह—**न त्विति** ।

आलोलामिति । रतिव्यत्यये विपरीतरतावधोमुखत्वेनालोलां शरीरमात्रचञ्चलत्वेन चञ्चलाम् नयनाद्यावरणकर्तृतयाऽपसारणीयत्वेन विलुलितामितस्ततो विक्षिप्ताञ्चालकावलीं केशपाशं बिभ्रत्, चलती कुण्डले यत्र तथाविधम्, रतिखेदजन्यस्वेदाम्भसां तनुतरैः सूक्ष्मतरैर्विरलतरैर्वा सीकरैः कणैः किञ्चिदीषन्मृष्टो धौतो विशेषकः शृङ्गारतिलको यस्य तथाविधं च तन्वङ्ग्या रतान्तसमये रत्यन्ते सुतरां शोभनीयं वक्त्रं मुखं त्वां चिराय पातु, तदर्थं हरिहरस्कन्दादिभिर्दैवतैः किम् प्रयोजनम् ? न किमपीति भावः । स्कन्दः कार्त्तिकेयः ॥

अत्र सुखात्मकस्य सुखसहजसाधनीभूतस्य वा कामिनीमुखस्य पातिक्रियायाः कर्तृत्वमनुचितम्, आनन्दप्रदत्वोपवर्णने त्वौचित्यमस्या आशिषः स्यादित्याह—**अत्रेत्यादिना** ॥

वस्तुतस्तु रक्षणस्य पाधात्वर्थस्यानन्दप्रदत्वं स्फुटमेवेति प्रकृतमनौचित्योपवर्णनं न चारु ॥

किन्तु अमरुक के निम्ननिर्दिष्ट पद्य में आशीर्वचनौचित्य नहीं है—

"विपरीतरति-काल में इधर-उधर बिखरे हुए कम्पनशील घुंघराले बालों से सुशोभित, हिलते हुए कुण्डलों से सम्पन्न एवम् रति के अन्त में रतिखेदजन्य पसीने की छोटी-छोटी कणिकाओं से कुछ-कुछ धुले हुए तिलक वाला कृशाङ्गी का वदन ही चिरकाल के लिए तेरी रक्षा करे; इसके लिए हरि, हर तथा स्कन्द (कार्त्तिकेय) आदि देवताओं की क्या आवश्यकता ?"

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस पद्य में कृशाङ्गी के वदन को आनन्दित करने वाला यदि कहा गया होता तो उचित होता, पर इसे रक्षा करने वाला कहना अनुचित है, क्योंकि इसमें रक्षणयोग्यता न तो प्रसिद्ध है और न युक्तिसिद्ध ही ॥

अन्येषु काव्याङ्गेष्वनयैव दिशा स्वयमौचित्यमुत्प्रेक्षणीयम्। तदुदाहरणान्यानन्त्यान्न प्रदर्शितानीत्यलमतिप्रसङ्गेन ॥ ३९ ॥

तदेवं सप्तविंशतिभेदभिन्नमौचित्यं सपरिकरं निरूप्येतरेषामपि वृत्ताद्यौचित्यानामुदाहरणानि स्वयमेव जिज्ञासुभिस्तत्र तत्र द्रष्टव्यानीति प्रतिपादयन् ग्रन्थमुपसंहरति—**अन्येष्वित्यादिना**। विस्तरो ध्वन्यालोकादौ ॥ ३९ ॥

इसी प्रकार वृत्त (छन्दः) आदि काव्याङ्गों में भी औचित्यानौचित्य-विवेक स्वयं पाठकों को करना चाहिए। यहाँ तो सबका निरूपण तथा उदाहरण देना सम्भव नहीं है ॥ ३९ ॥

आसीत् प्रकाशेन्द्र इति प्रकाशः काश्मीरदेशे त्रिदशेश्वरश्रीः।
अभूद् गृहे यस्य पवित्रसत्त्रमच्छिन्नमग्रासनमग्रजानाम् ॥ ४० ॥

आसीदिति। काश्मीरदेशे त्रिदशेश्वरस्येन्द्रस्य श्रीरिव श्रीर्यस्य तादृशः कश्चन प्रकाशः प्रसिद्धः प्रकाशेन्द्रनामा ब्राह्मण आसीत्। यस्य गृहे पवित्रं सत्रं यागादि, अग्रजानां विप्राणामग्रासनं प्रमुखस्यानञ्चाच्छिन्नं निरन्तरमभूत्। यद्वा पवित्रं सत्रं यस्मात्तादृशमग्रजानामग्रासनमित्यादि व्याख्यान्तरं कार्यम् ॥ ४० ॥

काश्मीर देश मे देवराज इन्द्र की कान्ति जैसी कान्ति से सम्पन्न एक प्रकाशेन्द्र नामक विख्यात ब्राह्मण हुए जिनके घर में सर्वदा पवित्र सत्रों का अनुष्ठान एवं ब्राह्मणों को उच्च स्थान दिया जाता रहा ॥ ४० ॥

यः श्रीस्वयम्भूभवने विचित्रे लेप्यप्रतिष्ठापितमातृचक्रः।
गोभूमिकृष्णाजिनवेश्मदाता तत्रैव काले तनुमुत्ससर्ज ॥ ४१ ॥

यः श्रीस्वयम्भूभवन इति। यः प्रकाशेन्द्राभिख्यो द्विजः स्वयम्भुवो ब्रह्मणो विचित्रे भवने मन्दिरे लेप्ये भित्तावधस्तले वा मन्दिरान्तर्वर्त्तिनि प्रतिष्ठापितं मातृचक्रं षोडशमातृकाचक्रं येन तथाविधोथ च गवां भूमेः कृष्णाजिनस्य च दाता सन्; यद्वा दातेति तृन्नन्तं ताच्छील्यद्योतनाय मन्तव्यम्, तथा च गवामित्यादिषष्ठीस्थाने द्वितीयान्तेनैव विग्रहः कार्यः; तत्रैव मन्दिरे मन्दिरस्थे मातृचक्रे वा काले वयःपरिपाके स्वां तनुमुत्ससर्ज तत्याज ॥ ४१ ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्होंने विचित्र स्वयम्भू-मन्दिर के फर्श या दीवार पर षोड्शमातृकाओं का चक्र बनवाया और जीवनपर्यन्त गाय, भूमि, कृष्णमृगचर्म तथा गृहों का दान करते हुए समय आनेपर वहीं शरीरत्याग भी किया ॥ ४१ ॥

तस्यात्मजः सर्वमनीषिशिष्यः श्रीव्यासदासापरपुण्यनामा ।
क्षेमेन्द्र इत्यक्षयकाव्यकीर्तिश्चक्रे नवौचित्यविचारचर्चाम् ॥४२॥

तस्यात्मज इति । तस्य प्रकाशेन्द्रस्यात्मजः सर्वेषां मनीषिणां शिष्यो विनेयः श्रीव्यासदास इत्यपरं पुण्यं नाम यस्य सोयमक्षयकाव्यकीर्त्तिः क्षेमेन्द्रो नवामपूर्वामौचित्यविचारचर्चां चक्रे । सर्वमनीषिशिष्य इति विनयाधिक्य-प्रदर्शनम् । अक्षय्या काव्यनिमित्ता कीर्त्तिर्यस्य सोऽक्षयकाव्यकीर्तिः ॥ ४२ ॥

उन्हीं के सुपुत्र विद्वद्विधेय क्षेमेन्द्र ने, जिनका दूसरा पवित्र नाम श्रीव्यासदास भी था तथा जिन्होंने काव्यरचना में अक्षय प्रतिष्ठा प्राप्त की, इस अपूर्व औचित्यविचारचर्चा का निर्माण किया है ॥ ४२ ॥

श्रीरत्नसिंहे सुहृदि प्रयाते शार्वं पुरं श्रीविजयेशराज्ञि ।
तदात्मजस्योदयसिंहनाम्नः कृते कृतस्तेन गिरां प्रपञ्चः ॥ ४३ ॥

श्रीरत्नसिंह इति । श्रीविजयेशराज्ञि श्रीमति विजयपुराधीश्वरे क्षत्रिय-कुलालङ्कारभूते श्रीरत्नसिंहे क्षेमेन्द्रस्य सुहृदि शार्वं शर्वस्य शिवस्येदं पुरं कैलासलोकम्प्रयाते प्रस्थिते सति तस्य रत्नसिंहस्यात्मजस्योदयसिंहनाम्नः कृते तत्तुष्ट्यर्थं तेन क्षेमेन्द्रेणायं गिरां प्रपञ्चो वाग्विस्तर औचित्यविचारचर्चाख्यो ग्रन्थः कृतः प्रारब्ध इत्यर्थः । आदिकर्मणि क्तः ॥ ४३ ॥

अत्र श्रीरत्नसिंहे विजयेशराज्ञि मित्रेऽथ भूतेशपुरं प्रयाते इति पाठो ज्यायान् पूर्वार्द्धस्य ॥

जब उन (क्षेमेन्द्र) के मित्र विजयपुराधीश्वर श्रीमान् महाराज रत्न सिंह कैलाशपुरी चले गये तब उनके सुपुत्र महाराज उदयसिंह के प्रसादार्थ यह ग्रन्थ प्रारम्भ किया गया ॥ ४३ ॥

यस्यासिः परिवारकृत्त्रिभुवनप्रख्यातशीलश्रुतेः
सर्वस्यावनतेन येन नितरां प्राप्ता विशेषोन्नतिः ॥
आशाः शीतलतां नयत्यविरतं यस्य प्रतापानल-
स्तस्य श्रीमदनन्तराजनृपतेः काले किलायं कृतः ॥४४॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यस्यासिरिति । यस्यानन्तराजस्यासिः खड्गः त्रिभुवने प्रख्यातं शीलं स्वभावः श्रुतिर्विद्या च यस्य तथाविधस्य सर्वस्यैव महाजनस्य परिवारं करोतीति परिवारकृत् । इतरस्यासिः सर्वेषां परिवारं परिजनं हरतीति परिवारहृद् भवति, अस्य पुनः परिवारं करोतीति परिवारकृदेवेति व्यतिरेको व्यज्यते । एवम्विधत्वं चासेर्महाजनसम्पदादिरक्षणेन, अधनस्य परिवाराभावात्, सत्यपि परिवारे पश्चात् तेन त्यागाद्वा । तथा च पुराणम्—

परित्यक्ष्यन्ति भर्त्तारं वित्तहीनं तथा स्त्रियः ।
भर्त्ता भविष्यति कलौ वित्तवानेव योषिताम् ॥

इति । येन च निरामवनतेन विनतेन महाजनानां समक्षं विशेषोन्नतिः प्राप्ता । यस्य च प्रतापानल आशां दिशमविरतं सततं शीतलतां शान्ति नयति प्रापयति । अत्रापि व्यतिरेकः, क्षुद्रजनप्रतापानलस्याशाऽशान्तिकरत्वात् । अनलस्य शीतलताप्रापकत्वं विरुद्धमपि शीतलतायाः शान्त्यर्थकत्वेनाविरुद्धम् । एभिर्विशेषणैरनन्तराजस्य महत्त्वं ख्यापितं भवति । य एवम्विधस्तस्य श्रीमतोनन्तराजनृपतेः काले शासनसमये ग्रन्थोयं कृतः समापितः । किलेति राज्ञो ग्रन्थस्य च प्रसिद्धिसूचनाय ॥

एषु पद्येषु लिट्प्रयोगः परकर्तृकत्वेन **व्यातेने किरणावलीमुदयनः** इतिवद्वा यथाकथञ्चित् समर्थनीयः । क्वचित् काव्यदोषदुष्टत्वेपि तदुद्घाटनं नास्माभिः कृतमत्र, पद्यानामेतेषां महत्त्वाभावादिति शम् ॥ ४४ ॥

जिन महाराज अनन्तदेव का खड्ग त्रिलोकविश्रुत शील एवं विद्यावाले सब महापुरुषों के परिवार को व्यवस्थित करने वाला हुआ, जिन्होंने गुरुजनों के समक्ष विशेष विनय दिखाकर परम उन्नति प्राप्त की तथा जिनका प्रतापानल समस्त दिग्-दिगन्तों को सर्वदा शान्ति प्रदान करता रहा उन्हीं महाराज श्रीमान् अनन्तदेव के राज्यकाल में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ ॥ ४४ ॥

इति श्रीप्रकाशेन्द्रात्मजव्यासदासापराख्यश्रीक्षेमेन्द्रकृता
औचित्यविचारचर्चा समाप्ता ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्थापितौचित्यपरम्परेयं यया मया सा विवृता प्रयत्नात् ।
सदादृतौचित्यविचारचर्चा काश्यां भवानीभवयोः प्रसादात् ॥
विद्यार्थिनाम्प्रार्थितमर्थजातं मनागपि प्रातुमियं क्षमा चेत् ।
भवानुभावाद् गुरुगौरवाद् वा मंस्ये तदेमां कृतिमाप्तकामाम् ॥ १–२ ॥
प्राप्योच्चैः पदवी जनेन वचसां विन्यासमात्रेण किम् ?
को वा तुच्छपदाय यच्छति धनं सम्प्रार्थितोऽपीश्वरः ॥
कः कर्त्ता गुणिनां गणेषु गणनां लोकोऽधनस्याधुना
किन्त्वात्मागमशोधनाख्यममृतं को हर्तुमीशः फलम् ॥ ३ ॥
ये शास्त्राध्ययनादहङ्कृतिजुषो विद्याविलासद्विषो
लोके पण्डितमानिनो यदि कृतिं निन्दन्ति निन्दन्तु ते ॥
निष्पक्षं पुनरीरयन्त्यवितथां वाचं तु ये वाग्मिन-
स्ते कामं प्रविवेचयन्त्विह कियान् दोषः कियान् वा गुणः ॥ ४ ॥
यस्य स्निग्धात् सुरगुरुमुखाद् गन्तुकामोऽन्तमिन्द्रो
दिव्याब्दानां शतकदशकं रूपमात्रं विश्रृण्वन् ॥
श्रान्तः शान्तः, श्रुतिशतनुतं तत् पदं सार्थसार्थं
श्रोतुं मन्तुं कथमिव पटुर्मादृशो मन्दजन्तुः ॥ ५ ॥
तथाप्यहैतुकी भक्तिः शब्दब्रह्मण्यनन्तरे ।
निरन्तरं प्रेरयति किञ्चिद् वक्तुं यथामति ॥ ६ ॥
अतोऽत्र यत्किञ्चिदुदीरितं मितं
स्तवच्छलेनाखिललोकशासितुः ।
गुणैकसम्मानधनाः सुधीजना
न तत्र कश्चिन्मम गृह्यताऽऽग्रहः ॥ ७ ॥
वसुवेदनभोनेत्र (२०३८) मिते विक्रमवत्सरे ।
श्रीनारायणमिश्रेण पूरितेयं मनोरमा ॥ ८ ॥

इति श्रीनारायणमिश्रग्रथितौचित्यविचारचर्चामनोरमा समाप्ता ॥

शुभम्भूयात् ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रथमं परिशिष्टम्

व्याख्यापरिवर्धनात्मकम्

३ पृष्ठे 'वोध्यम्' (पं० २८) इत्यतः परं योज्योंऽशः—

रससिद्धस्येति । रसः सिद्धो यत्रेति वहुव्रीहिः । रसेन सिद्धस्य प्रसिद्धस्य काव्यस्येत्यादिवृत्तिग्रन्थस्तु तात्पर्यवर्णनपरक इति नासङ्गतिः, काव्यस्यापि प्रसिद्धरससाहचर्येणैव प्रसिद्धेः ॥

६ पृष्ठे 'जीवनाधायकः' (पं० २६) इत्यनन्तरं योज्योंऽशः—

प्राधान्येनेति । एतेनान्येष्वपि काव्याङ्गेष्वौचित्यविचारविषयत्वं प्रदर्शितम् । तथा चान्ते स्वयमेव ग्रन्थकृद् वक्ष्यति—**अन्येषु काव्याङ्गेष्वनयैव दिशा स्वयमौचित्यमुत्प्रेक्षणीयम्** इति ॥

१० पृष्ठे **लावण्यद्रविण०** इतिपद्यव्याख्यायाम् '…विशेषमुद्दिश्यैवेति सुव्यक्तमेव ।' (पं० ५) इत्यस्मादनन्तरं योजनीयोंऽशः—

यद्यपि ध्वन्यालोकवृत्तौ प्रकृतपद्ये व्याजस्तुतिनिरासाय **यतो न तावदयं रागिणः कस्यचिद् विकल्पः, तस्य 'एषाऽपि स्वयमेव तुल्यरमणाभावाद्वराकी हता' इत्येवंविधोक्त्यनुपपत्तेः । नापि नीरागस्य, तस्यैवम्विकल्पपरिहारैकव्यापारत्वात्** इत्याद्युक्तम्, तथापि तद्युक्त्याभासमात्रम्, तद्विषयकोत्कटरागाभाववत एवम्विधविकल्पसम्भवात् । नीरागस्यापि कस्यचन **वीतस्पृहाणामपि मुक्तिभाजां भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः** इतिन्यायेनैतत्सम्भवाच्च । यथा चायं तर्कः सहृदयहृदयखेदकरस्तथाऽज्ञसैव प्रतिपद्यत इति नात्राधिकं वक्तव्यम् ॥

यदपि च तत्रैवोक्तम्—**नचायं श्लोकः कचित् प्रवन्ध इति श्रूयते येन तत्प्रकरणानुगतार्थतास्य परिकल्प्येत** इति तदप्यापातमनोरमम्, यस्यकस्यचिच्छ्रवणाभावमात्रेण निर्णयानुपपत्तेः कविनैव काञ्चित् खिन्नां नायिकामुद्दिश्य कारुण्यादिना तथोक्तिसम्भवोपपत्तेः । वीतरागत्वेपि धर्मकीर्त्तेः कवेः शङ्कराचार्यादिवत् तदुक्तिसङ्गतेश्च । सम्भावनामात्रेण कृतस्य निर्णयस्यानुपपत्तेश्च ॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवमेव **अनध्यवसितावगाहनम्०** इत्यादिधर्मकीर्त्तिपद्यानुरोधेन व्याजस्तुतिनिराकरणपूर्वकमप्रस्तुतप्रशंसासमर्थनमपि बालप्रतारणमात्रम्; सर्वदैकस्यैकभावत्वावश्यम्भावाभावात्। तस्मात् कामिनीविशेषमुद्दिश्य रचितमिदं पद्यमिति युक्तमुत्पश्यामः। अत्र विषये बहु वक्तव्यमपि विस्तरभयान्नोच्यते॥

१५ पृष्ठे **जातं वंशे०** इतिपद्यव्याख्यायाम् 'प्रधानामात्यः' (पं० २३) इत्यस्मादनन्तरं योजनीयोंऽशः—

प्रकृतिपदस्य सांख्ये साम्यावस्थगुणत्रयाभिधानभूते **प्रधाने** प्रयोगादत्र प्रकृतिपदस्य प्रधानोऽर्थः सम्भवतीति सम्प्रदायः। तत्र यथा सांख्यनये प्रधानतः सर्वं साक्षात् परम्परया वा प्रवर्त्तते तथैव प्रधानामात्याकूतवशात् सर्वं प्रवर्त्तत इति यथाकथञ्चित् समर्थनीयोयमुपचारः। यद्वा प्रकृतिः प्रकृष्टं कर्म, तस्य कर्त्ता पुरुषोऽमात्य एव प्रकृतिपुरुषः। तथा च प्रकृतिपुरुषशब्दः प्रधानामात्यार्थकः सम्पद्यते॥

३४ पृष्ठे 'शेषमग्रे वक्ष्यामः' (पं० १०) इत्यतः पूर्वं योजनीयोंऽशः—
यद्वा रसपदस्य रसाभासादेरप्युपलक्षणत्वेन सङ्गमनीयोऽयं ग्रन्थः।

७२ पृष्ठे **क्षीवस्येवाचलस्य०** इति पद्यव्याख्यान्ते योज्योंशः—
वस्तुतस्तु प्रकृते प्रकरणेनाभिधाया नियन्तृतत्वेन तदनुकूलवीभत्साधिवासितहृदयस्य कस्यचिदपि सहृदयस्य शृङ्गाराप्रतीतेरभिधामूलव्यञ्जनयापि न शृङ्गारप्रतीतिः शक्यसमाधेयेति ग्रन्थकृन्मतं चिन्त्यमेव॥

१२५ पृष्ठे 'समाधानमस्माभिः' (पं० १६) इत्यस्मादनन्तरं योजनीयोंशः—
वस्तुतस्तु 'व्यरंसीत्' इति 'कदाचित्' इत्यस्यैव स्थाने पाठकप्रमादात् पूर्वं परस्ताच्च लेखकप्रमादादापतितं मन्यामहे। विरमतीत्यस्यैवात्राप्यन्वयसौष्ठवे व्यर्थः प्रयासोयं पुनः क्रियानिर्देशविषयको न सम्भावयितुं शक्यो वराहमिहिरसदृशेषु विलक्षणप्रतिभेषु कविपण्डितेषु[1]॥

---

१. अन्यत्रापि किञ्चिद् योजनीयमास्ते। परं द्वितीये संस्करणे तद् योजयिष्यत इत्याशास्महे। सम्प्रति विस्तरभयाद् विरम्यते॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वितीयं परिशिष्टम्

मूलग्रन्थस्थपद्यानुक्रमणी

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तृतीयं परिशिष्टम्

उदाहृतपद्यानुक्रमणी

---

१. स्थूलाक्षरमुद्रिता ग्रन्थाः क्षेमेन्द्रस्यैव ।

२. पद्यमिदं सरस्वतीकण्ठाभरणेप्युद्धृतम्—१।१३५; ५।१७३ ।

३. सरस्वतीकण्ठाभरणेपि—२।२६ ।

४. इदं काव्यप्रकाशे ४।१२ कारिकावृत्तौ समुद्धृतम् । सुभाषितरत्नभाण्डागारेपि—३६३।४२ ।

५. काव्यप्रकाशेप्यप्रस्तुतप्रशंसोदाहरणेऽिवदं लभ्यते । तत्र शुककवेरिदं पद्यमिति वामनेन निराकृतम् ।

६. इदं पाठभेदपूर्वकं भोजप्रबन्धेपि दृश्यते—११३ ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१. इदं सुभाषितरत्नभाण्डागारे २६८।१८ सुभाषितावलौ च ३३९० दृश्यते।

२. इदं सुभाषितरत्नभाण्डागारे ४०।८१ सरस्वतीकण्ठाभरणे ५।१४२ कृष्णकर्णामृते च २।६४ दृश्यते ।

३. इदममरुशतकस्य कस्मिंश्चिदपि संस्करणे नोपलभ्यते ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१. कियता पाठभेदेन वैराग्यशतकेऽपि सप्तमपद्यरूपेणेदं दृश्यते ।

२. इदं सरस्वतीकण्ठाभरणेपि १।११३; २।५१; ५।१७२ दृश्यते ।

३. इदं सुभाषितरत्नभाण्डागारेपि ६२६।३२ दृश्यते ।

४. पद्यमिदं वैराग्यशतकेपि २३ दृश्यते ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पौलस्त्यः प्रणयेन	बालरामायणे ३।२०	९५
प्रग्लाने चिरकाल०	मुनिमतमीमांसायाम्	१६०
प्रज्ञां नवनवोन्मेष०	भट्टतौतस्य	१५१
प्रत्यग्रोपनताभिमन्यु०	मुनिमतमीमांसायाम्	४१
बालेन्दुवक्त्राण्यविकास०	कुमारसम्भवे ३।२९	३५
बुभुक्षितैर्व्याकरणं न	माघस्य	१३६
भक्तिः कातरतां क्षमा	मुनिमतमीमांसायाम्	१४६
भग्नाहितश्वसित०	अवसरसारे	९०
भोगे रोगभयं[1]	चतुर्वर्गसंग्रहे ४।७	६१
मग्नानि द्विषतां	परिमलस्य	८
महाप्रलयमारुत०	वेणीसंहारे ३।४	२१
माणं मुञ्चध देइ	कर्पूरमञ्जर्याम् १।१७	८०
मार्गे केतकसूचिभिन्न०	लावण्यवत्याम्	३९
मुक्तः कन्दुकविभ्रमः	लावण्यवत्याम्	१५५
मृत्योरास्यमिवाततं	भल्लटशतके ९७	१२२
यत्पार्वतीहठकच०	बालरामायणे १।३९	१८
यः प्रख्यातजवः	नीतिलतायाम्	८३
युद्धेषु भाग्यचपलेषु	चन्द्रकस्य	२३
योऽभूद् गोपशिशुः	मुनिमतमीमांसायाम्	१२०
योऽयमश्वः पताकेयम्	उ० रामचरिते ४।२७	१६
यो यः शस्त्रं बिभर्त्ति	वेणीसंहारे ३।३२	४४
लाङ्गूलेन गभस्तिमान्	गौडकुम्भकारस्य	९१
लावण्यद्रविणव्ययो[2]	धर्मकीर्त्तेः	९
वरुणरणसमर्था	नीतिलतायाम्	१०४
वर्णप्रकर्षे सति	कुमारसम्भवे ३।२८	३६
विरोधी वाऽविरोधी	ध्वन्यालोके ३।२४	७७

---

१. इदं पाठभेदपूर्वकं वैराग्यशतकेपि ३१ दृश्यते ।

२. पद्यमिदं ध्वन्यालोकवृत्तावपि ३।९७ लभ्यते ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

---

१. पद्यमिदं कियता पाठभेदेन सह भोजप्रबन्धेपि दृश्यते. श्लो० २३२, सुभाषितरत्नभाण्डागारेपि ३६३।७३

२. पद्यमिदं कदाचित् पद्यकादम्बरीत उद्धृतं स्यात्। अमरुशतकेपि रविचन्द्रव्याख्यासनाथे ९४ दृश्यते।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुर्थं परिशिष्टम्

निर्दिष्टा ग्रन्था ग्रन्थकाराश्च

---

१. प्रकोष्ठे पृष्ठसंख्यानिर्देशो रचयितुः सर्वनाम्नोल्लेखं सूचयितुम् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परीक्षोपयोगी ग्रन्थ

१ नैषधचरितमहाकाव्यम् । श्रीहर्ष-कृत । मल्लिनाथ कृत जी[illegible]
सहितम् । व्याख्या० सुरेन्द्र देव शास्त्री संस्कृत हिन्दी टीकादि [illegible]
प्रथम सर्ग ६-२० चतुर्थ सर्ग [illegible]

२ वेदान्तसारः । रमाशङ्कर त्रिपाठी कृत संस्कृत हिन्दी व्याख्या युक्त [illegible]

३ वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी । भट्टोजिदीक्षित पाणिनीय व्याकरण
सूत्रवृत्तिः सहित, श्री कृष्णवल्लभाचार्य संशोधिता २०-००

४ शिशुपालवधम् । शेषराज शर्मा कृत "चन्द्रकला"-व्याख्या, हिन्दी
अनुवाद, टिप्पणी आदि युक्त । चतुर्थ सर्ग ३-००

५ संस्कृत प्रथम०पाठ । डॉ० जे० आर० बैलंटाइन कृत । भाषान्तरकार
डॉ० अमर नाथ पाण्डेय ३-५०

६ कुमारसम्भवम् । मल्लिनाथ कृत "संजीवनी" तथा कन्हैया लाल जोशी
कृत "बकुला" हिन्दी व्याख्यादि सहित । च० सर्ग ३-०० प० सर्ग ३-००
प्रथम सर्ग, प्रेस में द्वितीय सर्ग ३-००

७ मूलरामायण । 'इन्दु' संस्कृत हिन्दी व्याख्या । प्रश्नपत्र सहित
व्याख्याकार कपिल देव गिरी ३-००

८ छन्दःप्रवेशिका । "प्रभा" हिन्दी टीकोपेता । देवशर्मा सम्पादित ०-७५

९ मनुस्मृतिः । 'निर्मल' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या । द्वि० अध्याय ।
सम्पादक डॉ० ओमप्रकाश पाण्डेय ३-५०

१० तर्कसंग्रह । पदकृत्य संस्कृत तथा हिन्दी टीका सहित । चन्द्रधर शुक्ल २-५०

११ बृहदवकहडाचक्रम् । अर्थात् प्राथमिक ज्योतिषम् । श्री श्याम
देव झा कृत "हेमपुष्पिका" हिन्दी व्याख्योपेतम् ३-००

१२ हितोपदेश-मित्रलाभः । "रश्मिकला" संस्कृत हिन्दी-व्याख्यासहितः,
व्याख्याकार-केशवदेव शास्त्री, सम्पादक-कपिलदेव गिरि ६-००

प्राप्तिस्थान—चौखम्भा ओरियन्टालिया
पोस्ट बाक्स नं० ३२, वाराणसी—२२१००१
शाखा—बंगलो रोड, ९ यू. बी. जवाहर नगर, दिल्ली—११०००७
फोन : २२१६१७

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha